प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

✆ : (01462) 251216, 257699, 250328

अन्तकृतदशा सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का १२७ वाँ रत्न

अन्तकृतदशा सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक
नेमीचन्द बांठिया
पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक
श्री अखिल भारतीय सुधर्म
जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-305901
(01462) 251216, 257699 फेक्स नं. 250328

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☎ 2626145
२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☎ 251216
३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**
४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**
५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १०
स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☎ 252097
६. श्री एच. आर. डोशी जी-३६ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☎ 23233521
७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☎ 5461234
८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**
९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा** ☎ 236108
१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**
११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)
१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ 25357775
१३. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शांपिग सेन्टर, **कोटा** ☎ 2360950

मूल्य : २५-००

द्वितीय आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३३
विक्रम संवत् २०६४
अप्रेल २००७

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ 2423295

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन आगम साहित्य का प्राचीन भारतीय साहित्य में अपना एक विशिष्ट और गौरवपूर्ण स्थान है। इसका कारण इसकी मौलिकता के साथ-साथ इसके उपदेष्टा सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु की सर्वज्ञता है जिसके कारण इसमें दोष की किंचित् मात्र भी संभवना नहीं रहती और न ही इसमें पूर्वापर विरोध या युक्ति बाधक होती है। क्योंकि तीर्थंकर प्रभु छद्मस्थ अवस्था में प्रायः मौन ही रहते हैं। जब वे अपने सम्यक् पुरुषार्थ (तप-संयम) के द्वारा चार घाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान-केवलदर्शन (पूर्णता) प्राप्त कर लेते हैं, तब वे महापुरुष धर्मोपदेश फरमाते हैं। अपने प्रथम धर्मोपदेश में ही चतुर्विध संघ की स्थापना एवं जितने भी गणधर उनके शासन में होने होते हैं, वे हो जाते हैं।

तीर्थंकर भगवन्त धर्मोपदेश अर्थ रूप में करते हैं, जिसे महाप्रज्ञा के धनी गणधर भगवन्त सूत्र रूप में गूंथित कर व्यवस्थित आगम का रूप देते हैं। इसलिए कहा गया है **'अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा'** आगम साहित्य की प्रामाणिकता केवल इसलिए नहीं है कि ये गणधर द्वारा कृत है प्रत्युत इसके अर्थ के मूल उपदेशक तीर्थंकर प्रभु की वीतरागता है। गणधर भगवन्त मात्र द्वादशांगी की रचना करते हैं, जो अंग साहित्य के रूप प्रसिद्ध है। इसके अलावा जितने भी आगम साहित्य की रचना है, वह सब स्थविर भगवन्तों द्वारा की हुई है, जो अंगबाह्य आगम के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ स्थविर भगवन्तों से आशय दस पूर्वों से चौदह पूर्वों के ज्ञाता श्रुत केवली से है? ये स्थविर भगवन्त सूत्र और अर्थ दोनों दृष्टि से अंग साहित्य में पारंगत होते हैं। अतएव वे जो कुछ भी रचना करते हैं उसमें किंचित् मात्र भी विरोध नहीं होता है। जो बात तीर्थंकर भगवन्त कह सकते हैं, उसको श्रुतकेवली भी उसी रूप में कह सकते हैं। दोनों में मात्र अन्तर इतना है कि केवलज्ञानी सम्पूर्ण तत्त्व को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं, जबकि श्रुत केवली परोक्ष रूप से जानते हैं। साथ ही उनके वचन इसलिए भी प्रामाणिक होते हैं क्योंकि वे नियमतः सम्यग्दृष्टि होते हैं।

वर्तमान में स्थानकवासी परम्परा बत्तीस आगमों को मान्य करती है। जो अर्हत् कथित, गणधर, प्रत्येक बुद्ध अथवा पूर्वधर स्थविर भगवन्तों द्वारा रचित हैं। इनमें से अंग साहित्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसकी रचना गणधरों ने की हैं इसका रचना काल भगवान् महावीर के समकालीन माना जाता है, शेष अंगबाह्य जिनके रचयिता स्थविर भगवन्त हैं, उनका रचना काल एक न होकर भिन्न-भिन्न है। जैसे दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यंभव ने की, तो प्रज्ञापना के रचयिता श्यामाचार्य है, छेद सूत्रों के रचयिता चतुर्दश पूर्वी आचार्य भद्रबाहु है, जबकि नंदी सूत्र के रचयिता देववाचक है।

आगमकालीन युग में आगम लेखन की परम्परा नहीं थी। आगम लेखन कार्य को दोषपूर्ण माना जाता था। इसलिए चिरकाल तक इसे कण्ठस्थ रख कर श्रुत परम्परा को सुरक्षित रखा गया। बाद में बुद्धि की दुर्बलता आने से स्मरण शक्ति क्षीण होने लगी तब देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण जिनका समय भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग ९८० वर्ष पश्चात् का है, कण्ठस्थ सूत्रों को लिपि बद्ध किया गया, जो आज तक आचार्य परम्परा से चला आ रहा है।

आगम साहित्य का समवायांग और अनुयोगद्वार सूत्र में केवल द्वादशांगी के रूप में निरूपण हुआ है, पर नंदी सूत्र में अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य दो भेद किये हैं। साथ ही अंगबाह्य के आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त, कालिक और उत्कालिक आदि भेद-प्रभेद किये गये हैं। उसके पश्चात्वर्ती साहित्य में ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल, चार छेद सूत्र और बत्तीसवां आवश्यक सूत्र के रूप विभाग किया है। सबसे अर्वाचीन यही परम्परा है जो वर्तमान में प्रचलित है।

प्रस्तुत अंतकृतदशासूत्र आठवां अंग सूत्र है। इसमें कुल नब्बे महापुरुषों का वर्णन है। जिसमें ५१ महापुरुष भगवान् अरिष्टनेमि के शासन से सम्बन्ध रखने वाले शेष ३९ वर्तमान शासनेश भगवान् महावीर के शासनवर्ती है। इस सूत्र का नाम अंतकृतदशा क्यों रखा गया,इसके लिए बतलाया गया है कि जिन महापुरुषों ने भव का अन्त कर दिया वे अन्तकृत कहलाते हैं। जिन महापुरुषों का वर्णन जिस दशा अर्थात् अध्ययनों में किया हो, उन अध्ययनों से युक्त शास्त्र को 'अन्तकृतदशा' कहते हैं। इस सूत्र के प्रथम एवं अन्तिम वर्ग में दस अध्ययन होने से इसे दशा कहा है। दूसरा अर्थ यह भी किया गया है कि कर्मों और दुःखों का अन्त करने वाले साधकों की जीवन चर्या का वर्णन इस शास्त्र में होने से भी इसका नाम अंतकृत-दशा सूत्र रखा गया है। अथवा जीवन के अन्तिम समय में केवलज्ञान-केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष पधारने वाले जीव अंतकृत कहलाते हैं। ऐसे जीवों का वर्णन इस सूत्र में है इसलिए यह सूत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतकृतदशा कहलाता है, क्योंकि इस सूत्र के साधकों का केवली पर्याय में विचरने का वर्णन नहीं मिलता है।

स्थानकवासी परम्परा में इस शास्त्र का विशेष महत्त्व है। प्रायः सभी स्थानकवासी परम्परा में इस आठवें अंग शास्त्र का पर्युषण के आठ दिनों में वाचन किया जाता है। इसे पर्युषण पर्व में वाचने के लिए पीछे हेतु दिये जाते हैं, यह आठवां अंग है, इसके आठ वर्ग है, पर्युषण के दिन भी आठ है, आत्मा के लगे कर्म भी आठ है जिनको क्षय करने का साधकों का लक्ष्य होता है आदि अनेक कारणों से इस शास्त्र को महत्त्वपूर्ण समझ कर पूर्ववर्ती आचार्यों ने इस शास्त्र को पर्युषण पर्व के दिनों में वाचने की परम्परा चालू की जो अविच्छिन्न रूप से वर्तमान में भी चल रही है।

इस सूत्र में अनेक साधक-साधिकाओं की साधना का सजीव चित्रण किया गया है एक ओर गजसुकुमार जैसे तरुण तपस्वी का तो दूसरी ओर अतिमुक्तक जैसे अल्प व्ययस्क तेजस्वी श्रमण नक्षत्र का, तीसरी ओर वासुदेव कृष्ण एवं श्रेणिक महाराजा की महारानियों का उज्ज्वल तपोमय जीवन का। इस प्रकार राजा, राजकुमार, महारानियों, श्रेष्ठी पुत्रों, मालाकार, बालक, युवक, प्रौढ़ आदि के संयम ग्रहण करने एवं श्रुत अध्ययन, तप, संयम, ध्यान, आत्मदमन, क्षमा भाव आदि का वर्णन इस सूत्र में मिलता है।

इस सूत्र में जिन नब्बे महापुरुषों का आठ वर्गों में जो जो वर्णन हैं, उनका संक्षिप्त सार इस प्रकार है -

प्रथम वर्ग - इस वर्ग के दस अध्ययन हैं। इसके शुभारम्भ में द्वारिका नगरी के निर्माण, इसकी ऋद्धि सम्पदा आदि का अति सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। इस नगरी के अधिपति त्रिखण्डाधिपति कृष्ण-वासुदेव एवं इनके पिताश्री वसुदेव आदि दस (दशार्ह) भाईयों का वर्णन किया गया है। वासुदेव अर्द्ध चक्री होता है, उनकी ऋद्धि का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि बलदेव प्रमुख आदि पांच महावीर, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार, शत्रुओं से पराजित न हो सकने वाले शाम्ब आदि साठ हजार शूरवीर, महासेन आदि ५६ हजार सेनापति दल, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा, रुक्मणी आदि सोलह हजार रानियाँ, चौसठ कलाओं में निपुण ऐसी अनंगसेना आदि अनेक गणिकाएं और भी अनेक ऐश्वर्यशाली नागरिक, नगर रक्षक आदि निवास करते थे। परम प्रतापी कृष्ण वासुदेव का एक छत्र राज्य द्वारिका नगरी से लेकर क्षेत्र की मर्यादा करने वाले वैताढ्यपर्वत पर्यन्त था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी द्वारिका नगरी में 'अन्धकवृष्णि'' नाम के राजा राज्य करते थे, जिनके धारिणी नाम की रानी थी, जो स्त्री के सभी लक्षणों से सुशोभित थी। उसने एक बालक को जन्म दिया जिसका नाम गौतम कुमार रखा। युवावस्था प्राप्त होने पर आठ सुन्दर कन्याओं के साथ उनका विवाह हुआ। उस समय अपने शासन की आदि करने वाले बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए द्वारिकानगरी में पधारे। कृष्ण वासुदेव सहित सभी नागरिक भगवान् के समीप धर्म श्रवण करने गये। गौतमकुमार भी प्रभु के दर्शनार्थ गया। प्रभु की वाणी का श्रवण कर गौतमकुमार को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने प्रभु के पास प्रव्रज्या अंगीकार की। दीक्षा अंगीकार करके ११ अंगों का अध्ययन किया, अनेक प्रकार की कठोर तपस्या की, भिक्षु की प्रतिमा, गुणरत्न संवत्सर, तप आदि की आराधना की। बारह वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध,बुद्ध,मुक्त हुए।

गौतमकुमार के समान शेष नौ कुमारों का वर्णन भी एक समान हैं,जिनके नाम इस प्रकार हैं - १. समुद्रकुमार २. सागरकुमार ३. गम्भीरकुमार ४. स्तिमितकुमार ५. अचलकुमार ६. कम्पिलकुमार ७. अक्षोभकुमार ८. प्रसेनजितकुमार ९. विष्णुकुमार। इन सब राजकुमारों के पिता का नाम अन्धकवृष्णि और माता का नाम धारिणी था। सभी ने प्रभु अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा अंगीकार की और गौतम की भांति तप संयम की आराधना कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। इस प्रकार प्रथम वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन है।

दूसरा वर्ग - इस वर्ग के आठ अध्ययन हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं - १. अक्षोभ २. सागर ३. समुद्र ४. हिमवान् ५. अचल ६. धरण ७. पूरण और ८. अभिचन्द इन आठ राजकुमारों का वर्णन दूसरे वर्ग में हैं। इन सभी आठों ही राजकुमारों के पिता का नाम अन्धकवृष्णि और माता नाम का धारिणी था। प्रथम वर्ग में वर्णित गौतम कुमार के समान अक्षोभ आदि आठ अध्ययन हैं। गौतम आदि दस राजकुमारों के समान इन्होंने भी गुणरत्न संवत्सर आदि तप किया और सोलह वर्ष तक संयम का पालन कर शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

तीसरा वर्ग - इस वर्ग में तेरह अध्ययन हैं - १. अनीकसेन २. अनन्तसेन ३. अजितसेन ४. अनिहतरिपु ५. देवसेन ६. शत्रुसेन ७. सारण ८. गज ९. सुमुख १०. दुर्मुख ११. कूपक १२. दारुक और १३. अनादृष्टि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इनमें प्रथम के छह अध्ययनों में अमीकसेन आदि छह भाइयों का वर्णन है जो भद्दिलपुर नगर के निवासी नाग गाथापति और सुलसा के पुत्र थे। जो अति सुकुमाल थे। यौवन अवस्था में इन सभी राजकुमारों का इभ्य-सेठों की बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह हुआ। कालान्तर में अरहन्त अरिष्टनेमि प्रभु का भद्दिलपुर नगर के बाहर पधारना हुआ। जनसमुदाय भगवान् के दर्शन एवं उनकी वाणी सुनने गये। अनीकसेनकुमार आदि भी गये। भगवान् की वाणी सुन कर सभी छहों भाइयों ने भगवान् के समीप दीक्षा अंगीकार की। वे छहों अनगारों ने जिस दिन दीक्षा अंगीकार की उसी दिन से भगवान् से यावज्जीवन बेले की तपस्या की आज्ञा प्राप्त कर, अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

संयोग से एक दिन छहों अनगार क्रमशः २-२ मुनियों के तीन संघाड़े बनाकर बेले के पारणे के दिन देवकी महारानी के घर गोचरी पधारे। उनकी समान उम्र,रूप,लावण्य को देखकर देवकी महारानी को अपने बाल्यकाल की बात याद आ गई कि - अतिमुक्तक अनगार ने मेरे द्वारा आठ पुत्रों का जन्म होना बतलाया था,जो आकृति,वय और क्रान्ति में समान होंगे। ऐसे पुत्रों को अन्य कोई माता जन्म नहीं देगी। पर आज वह प्रत्यक्ष देख रही है कि अन्य किसी माता ने भी नलकुबेर के समान आकृति, वय और क्रान्ति वाले पुत्रों को जन्म दिया है। इसका समाधान प्राप्त करने वहाँ विराजित अरिष्टनेमि प्रभु के पास गई। प्रभु ने फरमाया कि ये छहों पुत्र सुलसा के नहीं किन्तु तुम्हारे ही हैं। यह समाधान सुनकर वह चिंतातुर हो गई।

कृष्ण-वासुदेव उस समय माता देवकी के चरण वंदन करने आते हैं। माता को शोकातुर देखकर उनसे इसका कारण पूछा तो देवकी रानी ने सम्पूर्ण घटना कृष्ण वासुदेव को बता दी। तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने सीधे पौषधशाला में जाकर तेले के तप की आराधना की। जिसके कारण हरिनैगमेषीदेव की आराधना की, उसके उपस्थित होने पर अपने लघुभ्राता होने की कामना की। परिणाम स्वरूप यथा समय देवकी रानी के एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम गजसुकुमाल रखा, यौवन अवस्था में उन्होंने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार की। जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन, दिन के चौथे प्रहर में भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा लेकर महाकाल श्मशान में जाकर एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा अंगीकार कर ध्यानस्थ खड़े हो गए। उसी समय सोमिल ब्राह्मण उधर से निकला। गजमुनि को देखकर पूर्व भव का वैर जागृत हुआ। जिसके कारण मुनि के सिर पर धधकते हुए अंगारे रख दिए। मुनि ने समभाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से उस परीषह को सहन किया। परिणामों की उच्च धारा के कारण समस्त कर्मों को क्षय करके सिद्ध,बुद्ध, मुक्त हुए। कथानक बड़ा विस्तृत एवं रोचक होने के साथ-साथ अनेक शिक्षाएं-प्रेरणाएं प्रदान करने वाला है। अतएव पाठकों को इसका पूर्ण पारायण करना चाहिए।

इसके अलावा सारण कुमार, सुमुख, दुर्मुख, कूपंक, दारुक और अनादृष्टि आदि राजकुमारों का वर्णन इस वर्ग में है। सभी ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार की। तप संयम की उत्कृष्ट साधना करके सभी राजकुमार कर्मों का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हुए। इस प्रकार तीसरा वर्ग पूर्ण हुआ।

चतुर्थ वर्ग - इस वर्ग के दस अध्ययन हैं - १. जालि २. मयालि ३. उवयालि ४. पुरुषसेन ५. वारिसेन ६. प्रद्युम्न ७. शाम्ब ८. अनिरुद्ध ९. सत्यनेमि और १०. दृढ़नेमि। प्रथम पांच राजकुमार के पिता का नाम वसुदेव तथा माता का नाम धारिणी था। प्रद्युम्नकुमार के पिता का नाम कृष्ण, माता का नाम रुक्मिणी था। शाम्बकुमार के पिता का नाम कृष्ण और माता का नाम जाम्बवती था। इस प्रकार अनिरुद्धकुमार के पिता का नाम प्रद्युम्न और माता का नाम वैदर्भी था तथा सत्यनेमि, दृढ़नेमि दोनों राजकुमारों के पिता का नाम समुद्रविजय और माता का नाम शिवादेवी था। सभी राजकुमारों ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार की। सोलह वर्ष पर्यन्त दीक्षा का पालन किया। बारह अंगों का अध्ययन किया। एक मास का संथारा करके और सर्व कर्मों का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

पांचवां वर्ग - त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव को अपनी मौजूदगी में और वह भी द्वारिका नगरी में अपने लघुभ्राता गजमुनि की सोमिल ब्राह्मण द्वारा अकाल घात का बड़ा भारी आघात लगा। साथ ही उन्हें यह समझने में भी देर नहीं लगी कि अब मेरी पुण्यवानी क्षीण होने का समय नजदीक आ रहा है। एक समय था जब द्वारिका का निर्माण देवताओं द्वारा किया गया और मैंने अपने जीवन काल में ३६० युद्ध किये और सभी में विजयश्री हासिल की। पर आज एक मामूली ब्राह्मण ने इतनी हिम्मत कर मेरे लघुभ्राता गजमुनि की घात कर डाली। अतएव प्रभु से द्वारिका की रक्षा का उपाय न पूछ कर, उसके विनाश के लिए पूछ लिया - "हे भगवन्!" बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश किस कारण से होगा? भगवान् ने फरमाया - हे कृष्ण! इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा - मदिरा, अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कारण होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण-वासुदेव ने द्वारिका नगरी के विनाश का कारण जानकर, द्वारिका नगरी में घोषणा करवा दी कि इस द्वारिका नगरी का विनाश होने वाला है। अतएव राजा-रानी, सेठ, कुमार, कुमारी आदि जो भी भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार करना चाहते हैं, उन्हें मेरी आज्ञा है। दीक्षा लेने वाले के पीछे जो भी बाल, वृद्ध व रोगी होंगे उनका पालन-पोषण कृष्ण-वासुदेव करेंगे तथा दीक्षा लेने वालों का दीक्षा महोत्सव भी स्वयं कृष्ण-वासुदेव बड़ी धूमधाम से करेंगे। इस घोषणा के परिणाम स्वरूप अनेक भव्य आत्माओं ने दीक्षा अंगीकार की। स्वयं कृष्ण-वासुदेव की आठ पटरानियों और दो पुत्रवधुओं ने दीक्षा अंगीकार की जिसका वर्णन इस वर्ग में किया गया है।

इस वर्ग के दस अध्ययन हैं - १. पद्मावती २. गौरी ३. गांधारी ४. लक्ष्मणा ५. सुसीमा ६. जांबवती ७. सत्यभामा ८. रुक्मिणी ९. मूलश्री और १० मूलदत्ता। इन दस रानियों में प्रथम आठ तो कृष्ण-वासुदेव की पटरानियाँ एवं पिछली दो रानियाँ उनके सुपुत्र शाम्बकुमार की रानियाँ थी। शाम्बकुमार पहले ही दीक्षा ग्रहण कर चुके थे। अतएव दस ही रानियों ने कृष्ण-वासुदेव की आज्ञा प्राप्त कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और तप संयम की उत्तम साधना कर अपने कर्मों को क्षय करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त हुईं।

पांचवें वर्ग तक भगवान् अरिष्टनेमि के शासनवर्ती ५१ साधकों का वर्णन है। जिसमें ४१ पुरुष और १० राजरानियाँ हैं।

छठा वर्ग - इस वर्ग में कुल सोलह अध्ययन हैं - १. मकाई २. किंकम ३. मुद्गरपाणि ४. काश्यप ५. क्षेमक ६. धृतिधर ७. कैलाश ८. हरिचन्दन ९. वारत्त १०. सुदर्शन ११. पूर्णभद्र १२. सुमनोभद्र १३. सुप्रतिष्ठ १४. मेघ १५. अतिमुक्त और १६. अलक्ष्य। इस वर्ग में वैसे तो सोलह अध्ययन हैं। पर इन सब में मुख्य और विस्तृत वर्णन अर्जुन मालाकार एवं अतिमुक्तक राजकुमार का किया गया है। बाकी साधकों का दीक्षा अंगीकार करने, दीक्षा पर्याय, अध्ययन एवं मोक्ष गमन का वर्णन मात्र किया गया है।

अर्जुनमालाकार के लिए बताया गया है कि वह राजगृह नगरी का निवासी था, उसकी पत्नी का नाम बन्धुमती था, जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुकुमाल थी। वहाँ महाप्रतापी राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उस राजगृह नगर के बाहर अर्जुन मालाकार का विशाल बगीचा था। उस बगीचे के पास ही मुद्गरपाणि क्षय का यक्षायतन था। अर्जुन मालाकार, पिता, दादा, परदादा से ही उस यक्ष की फूलों से अर्चना की जाती थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तदनुसार अर्जुन मालाकार भी बाल्य काल से ही उसकी फूलों से अर्चना करता इसके पश्चात् वह राजगृह के राज्य मार्ग पर बैठ कर फूलों को बेचता था। उसी राजगृह नगर में छह पुरुषों की एक ललित गोष्ठी रहती थी, जिसे राजा का किसी विशिष्ट कार्य सम्पन्न करने पर उन्हें अपने इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता थी। एक दिन राजगृह नगर में उत्सव की घोषणा हुई। अतएव अर्जुनमालाकार अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ प्रातःकाल जल्दी बगीचे में गया और फूल इकट्ठे करके जैसे ही यक्षायतन की ओर जाकर उस यक्ष की पूजा अर्चना करने लगा कि यक्षायतन के पीछे छीपे छह ललित गोष्टी पुरुषों ने अर्जुनमाली को रस्सी से बांध कर एक ओर लुढ़का दिया और उसी के सामने उसकी पत्नी बन्धुमती के साथ भोग भोगने लगे। अर्जुनमाली विचार करने लगा कि जिस मुद्गरपाणि यक्ष की वह बाल्यकाल से पूजा अर्चना कर रहा है, क्या वह इस विपत्ति में मेरी सहायता नहीं करता? इससे लगता है यहाँ कोई मुद्गरपाणि यक्ष नहीं प्रत्युत मात्र यह तो काठ की प्रतिमा ही है। मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली के विचार को जानकर उसके शरीर में प्रवेश कर छह गोठिले पुरुषों सहित बन्धुमती को एक हजार पल परिमाण वाले लोह के मुद्गर से मार डाला और इसी क्रम से प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री सहित सात प्राणियों की घात करने लगा।

उसी नगर में सुदर्शन नाम का सेठ रहता था, जो ऋद्धि सम्पन्न एवं जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक था। उन्हीं दिनों श्रमण भगवान् महावीर प्रभु का राजगृह नगर के गुणशीलक उद्यान में पधारना हुआ। श्रमणोपासक सुदर्शन सेठ माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर भगवान् के दर्शन करने पैदल ही चलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के न अति दूर न अति निकट हो कर गुणशीलक उद्यान में जाने लगा, तो मुद्गरपाणि यक्ष अपना मुद्गर घुमाता हुआ सुदर्शन सेठ की ओर आने लगा, तब सुदर्शन सेठ ने उसे अपनी ओर आते देखकर भूमि का प्रमार्जन किया एवं अपने मुंह पर उत्तरासंग लगा कर सागारी संथारा धारण कर बैठ गया। यक्ष ज्यों ही नजदीक आया और सुदर्शन सेठ पर प्रहार करना चाहा किन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से अभिभूत नहीं कर सका यानी उसका बल कुछ भी काम नहीं कर सका। अतएव वह अर्जुनमाली के शरीर को छोड़ कर चला गया। उसके बाद अर्जुनमाली जमीन पर गिर पड़ा। सुदर्शन सेठ अपने को उपसर्ग रहित जानकर कर अपनी प्रतिज्ञा पाली और अर्जुनमाली को सचेष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। जब अर्जुनमाली सचेत हो गया तो उसने पूछा - आप कौन है? और कहाँ जा रहे हो? सुदर्शन सेठ ने कहा - मैं श्रमणोपासक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हूँ और भगवान् के दर्शन करने जा रहा हूँ। इस पर अर्जुन माली ने कहा - मैं भी आप के साथ प्रभु के दर्शन करने चलना चाहता हूँ। सुदर्शन श्रमणोपासक ने कहा - हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो। सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनमाली के साथ भगवान् के दर्शन करने गया। भगवान् ने उन दोनों को धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर सुदर्शन श्रमणोपासक घर लौट आया। किन्तु अर्जुनमाली को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार कर ली।

दीक्षा अंगीकार कर बेले-बेले पारणा करता हुआ तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा। राजगृह नगर में गोचरी के लिए घूमते हुए, अर्जुन अनगार को देखा तो लोग कहने लगे इसने मेरे पिता को मारा, इसने मेरे पुत्र को मारा, इसने मेरी पत्नी, पुत्रवधु, बहन, भाई आदि को मारा। इस प्रकार कहते हुए कटु वचनों से उनकी निंदा, हीलना, तिरस्कार करने लगे, कई उन्हें थप्पड़, लाठी, पत्थर, ईंट आदि से मारने लगे। किन्तु अर्जुन अनगार क्षमा भाव से उन्हें सहन करते हुए विचरने लगे। अर्जुन अनगार को सामुदानिक भिक्षा में कभी आहार मिलता, तो पानी नहीं मिलता, कभी पानी मिलता तो आहार नहीं मिलता था। इन सभी को निर्जरा का हेतु समझ कर वे विचरने लगे। इस प्रकार उत्कृष्ट क्षमा भाव के कारण मात्र छह माह संयम का पालन कर अर्द्ध मास की संलेखना संथारा करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

अतिमुक्तककुमार - पोलासपुर नाम का नगर था। वहाँ श्रीवन नामक उद्यान था। वहाँ विजय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। उस विजय राजा और श्रीदेवी रानी का आत्मज अतिमुक्तक नाम का राजकुमार था जो अत्यन्त सुकुमार था। एक दिन अतिमुक्तककुमार अपने बहुत से बाल मित्रों के साथ इन्द्रस्थान (खेल मैदान) में खेल खेल रहा था। उसी दौरान भगवान् महावीर के अन्तेवासी शिष्य इन्द्रभूति अनगार (गौतम स्वामी) भिक्षा हेतु उधर से निकले। उन्हें देखकर बालक अतिमुक्तक उनके पास आकर इस प्रकार बोला - हे भगवन्! आप कौन हैं और क्यों घूम रहे हैं? गौतम स्वामी ने कहा - हम निर्ग्रन्थ अनगार हैं और भिक्षा के लिए घूम रहा हूँ। इस पर कुमार ने कहा - भगवन्! मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ। ऐसा कहकर कुमार ने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और अपने घर ले गया। श्रीदेवी रानी उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, उन्हें तीन बार विधि सहित वंदन नमस्कार किया। रसोई घर में ले गई और आदर सहित आहार, पानी बहरा कर उन्हें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवन द्वार तक पहुँचाने गई। अपनी माता के ये समस्त क्रियाकलाप देख कर कुमार समझ गया कि जिसे मैं घर में लाया हूँ, वह मेरे पिता राजा से भी बढ़ कर कोई बड़ा व्यक्ति लगता है, जिसका मेरी माता ने इस प्रकार स्वागत किया।

गौतम स्वामी ज्योंही गोचरी लेकर घर से निकले कुमार ने उनसे पूछा - आप कहां रहते हो? गौतम स्वामी ने बालक की बात की उपेक्षा न करके कहा इस नगर के बाहर श्रीवन बगीचे में हमारे धर्मगुरु धर्माचार्य श्रमणभगवान् महावीर प्रभु विराजते हैं वहाँ हम रहते हैं और वही मैं जा रहा हूँ। यह सुन कर कुमार ने कहा - भगवन्! मैं भी आपके साथ भगवान् को वंदन करने चलना चाहता हूँ। गौतम स्वामी ने कहा - हे देवानुप्रिय! जैसा सुख हो, वैसा करो। गौतम स्वामी और अतिमुक्तककुमार भगवान् के समीप गये और विधि पूर्वक वंदना की। गौतम स्वामी भगवान् को गोचरी बताकर यथा स्थान चले गये तत्पश्चात् भगवान् ने अतिमुक्तक कुमार को धर्म कथा कही। धर्मकथा सुनकर कुमार अत्यन्त हृष्ट तुष्ट होकर बोला - हे भगवन्! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर आपके पास दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ। प्रभु ने फरमाया - हे देवानुप्रिय! जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्म कार्य में प्रमाद मत करो।

अतिमुक्तककुमार अपने माता के पास आकर भगवान् के पास दीक्षा लेने की आज्ञा मांगता है। माता-पिता ने कहा - हे पुत्र! अभी तुम बच्चे हो, तुम्हें तत्त्वों का ज्ञान नहीं, इसलिए तुम धर्म को कैसे जान सकते हो? बालक राजकुमार ने अपने माता-पिता से कहा - आप मुझे नादान समझ कर टालना चाहते हो परन्तु हे माता-पिता! "मैं जिसे जानता हूँ उसे नहीं जानता और जिसे नहीं जानता उसे जानता हूँ।" माता-पिता अपने पुत्र की इस पहली को नहीं समझ सके इसलिए पूछा - हे पुत्र! तुम्हारी इस पहेली का क्या अर्थ है, हमारे कुछ समझ में नहीं आया। राजकुमार ने कहा - 'हे माता-पिता! मैं यह जानता हूँ कि जिसने जन्म लिया, वह अवश्य मरेगा, किन्तु यह नहीं जानता कि वह किस काल में, किस स्थान पर और किस प्रकार और कितने समय बाद मरेगा?' इसी प्रकार हे माता-पिता! मैं यह नहीं जानता कि किन-किन कर्मों से जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में उत्पन्न होते हैं। परन्तु यह अवश्य जानता हूँ कि जीव अपने ही कर्मानुसार विभिन्न योनियों में उत्पन्न होता है। इसलिए हे माता-पिता! मैंने कहा - जिसे मैं जानता हूँ उसे नहीं जानता और जिसे नहीं जानता उसे जानता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माता-पिता ने अतिमुक्तककुमार को अनेक प्रकार की युक्ति-प्रयुक्तियों से समझाया, किन्तु राजकुमार की दृढ़ भावना के कारण वे उसे विचलित नहीं कर सके। अतएव उन्होंने अपने पुत्र को आज्ञा प्रदान कर दी। अतिमुक्तककुमार भगवान् से दीक्षा अंगीकार कर अतिमुक्तक अनगार बन गये। एक दिन कुमार मुनि अन्य मुनियों के साथ वर्षा बरसने के बाद शौच निवृत्ति हेतु नगर के बाहर पधारे। बालमुनि ने बहते हुए पानी को मिट्टी की पाल बना कर रोक लिया और उसमें अपनी पात्री डाल कर **"मेरी नाव तिरे-मेरी नाव तिरे"** इस प्रकार के शब्दों का उच्चारण करने लगे। ऐसा देखकर साथ वाले संतों को शंका उत्पन्न हुई। भगवान् के पास पहुँच कर अपनी शंका प्रभु के सामने रखी। प्रभु ने समाधान फरमाया - "हे आर्यो! यह कुमार मुनि चरम शरीरी जीव है। इसी भव में मोक्ष जाने वाला है, अतः इनकी हिलना-निन्दा मत करो।" भगवान् के वचनों को सब श्रमणों ने स्वीकार किया। अतिमुक्तकमुनि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। कई वर्षों तक संयम पर्याय का पालन कर, अन्त में संथारा कर मोक्ष पधारे।

सातवां वर्ग - इस वर्ग के तेरह अध्ययन हैं - १. नंदा २. नन्दवती ३. नन्दोत्तरा ४. नन्दश्रेणिका ५. मरुता ६. सुमरुता ७. महामरुता ८. मरुद्देवा ९. भद्रा १०. सुभद्रा ११. सुजाता १२. सुमनातिका और १३. भूतदत्ता। ये तेरह ही श्रेणिक राजा की रानियाँ हैं। इन सभी ने श्रेणिक राजा की मौजूदगी में ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा अंगीकार की। सभी ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बीस वर्ष संयम का पालन किया और अन्त में सिद्धिगति को प्राप्त किया।

आठवाँ वर्ग - इस वर्ग के दस अध्ययन हैं - १. काली २. सुकाली ३. महाकाली ४. कृष्णा ५. सुकृष्णा ६. महाकृष्णा ७. वीरकृष्णा ८. रामकृष्णा ९. पितृसेनकृष्णा और १०. महासेनकृष्णा। ये सभी श्रेणिक राजा की रानियाँ थी। इन्होंने श्रेणिक राजा के देहावसान के बाद दीक्षा ग्रहण की। श्रेणिक राजा के देहावसान के पश्चात् उसका पुत्र कोणिक राजा बना उसने अपनी राजधानी चम्पानगरी बनाई। राज्य का संचालन करते हुए उसके सहोदर लघुभ्राता वेहलकुमार के साथ हार और हाथी को हथियाने का विवाद हो गया, जिसके कारण राजा चेटक के साथ वैशाली में महाशिला कंटक और रथमूसल संग्राम हुआ, जिसमें काली आदि दस रानियों के कालकुमार आदि दसों राजकुमार मृत्यु को प्राप्त हो गये। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चम्पानगरी में विराजते थे। उनकी माताओं ने श्रमण भगवान् महावीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी से पूछा कि क्या हम अपने पुत्रों को वापिस देख सकेंगे, तो उन्हें प्रभु से ज्ञात हुआ कि उनके दसों पुत्र तो युद्ध के मैदान में मारे जा चुके हैं। यह सुनकर सभी को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन सभी ने आर्हती दीक्षा अंगीकार कर घोर तपस्या की आराधना की। काली आर्य के रत्नावली तप, सुकाली आर्या ने कनकावली तप, महाकाली आर्या ने लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप, कृष्णा आर्या ने महासिंह निष्क्रीड़ित तप, सुकृष्णा आर्या ने सप्त सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा तप, महाकृष्णा आर्या ने लघु सर्वतोभद्र तप, वीरकृष्णा आर्या ने महासर्वतोभद्र तप, रामकृष्णा आर्या ने भद्रोत्तर-प्रतिमा तप, पितृसेनकृष्णा आर्या ने मुक्तावली तप और महासेन कृष्णा आर्या ने आयम्बिल-वर्द्धमान तप की आराधना की। इन सभी का वर्णन प्रस्तुत अंतकृत दशा सूत्र में खूब विस्तार से किया गया है।

इस प्रकार संक्षिप्त में प्रस्तुत सूत्र का परिचय दिया गया। विस्तार से चिंतन मनन करने के लिए पाठकों को सूत्र का पारायण करना चाहिये।

हमारे संघ द्वारा अंतगडदसा सूत्र मूल अन्वयार्थ, संक्षिप्त विवेचन युक्त पूर्व में प्रकाशित हो रखा है। जिसका अनुवाद समाज के जाने माने विद्वान पं. र. श्री घेवरचन्दजी बांठिया न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धान्त शास्त्री ने अपने गृहस्थ जीवन में किया था। जिसे स्वाध्याय प्रेमी श्रावक-श्राविका वर्ग ने काफी पसन्द किया। फलस्वरूप उक्त प्रकाशन की १६ आवृत्तियाँ संघ द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। अब संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत इसका प्रकाशन किया जा रहा है। इसके अनुवाद का कार्य मेरे सहयोगी **श्रीमान् पारसमलजी सा. चण्डालिया** ने प्राचीन टीकाओं के आधार पर किया है। आपके अनुवाद को **कोंडागांव के धर्मप्रेमी सुश्रावक श्रीमान् दिलीपजी चोरड़िया एवं श्रीमान् राजेशसजी चोरड़िया (दोनों भाइयों)** ने वर्तमान ज्ञानगच्छाधिपति श्रुतधर भगवंत की आज्ञा से आगमज्ञ पूज्य लक्ष्मीचन्दजी म. सा. को सुनाने की कृपा की। पूज्यश्री ने जहाँ कहीं भी आगमिक धारणा सम्बन्धी न्यूनाधिकता महसूस की वहाँ संशोधन करने का संकेत किया। अतः हमारा संघ पूज्य गुरु भगवन्तों का एवं धर्मप्रेमी, सुश्रावक **श्रीमान् दिलीपजी चोरड़िया एवं श्रीमान् राजेशसजी चोरड़िया (दोनों भाइयों)** का हृदय से आभार व्यक्त करता है। तत्पश्चात् मैंने इसका अवलोकन किया।

इसके अनुवाद में भी संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र के अनुवाद (मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन) की शैली का अनुसरण किया गया है। यद्यपि इस आगम के अनुवाद में पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी रखने के बावजूद विद्वान् पाठक बन्धुओं से निवेदन है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि जहाँ कहीं भी कोई त्रुटि, अशुद्धि आदि ध्यान में आवे वह हमें सूचित करने की कृपा करावें। हम उनका आभार मानेंगे और अगली प्रकाशित होने वाली प्रति में उन्हें संशोधित करने का ध्यान रखेंगे।

संघ का आगम प्रकाशन का कार्य पूर्ण हो चुका है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशित हुए हैं वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हों। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी हैं।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबहन शाह** एवं पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिह्नों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें। अंतकृतदशा सूत्र की प्रथम आवृत्ति का अक्टूबर २००५ में **गुप्त साधर्मी बन्धु** के आर्थिक सहयोग से प्रकाशन किया गया। जो अल्प समय में ही अप्राप्य हो गई। अब इसकी द्वितीय आवृत्ति का प्रकाशन किया जा रहा है। जैसा कि पाठक बन्धुओं को मालूम ही है कि वर्तमान में कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्य में काफी वृद्धि हो चुकी है। फिर भी **श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** के आर्थिक सहयोग से इसका मूल्य मात्र **रु. २५) पच्चीस रुपया** ही रखा गया है जो कि वर्तमान् परिपेक्ष्य में ज्यादा नहीं है। पाठक बन्धु इस द्वितीय आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठाएंगे। इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.)
दिनांकः ५-४-२००७

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
अ. भा. सु. जैन सं. रक्षक संघ, **जोधपुर**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण- खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण- खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर, जब तक नया राजा घोषित न हो

१९. युद्ध स्थान के निकट जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो, जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा- दिन रात

२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में- १-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तकृतदशा सूत्र
विषयानुक्रमणिका

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१.	प्रस्तावना	१-२
	प्रथम वर्ग	**३-२३**
२.	**प्रथम अध्ययन - गौतमकुमार**	३
३.	सुधर्मा स्वामी का पदार्पण	५
४.	जंबूस्वामी की जिज्ञासा	६
५.	सुधर्मा स्वामी का समाधान	७
६.	द्वारिका नगरी का वर्णन	८
७.	कृष्ण वासुदेव की ऋद्धि	१०
८.	गौतमकुमार का जन्म एवं सुखोपभोग	१२
९.	भगवान् अरिष्टनेमिनाथ का पदार्पण	१४
१०.	जिनवाणी श्रवण और वैराग्य	१४
११.	गौतमकुमार की दीक्षा	१४
१२.	ज्ञानाराधना और तपाराधना	१५
१३.	भगवान् का विहार	१७
१४.	गौतम अनगार द्वारा भिक्षु प्रतिमा ग्रहण	१८
१५.	संथारा और निर्वाण	१८
१६.	प्रथम अध्ययन का उपसंहार	२२
१७.	**शेष नौ(२-१०) अध्ययन**	२३
	द्वितीय वर्ग	**२४-२६**
१८.	प्रस्तावना	२४
१९.	**अध्ययनों के नाम**	२४
२०.	**उपसंहार**	२५

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	तृतीय वर्ग	**२७-९०**
२१.	प्रस्तावना	२७
२२.	तेरह अध्ययनों के नाम	२७
२३.	प्रथम अध्ययन भाव-पृच्छा	२७
२४.	अनीकसेनकुमार	२८
२५.	माता पिता और बाल्यकाल	२८
२६.	शैक्षणिक जीवन	२९
२७.	विवाह और सुखोपभोग	३०
२८.	भगवान् का पदार्पण	३१
२९.	संयमी जीवन और मोक्ष	३१
३०.	प्रथम अध्ययन का उपसंहार	३२
३१.	**दो से छह तक पांच अध्ययन**	३३
३२.	**सप्तम अध्ययन - सारणकुमार**	३४
३३.	**अष्टम अध्ययन - गजसुकुमाल**	३५
३४.	छह अनगारों का परिचय	३५
३५.	छहों अनगारों का संकल्प	३६
३६.	बेले-बेले तप की अनुज्ञा	३७
३७.	भिक्षा हेतु भ्रमण	३८
३८.	देवकी के घर में प्रवेश	३९
३९.	देवकी द्वारा प्रसन्नतापूर्वक भिक्षादान	३९
४०.	देवकी की शंका	४२
४१.	अनगारों का समाधान	४३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
४२.	देवकी देवी का चिन्तन	४६
४३.	देवकी की शंका	४६
४४.	भगवान् अरिष्टनेमि का समाधान	४७
४५.	पुत्रों की पहचान, छह अनगारों को वंदन	५२
४६.	देवकी की पुत्र-अभिलाषा	५३
४७.	देवकी का आर्त्तध्यान	५५
४८.	माता-पुत्र का वार्तालाप	५६
४९.	श्रीकृष्ण का प्रयास	५७
५०.	देवकी को शुभ समाचार	५९
५१.	गर्भ पालन	६०
५२.	गजसुकुमाल का जन्म	६१
५३.	सोमिल की पुत्री सोमा	६२
५४.	भगवान् का द्वारिका पदार्पण	६३
५५.	सोमा कन्या की याचना	६४
५६.	भगवान् का धर्मोपदेश	६५
५७.	गजसुकुमाल को वैराग्य	६६
५८.	माता पिता से दीक्षा हेतु आग्रह	६७
५९.	एक दिन की राज्यश्री और प्रव्रज्या	६७
६०.	गजसुकुमाल अनगार द्वारा - भिक्षु प्रतिमा ग्रहण	६९
६१.	सोमिल का क्रोध	७१
६२.	गजसुकुमाल अनगार के सिर पर अंगारे	७३
६३.	असह्यवेदना और मोक्ष गमन	७४
६४.	पांच दिव्य प्रकट	७७
६५.	कृष्ण वासुदेव का भगवान् की-सेवा में जाना	७८
६६.	वृद्ध पर अनुकम्पा एवं सहयोग	७९
६७.	गजसुकुमाल अनगार के बारे में पृच्छा	८०
६८.	सोमिल द्वारा मोक्ष प्राप्ति में सहायता	८०
६९.	भ्रात मुनि घातक कौन?	८२
७०.	पहचान का उपाय	८३
७१.	कृष्ण और सोमिल की भेंट	८४
७२.	सोमिल की मौत	८५
७३.	सोमिल शव की दुर्दशा	८५
७४.	उपसंहार	८७
७५.	**नवम अध्ययन - सुमुखकुमार**	८८
७६.	**शेष (१०-१३) अध्ययन**	९०
	चतुर्थ वर्ग	**९१-९३**
७७.	परिचय	९१
७८.	**प्रथम अध्ययन-जालिकुमार का वर्णन**	९२
७९.	**शेष नौ अध्ययन**	९२
	पंचम वर्ग	**९४-११५**
८०.	परिचय	९४
८१.	**प्रथम अध्ययन - पद्मावती**	९४
८२.	भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण	९५
८३.	द्वारिका विनाश का कारण	९५
८४.	कृष्ण का पश्चात्ताप	९७
८५.	वासुदेव निदानकृत होते हैं	९९
८६.	भविष्य पृच्छा	१००
८७.	भगवान् द्वारा भविष्य-कथन	१००
८८.	आगामी भव में तीर्थंकर और मुक्ति	१०१
८९.	हर्षावेश और सिंहनाद	१०२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
९०.	द्वारिका में उद्घोषणा और-कृष्ण की धर्मदलाली	१०३
९१.	पद्मावती को वैराग्य	१०५
९२.	दीक्षा की आज्ञा	१०५
९३.	पद्मावती का दीक्षा-महोत्सव	१०६
९४.	पद्मावती आर्या की साधना और मुक्ति	१०९
९५.	२-८ अध्ययन	११३
९६.	मूलश्री और मूलदत्ता	११४
	छठा वर्ग ११६-१७२	
९७.	अध्ययन - परिचय	११६
९८.	प्रथम अध्ययन - मकाई गाथापति	११७
९९.	मकाई अनगार बने	११७
१००.	संयम पालन और मोक्ष	११८
१०१.	द्वितीय अध्ययन-किंकम गाथापति	११८
१०२.	तृतीय अध्ययन - मुद्गरपाणि-(अर्जुन मालाकार)	११९
१०३.	अर्जुनमाली की यक्ष भक्ति	१२०
१०४.	ललित गोष्ठी की स्वच्छंदता	१२१
१०५.	पति-पत्नी द्वारा पुष्प-चयन	१२२
१०६.	ललित गोष्ठी का दुष्ट चिंतन	१२२
१०७.	बंधुमती के साथ भोगोपभोग	१२३
१०८.	अर्जुनमाली का चिंतन	१२४
१०९.	यक्षाविष्ट अर्जुनमाली का कोप	१२५
११०.	प्रतिदिन सात प्राणियों की हत्या	१२५
१११.	श्रेणिक की उद्घोषणा	१२६
११२.	सुदर्शन श्रमणोपासक	१३०
११३.	भगवान् महावीर स्वामी का-राजगृह पदार्पण	१३१
११४.	सुदर्शन सेठ की शुभ भावना	१३२
११५.	सुदर्शन और माता-पिता का संवाद	१३२
११६.	माता पिता की स्वीकृति	१३४
११७.	सुदर्शन की निर्भीकता	१३५
११८.	सागारी अनशन ग्रहण	१३५
११९.	यक्ष की हार	१३७
१२०.	उपसर्ग मुक्त	१३८
१२१.	अर्जुनमाली की भावना	१४०
१२२.	भगवान् की पर्युपासना और दीक्षा	१४०
१२३.	अर्जुन अनगार की प्रतिज्ञा	१४३
१२४.	अर्जुन अनगार को उपसर्ग	१४४
१२५.	अर्जुन अनगार की सहनशीलता	१४६
१२६.	अर्जुन अनगार की मुक्ति	१४९
१२७.	चतुर्थ अध्ययन-काश्यप गाथापति	१५३
१२८.	पंचम अध्ययन-क्षेमक गाथापति	१५३
१२९.	छठा अध्ययन-धृतिधर गाथापति	१५४
१३०.	सप्तम अध्ययन-कैलाश गाथापति	१५४
१३१.	अष्टम अध्ययन-हरिचंदन गाथापति	१५५
१३२.	नौवां अध्ययन-वारत्तक गाथापति	१५५
१३३.	दसवाँ अध्ययन-सुदर्शन गाथापति	१५६
१३४.	ग्यारहवां अध्ययन-पूर्णभद्र गाथापति	१५६
१३५.	बारहवाँ अध्ययन-सुमनभद्र गाथापति	१५७
१३६.	तेरहवाँ अध्ययन-सुप्रतिष्ठ गाथापति	१५७
१३७.	चौदहवाँ अध्ययन-मेघ गाथापति	१५८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१३८.	**प्रन्द्रहवाँअध्ययन-अतिमुक्तक-अनगार**	**१५९**
१३९.	भगवान् का पदार्पण	१५९
१४०.	अतिमुक्तक इन्द्रस्थान में	१६०
१४१.	अतिमुक्तक - गौतमस्वामी संवाद	१६१
१४२.	श्रीदेवी द्वारा आहार दान	१६२
१४३.	भगवान् की सेवा में जाने की इच्छा	१६३
१४४.	भगवान् की पर्युपासना	१६५
१४५.	दीक्षा की भावना	१६५
१४६.	दीक्षा की आज्ञा हेतु माता-पिता-से चर्चा	१६६
१४७.	अतिमुक्तक की दीक्षा और सिद्धिगमन	१६९
१४८.	**सोलहवाँ अध्ययन-अलक्ष**	**१७१**
१४९.	अलक्ष राजा द्वारा भगवान् की-पर्युपासना	१७१
१५०.	दीक्षा और मोक्ष गमन	१७२
	सातवां वर्ग	**१७३-१७४**
१५१.	नंदा आदि रानियाँ	१७३
१५२.	दीक्षा एवं सिद्धि	१७३
	आठवां वर्ग	**१७५-२२१**
१५३.	प्रस्तावना	१७५
१५४.	दस अध्ययनों के नाम	१७५
१५५.	**प्रथम अध्ययन-काली आर्या**	**१७५**
१५६.	काली द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण	१७६
१५७.	रत्नावली तप की आराधना	१७७
१५८.	प्रथम परिपाटी	१७८
१५९.	दूसरी परिपाटी	१८०
१६०.	तीसरी-चौथी परिपाटी	१८०
१६१.	रत्नावली तप की स्थापना	१८६
१६२.	तप तेज से शरीर की शोभा	१८७
१६३.	काली आर्या का धर्मचिंतन	१८८
१६४.	पंडित मरण और मोक्ष गमन	१८९
१६५.	**द्वितीय अध्ययन-सुकाली आर्या**	**१९०**
१६६.	कनकावली तप की आराधना व सिद्धि	१९०
१६७.	**तृतीय अध्ययन-महाकाली आर्या**	**१९३**
१६८.	**चौथा अध्ययन-कृष्णा आर्या**	**१९७**
१६९.	**पांचवां-अध्ययन-सुकृष्णा आर्या**	**२००**
१७०.	सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा	२०१
१७१.	अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा	२०२
१७२.	नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा	२०३
१७३.	दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा	२०४
१७४.	**छठा अध्ययन-महाकृष्णा आर्या**	**२०६**
१७५.	**सातवां अध्ययन-वीरकृष्णा आर्या**	**२०९**
१७६.	**आठवां अध्ययन-रामकृष्णा आर्या**	**२१२**
१७७.	**नौवां अध्ययन-पितृसेनकृष्णा आर्या**	**२१४**
१७८.	**दसवाँ अध्ययन-महासेनकृष्णा आर्या**	**२१८**
१७९.	उपसंहार	२२०
१८०.	परिशिष्ट (१)	२२२
१८१.	परिशिष्ट (२)	२२३
१८२.	परिशिष्ट (३)	२२४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अ० भा० सुधर्म जैन सं० रक्षक संघ, जोधपुर आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	२५-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
२.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१, २	८०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००
१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	आचारांग सूत्र भाग १	२५-००
१६.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१७-१९.	उत्तराध्ययनसूत्र भाग १,२,३	४५-००
२०.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२१.	दशवैकालिक सूत्र	१०-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२६.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२९.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
३०-३२.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३३.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३४.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३५-३७.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	५७-००
३८.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३९.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
४०.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४१.	नवतत्वों का स्वरूप	१३-००
४२.	अगार-धर्म	१०-००
४३.	Saarth Saamaayik Sootra	१०-००
४४.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४५.	तेतली-पुत्र	४५-००
४६.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४७.	जैन स्वाध्याय माला	१८-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	नाम	मूल्य
४९.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००
५०.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५१.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
५२.	जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
५३.	बड़ी साधु वंदना	१०-००
५४.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५५.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५६.	आनुपूर्वी	१-००
५७.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५८.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५९.	जैन स्तुति	७-००
६०.	सिद्ध स्तुति	३-००
६१.	संसार तरणिका	७-००
६२.	आलोचना पंचक	२-००
६३.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६४.	भवनाशिनी भावना	२-००
६५.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६६.	सामायिक सूत्र	१-००
६७.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६८.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६९.	जैन सिद्धांत परिचय	३-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७१.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७२.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७३.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७४.	तीर्थंकरों का लेखा	१-००
७५.	जीव-धड़ा	२-००
७६.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७७.	लघुदण्डक	३-००
७८.	महादण्डक	१-००
७९.	तेतीस बोल	२-००
८०.	गुणस्थान स्वरूप	३-००
८१.	गति-आगति	१-००
८२.	कर्म-प्रकृति	१-००
८३.	समिति-गुप्ति	२-००
८४.	समकित के ६७ बोल	२-००
८५.	पच्चीस बोल	३-००
८६.	नव-तत्त्व	६-००
८७.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८८.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८९.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
९०.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९१.	सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
९२.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९३.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	४-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

❁ णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ❁

अन्तकृतदशा सूत्र

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

प्रस्तावना

यह संसार अनादिकाल से है और अनन्त है अर्थात् यह संसार कब से प्रारंभ हुआ, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार इसका अन्त कब हो जायेगा, यही नहीं कहा जा सकता। इसीलिये संसार अनादि अनन्त कहा जाता है। इसी प्रकार जैन धर्म के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। जैन धर्म भी अनादि अनन्त है। अतएव इसे सनातन (सदातन-सदा रहने वाला) धर्म भी कहते हैं। भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता रहता है। एक उत्सर्पिणी काल और एक अवसर्पिणी काल को मिला कर एक कालचक्र कहलाता है। यह बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम परिमाण वाले उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर भगवान् होते हैं। इसी प्रकार दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम परिमाण वाले अवसर्पिणी काल में भी चौबीस तीर्थंकर होते हैं। गृहस्थावस्था का त्याग कर संयम अंगीकार करने के बाद जब केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो जाता है, तत्पश्चात् वे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं। उस समय उनके जिन (तीर्थंकर) नाम कर्म का उदय होता है। तब ही वे भाव तीर्थंकर होते हैं। उनकी उस प्रथम देशना में ही जितने गणधर होने होते हैं उतने दीक्षित हो जाते हैं। उसी समय तीर्थंकर भगवान् अर्थ रूप से द्वादशांग वाणी का कथन करते हैं और गणधर देव उसे सूत्र रूप से गूंथित करते हैं। इसीलिये वे अपने शासन की अपेक्षा धर्म की आदि करने वाले कहलाते हैं।

बारह अंग सूत्रों के नाम इस प्रकार हैं - १. आचाराङ्ग २. सूयगडाङ्ग ३. ठाणाङ्ग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. समवायाङ्ग ५. विवाहपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति - भगवती) ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७. उपासकदशाङ्ग ८. अंतगडदशाङ्ग ९. अनुत्तरोपपातिक १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक सूत्र और १२. दृष्टिवाद।

जिस प्रकार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, ये पांच अस्तिकाय कभी नहीं थे, कभी नहीं हैं और कभी नहीं रहेंगे, ऐसी बात नहीं, किंतु ये पांच अस्तिकाय भूतकाल में थे, वर्तमान में हैं और भविष्यत् काल में भी रहेंगे। इसी प्रकार यह द्वादशांग वाणी कभी नहीं थी, कभी नहीं है और कभी नहीं रहेगी, ऐसी बात नहीं, किन्तु भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यत् काल में रहेगी। अतएव ये मेरु पर्वत के समान ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरंतर वाचना आदि देते रहने पर भी इसका क्षय नहीं होने के कारण वह अक्षय है। गंगा, सिन्धू नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है। जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र आदि द्वीप समुद्रों के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है। यह द्वादशांग वाणी गणि-पिटक के समान हैं अर्थात् गुणों के गण एवं साधुओं के गण को धारण करने से आचार्य को गणी कहते हैं। पिटक का अर्थ है पेटी या पिटारी अथवा मंजूषा। आचार्य एवं उपाध्याय आदि सब साधु साध्वियों के सर्वस्व रूप श्रुत रत्नों की पेटी (मंजूषा) को 'गणि-पिटक' कहते हैं।

जिस प्रकार पुरुष के बारह अंग होते हैं। यथा - दो पैर, दो जंघा, दो उरू (साथल), दो पसवाडे, दो हाथ, एक गर्दन, एक मस्तक। इसी प्रकार श्रुत रूपी परम पुरुष के भी आचाराङ्ग आदि बारह अङ्ग होते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर हुए थे। उनकी नौ वाचनाएं हुईं। अभी वर्तमान में उपलब्ध आगम पांचवें गणधर श्री सुधर्मास्वामी की वाचना के हैं। सम्पूर्ण दृष्टिवाद तो दो पाट तक ही चलता है। इसलिये दृष्टिवाद का तो विच्छेद हो गया है। ग्यारह अंग ही उपलब्ध हैं। उसमें अंतगडदशाङ्ग सूत्र आठवां अंग सूत्र है।

आठ कर्मों का नाश कर संसार रूपी समुद्र से पार उतरने वाले 'अन्तकृत' कहलाते हैं अथवा जीवन के अंतिम समय में केवलज्ञान और केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष जाने वाले जीव 'अन्तकृत' कहलाते हैं। ऐसे जीवों का वर्णन जिस सूत्र में है वह सूत्र 'अन्तकृतदशा (अन्तगडदसा)' कहलाता है।

अंतगडदशा में एक ही श्रुतस्कंध है। आठ वर्ग हैं। ९० अध्ययन हैं। प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का वर्णन इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमो वग्गो - प्रथम वर्ग

पढमं अज्झयणं - प्रथम अध्ययन

गौतमकुमार

(१)

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था, वण्णओ।

कठिन शब्दार्थ - **तेणं** - उस, **कालेणं** - काल, **समएणं** - समय, **चंपा णामं** - चम्पा नामक, **णयरी** - नगरी, **होत्था** - थी, **वण्णओ** - वर्णक।

भावार्थ - इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय में चम्पा नामक नगरी थी। उस चम्पानगरी का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र में दिया गया है, अतः वहां से जानना चाहिये।

विवेचन - **'तेणं कालेणं'** (उस काल) - वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के सामान्य काल को 'उस काल' कहा गया है **'तेणं समएणं'** (उस समय) - जिसमें वह नगरी और परम तारक वर्धमान स्वामी विद्यमान थे, उस विशेष काल को 'उस समय' कहा गया है।

शंका - जिस समय इस सूत्र का निर्माण हुआ था, उस समय में भी चम्पा नगरी विद्यमान थी। फिर भी 'चम्पानगरी थी' ऐसा भूतकालिक प्रयोग क्यों किया गया?

समाधान - 'चम्पानगरी थी' ऐसा भूतकालिक प्रयोग अवसर्पिणी काल - हीयमान काल की अपेक्षा से किया गया है। क्योंकि जिस काल की कहानी कही जा रही है, उस काल की विभूति के समान, जिस समय कहानी कही जा रही है- उस समय में वह विभूति नहीं थी।

काल द्रव्य के निमित्त से द्रव्यों की अवस्था में सदा परिवर्तन होता रहता है। वस्तु क्षण मात्र भी एक-सी अवस्था में नहीं रह सकती। कुछ क्षणों के पहले ही घटित प्रसंगों के लिये भूतकालिक क्रिया का प्रयोग ही इस बात को सिद्ध कर रहा है। अतः द्रव्य की यह परिभाषा बिलकुल सही है कि 'जो अपने सनातन गुणों में स्थित रहते हुए नई-नई अवस्थाओं को धारण करे या पर्यायों में गमन करें।'

चम्पा नगरी का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से ज्ञातव्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ णं चंपाए णयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ णं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था, वणसंडे वण्णओ। तीसे णं चंपाए णयरीए कोणिए णामं राया होत्था, महया हिमवंत, वण्णओ।

कठिन शब्दार्थ - उत्तरपुरत्थिमे - उत्तर पूर्व, **दिसिभाए** - दिशा भाग, **पुण्णभद्दे णामं** - पूर्णभद्र नामक, **चेइए** - चैत्य (यक्षायतन), **वणसंडे** - वनखण्ड, **कोणिए** - कोणिक, **राया** - राजा, **महया हिमवंत** - महा हिमवान्।

भावार्थ - उस चम्पानगरी के उत्तर-पूर्व दिशा भाग (ईशान-कोण) में पूर्णभद्र नाम का चैत्य (यक्षायतन) था। वहाँ एक अति रमणीय सुन्दर वनखण्ड था। उसका भी विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए।

उस चम्पा नगरी में कोणिक नाम का राजा राज करता था। वह महा हिमवान् महा मलय, महेन्द्र और मेरु पर्वत के समान प्रभावशाली था अर्थात् जिस प्रकार महा हिमवान् पर्वत, लोक की मर्यादा करता है, उसी प्रकार वह भी प्रजा के लिए मर्यादा - नियम बांधने वाला था। जिस प्रकार महामलय पर्वत का सुगन्धित पवन सर्वत्र फैलता है, उसी प्रकार उसकी कीर्ति और यश चारों ओर फैला हुआ था। जिस प्रकार मेरु पर्वत अडिग है, उसी प्रकार वह भी अपनी प्रतिज्ञा एवं कर्त्तव्य पालन में दृढ़ एवं अडिग था। जिस प्रकार शक्र आदि इन्द्र, देवों में महान् हैं, उसी प्रकार वह भी मनुष्यों में प्रधान था। उस कोणिक राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए।

विवेचन - 'चैत्य' शब्द अनेकार्थवाची है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य पूज्य श्री जयमलजी म. सा. ने चैत्य शब्द के ११२ अर्थों की गवेषणा की है। (देखें संघ द्वारा प्रकाशित औपपातिक सूत्र पृ. ६-७)। यहां चैत्य शब्द का अर्थ है - व्यंतरायतन - व्यंतर देव (यक्ष) का स्थान।

प्रश्न - वनखण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर - जहां एक ही जाति के प्रधान वृक्ष हों, उसे वनखण्ड कहते हैं। कोई कोई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि - जहां अनेक जाति के प्रधान वृक्ष हों, उसे 'वनखण्ड' कहते हैं।

कोणिक, श्रेणिक महाराज के पुत्र और चेलना माता के अंगजात थे। कोणिक महाराज को जन्मते ही उकरड़ी पर डाल दिये जाने से मुर्गे द्वारा उनकी अंगुली कुतर दी गई थी, कूण दी गई थी। अतः उनका नाम 'कोणिक' रखा गया। **'महया'** विशेषण कोणिक राजा की महानता दर्शाता है। कोणिक राजा के गुणों का विशेष वर्णन उववाई (औपपातिक) सूत्र में है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुधर्मा स्वामी का पदार्पण

(२)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज-सुहम्मे थेरे जाव पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा णयरी जेणेव पुण्णभद्दे तेणेव समोसरिए।

परिसा णिग्गया जाव पडिगया।

कठिन शब्दार्थ - अज्ज - आर्य, **सुहम्मे थेरे** - स्थविर सुधर्मा, **पंचहिं अणगार सएहिं** - पांच सौ अनगारों के, **सद्धिं** - साथ में, **संपरिवुडे** - संपरिवृत्त-घिरे हुए, **पुव्वाणुपुव्विं** - पूर्वानुपूर्वी से, **चरमाणे** - विचरते हुए, **गामाणुगामं** - ग्रामानुग्राम, **दूइज्जमाणे** - विहार करते हुए, **समोसरिए** - समवसृत हुए, **परिसा** - परिषद्, **णिग्गया** - निकली, **पडिगया** - लौट गयी।

भावार्थ - उस काल उस समय में स्थविर आर्य सुधर्मास्वामी पांच सौ अनगारों के साथ तीर्थंकर भगवान् की परम्परा के अनुसार विचरते हुए एवं अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक उद्यान में पधारे।

आर्य सुधर्मा स्वामी के आगमन को सुनकर परिषद् उन्हें वंदना करने के लिए एवं धर्म-कथा सुनने के लिए अपने-अपने घर से निकल कर वहाँ पहुँची और वंदन कर एवं धर्म कथा सुन कर लौट गई।

विवेचन - १. उत्तम आचारी, निरवद्यजीवी और निष्पाप जीवन वाले संतों के लिए 'आर्य' विशेषण का प्रयोग होता है। उत्तम कुल-शील वाले सद्गृहस्थों को भी 'आर्य' कहा जाता है। जाति-आर्य, कुल-आर्य के साथ-साथ सुधर्मा स्वामी ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य भी थे।

२. सुधर्मा स्वामी का जन्म कोल्लाग सन्निवेश में वीरनिर्वाण के ८० वर्ष पूर्व हुआ। धम्मिल ब्राह्मण आपके पूज्य पिता थे और भद्दिला आपश्री की माता थी। मध्यमा पावा के महासेन उद्यान में गौतमस्वामी आदि के साथ ग्यारह गणधरों में आपकी भी दीक्षा हुई थी। आप ५० वर्ष की उम्र में दीक्षित हुए। वीरनिर्वाण के बाद बारह वर्ष छद्मस्थ रहे, आठ वर्ष केवली पर्याय का पालन कर १०० वर्ष की उम्र में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

सुधर्मा स्वामी, भगवान् महावीर स्वामी के पट्टधर एवं पांचवें गणधर थे। आपके गुणों का विशेष वर्णन ज्ञाताधर्मकथांग आदि सूत्रों में उपलब्ध होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थेरे जाव... में **'जाव'** शब्द के अंतर्गत ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन का **'जाइसंपण्णे कुलसंपण्णे ...** से लगा कर **चोद्दसपुव्वी चउणाणोवगए'** तक का पाठ ग्रहण हुआ है।

३. सुधर्मा स्वामी के लिए **'थेरे'** (स्थविर) विशेषण का व्यवहार हुआ है। 'स्थविर' शब्द की व्याख्या प्रश्नोत्तर में इस प्रकार है -

प्रश्न - स्थविर किसे कहते हैं?

उत्तर - तप संयम में लगे हुए, साधुओं को परीषह-उपसर्ग आने पर यदि वे संयम-मार्ग से गिरते हों, शिथिल बनते हों, तो उन्हें जो संयम में स्थिर करे, उन मुनियों को 'स्थविर' कहते हैं। वे वयः, श्रुत और दीक्षा में बड़े होते हैं। इस अपेक्षा से स्थविर के ३ भेद हैं - १. वयःस्थविर २. श्रुतस्थविर और ३. दीक्षा स्थविर।

१. वयःस्थविर - जिस मुनि की वयः साठ वर्ष की हो, वे वयःस्थविर कहलाते हैं। इन्हें अवस्था-स्थविर भी कहते हैं।

२. श्रुत-स्थविर - जो ठाणांग सूत्र और समवायांग सूत्र के ज्ञाता हों, उन्हें श्रुत-स्थविर कहते हैं। उन्हें ज्ञान-स्थविर भी कहते हैं।

३. दीक्षा-स्थविर - जिनकी दीक्षा पर्याय २० वर्ष की हो - उन्हें दीक्षा स्थविर कहते हैं। उन्हें प्रव्रज्या-स्थविर या पर्याय-स्थविर भी कहते हैं।

जंबूस्वामी की जिज्ञासा

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मस्स अंतेवासी अज्ज जंबू जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी - जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते। अट्ठमस्स णं भंते! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

कठिन शब्दार्थ - अंतेवासी - शिष्य, **पज्जुवासमाणे** - पर्युपासना करते हुए, **आइगरेणं**- आदिकर - अपने शासन की अपेक्षा धर्म की आदि करने वाले, **संपत्तेणं** - संप्राप्त, **सत्तमस्स अंगस्स** - सातवें अंग का, **उवासगदसाणं** - उपासकदशांग, **अयमट्ठे** - यह अर्थ (भाव), **पण्णत्ते** - फरमाया है, **के** - क्या।

भावार्थ - उस काल, उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी की सेवा में सदा समीप रहने वाले, काश्यप-गोत्रीय आर्य जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से इस प्रकार पूछा - हे भगवन्! (अपने शासन की अपेक्षा से) धर्म की आदि करने वाले, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप चार तीर्थ की स्थापना करने वाले यावत् सिद्धि-गति को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने 'उपासकदशा' नामक ७ वें अंग में आनंद, कामदेव आदि दस उपासकों का वर्णन किया है। वह मैंने आपके मुखारविन्द से सुना है। अब कृपा कर यह बताइये कि 'अंतकृतदशा' नामक ८ वें अंग में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किस विषय का प्रतिपादन किया है?

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आर्य सुधर्मास्वामी के समक्ष आर्य जम्बूस्वामी ने आठवें अंग सूत्र अंतगडदशा के भाव सुनने की अपनी जिज्ञासा व्यक्त की है।

अंतगडदसा (अंतकृतदशा) शब्द का अर्थ टीकाकार श्री अभयदेव सूरी ने इस प्रकार किया है - **'अन्तो-भवान्तः, कृतो-विहितो यैस्तेऽन्त-कृतास्तद् वक्तव्यता प्रतिबद्धा दशाः। दशाध्ययनरूपा ग्रन्थपद्धतय इति अन्तकृतदशाः।'**

अर्थ - जिन महापुरुषों ने भव का अन्त कर दिया है, वे 'अन्तकृत' कहलाते हैं। उन महापुरुषों का वर्णन जिन दशा अर्थात् अध्ययनों में किया हो, उन अध्ययनों से युक्त शास्त्र को 'अन्तकृतदशा' कहते हैं। इस सूत्र के प्रथम और अन्तिम वर्ग के दस-दस अध्ययन होने से इसको 'दशा' कहा है।

कोई-कोई 'अन्तकृत' शब्द का ऐसा अर्थ करते हैं कि - 'जो महापुरुष अन्तिम श्वासोच्छ्वास में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये हैं, उन्हें अन्तकृत कहते हैं।' किन्तु यह अर्थ शास्त्र सम्मत नहीं है। क्योंकि केवलज्ञान होते ही तेरहवाँ गुणस्थान गिना जाता है। १३ वें गुणस्थान का नाम 'सयोगी केवली गुणस्थान' है। इस गुणस्थान में योगों की प्रवृत्ति रहती है। इसके अन्त में योगों का निरोध कर १४ वें गुणस्थान में जाते हैं। इसलिए अंतिम श्वासोच्छ्वास में केवलज्ञान उत्पन्न होने की बात कहना ठीक नहीं है। केवलज्ञान होने के बाद १३ वें गुणस्थान में कुछ ठहर कर उसके बाद 'अयोगी-केवली' नामक १४ वाँ गुणस्थान प्राप्त होता है। अतः टीकाकार ने जो अर्थ किया है, वही ठीक है। इस प्रकार भव (चतुर्गति रूप संसार) का अन्त करने वाली महान् आत्माओं में से कुछ महान् आत्माओं के जीवन का वर्णन इस सूत्र में दिया गया है। इसलिए इसे 'अन्तकृतदशा सूत्र' कहते हैं।

सुधर्मा स्वामी का समाधान

(३)

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा -

गाहा - गोयम समुद्द सागर, गंभीरे चेव होइ थिमिए य।
अयले कंपिल्ले खलु, अक्खोभ पसेणई विण्हू॥१॥

कठिन शब्दार्थ - अट्ठमस्स अंगस्स - आठवें अंग का, **अट्ठ** - आठ, **वग्गा** - वर्ग, **अज्झयणा** - अध्ययन।

भावार्थ - जम्बूस्वामी के उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ८वें अंग अन्तकृतदशा सूत्र के आठ वर्ग कहे हैं।

हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक ८वें अंग में आठ वर्गों का प्रतिपादन किया है। उनमें से प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन कहे हैं?

हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक ८वें अंग के प्रथम वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं - १. गौतम २. समुद्र ३. सागर ४. गम्भीर ५. स्तिमित ६. अचल ७. कम्पिल ८. अक्षोभ ९. प्रसेनजित और १०. विष्णुकुमार।

विवेचन - अध्ययनों के समूह को 'वर्ग' कहते हैं। अंतगडदशा सूत्र में आठ वर्ग हैं। प्रथम वर्ग के गौतम आदि दस अध्ययन कहे हैं। ये दसों राजकुमार थे।

द्वारिका नगरी का वर्णन

(४)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-गोयम जाव विण्हू।

पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुवालस-जोयणायामा णवजोयण-विच्छिण्णा धणवइ-मइ-णिम्मिया चामीगरपागारा णाणामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-परिमंडिया सुरम्मा अलकापुरी संकासा पमुइय पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोग-भूया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

कठिन शब्दार्थ - बारवई णामं - द्वारिका नाम की, **दुवालस** - बारह, **जोयण-आयामा** - योजन का आयाम (लम्बाई), **णव** - नौ, **जोयण** - योजन, **विच्छिण्णा** - विष्कम्भ (चौड़ाई), **धणवइ-मइ-णिम्मिया** - धनपति (कुबेर) के बुद्धि कौशल से निर्मित, **चामीगरपागारा** - स्वर्णमय परकोटा, **णाणामणि** - विविध प्रकार की मणियाँ, **पंचवण्ण** - पांच वर्णों की, **कविसीसग** - कपिशीर्षक-कंगूरे, **परिमंडिया** - परिमण्डित - जड़े हुए, **सुरम्मा-सुरम्य, अलकापुरी** - अलकापुरी - कुबेर नगरी, **संकासा** - सदृश, **पमुइय** - प्रमुदित-आनंदपूर्वक, **पक्कीलिया** - क्रीड़ा करते, **पच्चक्खं** - प्रत्यक्ष, **देवलोगभूया** - देवलोक भूत-देवलोक के समान, **पासाईया** - प्रासादीय - मन को प्रसन्न करने वाली, **दरिसणिज्जा** - दर्शनीय, **अभिरूवा** - अभिरूप - प्रतिक्षण नवीन रूप वाली, **पडिरूवा** - प्रतिरूप - सर्वोत्तम (असाधारण) रूप वाली।

भावार्थ - जम्बू स्वामी फिर प्रश्न करते हैं कि - हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंग के प्रथम वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं, तो उनमें से प्रथम अध्ययन में क्या भाव है?

श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि - हे आयुष्मन् जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंग के प्रथम वर्ग के पहले अध्ययन में ये भाव कहे हैं -

हे जम्बू! इस अवसर्पिणीकाल के चौथे आरे में जब २२ वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि-नाथ इस भूमण्डल पर विचरते थे, उस समय सौराष्ट्र देश की राजधानी 'द्वारिका' नाम की नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी। वह धनपति अर्थात् वैश्रमण (कुबेर) के अत्यन्त बुद्धि-कौशल द्वारा बनाई गई थी। वह स्वर्ण के परकोटे से घिरी हुई थी। इन्द्रनील मणि, वैडूर्य मणि, पद्मराग मणि आदि नाना प्रकार की पांच वर्ण की मणियों से जड़े हुए कपिशीर्षक (कंगूरों) से सुसज्जित, शोभनीय एवं सुरम्य थी। जिसकी उपमा अलकापुरी (कुबेर की नगरी) से दी जाती थी। उस नगरी के निवासी सुखी होने से प्रमुदित - हर्षित और क्रीड़ा करने वाले थे, इसलिए वह नगरी भी प्रमुदित और क्रीड़ाकारक थी एवं आमोद-प्रमोद और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रीड़ा की सामग्रियों से परिपूर्ण थी। अतएव वह प्रत्यक्ष देवलोक समान थी। वह प्रासादीय (दर्शकों के मन को प्रसन्न करने वाली) और दर्शनीय थी। वह अभिरूप (प्रतिक्षण नवीन रूप वाली) और प्रतिरूप (सर्वोत्तम-असाधारण) रूप वाली सर्वांग सौन्दर्यपूर्ण देदीप्यमान थी।

कृष्ण वासुदेव की ऋद्धि

(५)

तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए णामं पव्वए होत्था, वण्णओ। तत्थ णं रेवयए पव्वए णंदणवणे णामं उज्जाणे होत्था, वण्णओ। सुरप्पिए णामं जक्खाययणे होत्था, पोराणे। से णं एगेणं वणसंडेणं परिक्खित्ते, असोगवरपायवे।

तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे णामं वासुदेवे राया परिवसइ, महयाहिमवंत रायवण्णओ।

कठिन शब्दार्थ - रेवयए - रैवतक, **पव्वए** - पर्वत, **णंदणवणे** - नंदनवन, **उज्जाणे**- उद्यान, **सुरप्पिए** - सुरप्रिय, **जक्खाययणे** - यक्षायतन, **पोराणे** - प्राचीन, **वणसंडेणं** - वनखण्ड से, **परिक्खित्ते** - घिरा हुआ, **असोगवरपायवे** - श्रेष्ठ अशोकवृक्ष, **परिवसइ** - रहता था।

भावार्थ - उस द्वारिका नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) में रैवतक नामक पर्वत था। उस पर्वत पर नंदनवन नामक उद्यान था, जिसका पूरा वर्णन अन्य सूत्रों से जानना चाहिए। उस उद्यान में सुरप्रिय नाम के यक्ष का यक्षायतन था। वह बहुत प्राचीन था। उस उद्यान में वनखण्ड से घिरा हुआ एक अशोक वृक्ष था।

उस द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज करते थे। जिस प्रकार महा हिमवान् पर्वत, क्षेत्रों की मर्यादा करता है, उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव, लोक मर्यादा को नियत एवं स्थिर करने वाले और लोक मर्यादा के पालक थे।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं,पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंत साहस्सीणं, महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं,

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं रुप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं, अणंगसेणा-पामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवईए णयरीए अद्धभरहस्स य समत्तस्स आहेवच्चं जाव विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - **समुद्दविजयपामोक्खाणं** - समुद्रविजय प्रमुख, **दसण्हं** - दस, **दसाराणं** - दर्शाह - पूज्य पुरुष, **बलदेवपामोक्खाणं** - बलदेव प्रमुख, **पंचण्हं** - पांच, **महावीराणं** - महावीर, **पज्जुण्णपामोक्खाणं** - प्रद्युम्न प्रमुख, **अद्धुट्ठाणं** - साढ़े तीन, **कुमारकोडीणं** - करोड़ कुमार, **संबपामोक्खाणं** - शाम्ब प्रमुख, **सट्ठीए** - साठ, **दुद्दंत** - दुर्दान्त, **साहस्सीणं** - हजार, **महासेणपामोक्खाणं** - महासेन प्रमुख, **छप्पण्णाए** - छप्पन, **बलवग्ग** - बल वर्ग, **वीरसेणपामोक्खाणं** - वीरसेन प्रमुख, **रुप्पिणीपामोक्खाणं** - रुक्मिणी प्रमुख, **सोलसण्हं देवी साहस्सीणं** - सोलह हजार रानियाँ, **अणंगसेणापामोक्खाणं** - अनंगसेना प्रमुख, **अणेगाणं गणियासाहस्सीणं** - अनेक गणिकाएं, **बहूणं** - बहुत, **ईसर** - ईश्वर-ऐश्वर्यशाली, **सत्थवाहाणं** - सार्थवाह (व्यापारी पथिकों के समूह के नायक को 'सार्थवाह' कहते हैं), **अद्धभरहस्स** - अर्द्ध भरत के, **आहेवच्चं** - आधिपत्य-राज।

भावार्थ - द्वारिका नगरी में समुद्रविजय आदि दस दशार्ह और बलदेव आदि पांच महावीर थे। प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार थे। शत्रुओं से कभी पराजित न हो सकने वाले शाम्ब आदि साठ हजार शूरवीर थे। महासेन आदि सेनापतियों की अधीनता में रहने वाला छप्पन हजार बलवर्ग (सैनिक दल) था। वीरसेन आदि इक्कीस हजार कार्यकुशल वीर थे। उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा थे। रुक्मिणी आदि सोलह हजार रानियाँ थी। चौसठ कलाओं में निपुण ऐसी अनंगसेना आदि अनेक गणिकाएं थी और भी बहुत से ऐश्वर्यशाली नागरिक, नगर-रक्षक, सीमान्त-राजा सेठ, सेनापति और सार्थवाह आदि थे।

ऐसे परम प्रतापी कृष्ण-वासुदेव द्वारिका से ले कर क्षेत्र की मर्यादा करने वाले वैताढ्य पर्वत पर्यन्त अर्द्ध भरत (भरत क्षेत्र के तीन खण्ड) का एक छत्र राज करते थे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण वासुदेव के राज्य वैभव का वर्णन किया गया है।

१. जिनकी संख्या दस हों और जो पूज्य हों, उन्हें दशार्ह कहते हैं। वे दस इस प्रकार हैं- १. समुद्रविजय २. अक्षोभ ३. स्तिमित ४. सागर ५. हिमवान् ६. अचल ७. धरण ८. पूरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. अभिचन्द्र और १०. वसुदेव। वसुदेवजी के कुंती और माद्री ये दो छोटी बहनें थीं। बलदेव और वासुदेव के परिवार को भी 'दशार्ह' कहते हैं। जिनमें समुद्रविजय जी तो त्रैलोक्य पूज्य भगवान् अरिष्टनेमिनाथ के पिताजी थे।

२. अमुक प्रकार का शौर्य प्रदर्शित करने पर जिस प्रकार आजकल सैनिकों को वीर चक्र, महावीर चक्र, परमवीर चक्र आदि प्रदान किये जाते हैं वैसे ही वीर, महावीर आदि के विभाग श्री कृष्ण महाराज के समय में होने की संभावना है।

३. वसुदेव की देवकी रानी से कृष्ण महाराज एवं रोहिणी से बलदेव का जन्म हुआ था। प्रद्युम्नकुमार रुक्मिणी के अंगजात थे तथा शाम्ब की माता का नाम जाम्बवती था।

४. सेना की टुकडियां 'रेजिमेन्ट्स' को **'बलवग्ग'** - बलवर्ग कहा जाता है।

५. **''ईसर जाव सत्थवाहाणं''** यहां **जाव** शब्द में तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी और सेनापति का ग्रहण है।

तलवर - राजा के कृपा पात्र को अथवा जिन्होंने राजा की ओर से उच्च आसन (पदवी विशेष) प्राप्त कर लिया है। ऐसे नागरिकों को 'तलवर' कहते हैं।

माडम्बिक - जिसके निकट दो-दो योजन तक कोई ग्राम न हो, उस प्रदेश को 'मडम्ब' कहते हैं, मडम्ब के अधिनायक को 'माडम्बिक' कहा जाता है।

कौटुम्बिक - कुटुम्बों के स्वामी को 'कौटुम्बिक' कहते हैं।

६. **'आहेवच्चं जाव...''** यहां **'जाव'** शब्द में **'पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं'** आदि पद ग्राह्य है। पुर पर मालिकी **'पोरेवच्चं'** है। स्वामित्व करना **'सामित्तं'** है। रक्षा करना **'भट्टित्तं'** है।

गौतमकुमार का जन्म एवं सुखोपभोग

(६)

तत्थ णं बारवईए णयरीए अंधगवण्ही णामं राया परिवसइ, महया हिमवंत वण्णओ। तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था, वण्णओ।

भावार्थ - उस द्वारिका नगरी में महा हिमवान् मन्दर आदि पर्वतों के समान स्थिर एवं मर्यादा पालक तथा बलशाली 'अंधकवृष्णि' नाम के राजा थे। स्त्रियों के सभी लक्षणों से युक्त उनकी धारिणी नाम की रानी थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले -

गाहा - सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तणं कलाओ य।
जोव्वण-पाणिग्गहणं, कंता पासाय भोगा य॥१॥

णवरं गोयमो णामेणं, अट्ठण्हं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ।

कठिन शब्दार्थ - अण्णया कयाइं - किसी समय, **तारिसगंसि** - तथाप्रकार की, **सयणिज्जंसि** - सुखद शय्या में सोई हुई, **सुमिणदंसण कहणा** - स्वप्नदर्शन और कथन, **जम्मं** - जन्म, **बालत्तणं** - बचपन, **कलाओ** - बहत्तर कलाओं का ज्ञान, **जोव्वण** - यौवनवय, **पाणिग्गहणं**- पाणिग्रहण (विवाह), **कंता** - कान्त, **अट्ठण्हं** - आठ, **रायवरकण्णाणं**- श्रेष्ठ राज कन्याओं के साथ, **एगदिवसेणं** - एक दिन में, **पाणिं गिण्हावेंति** - विवाह हुआ, **अट्ठट्ठओ** - आठ-आठ, **दाओ** - दान।

भावार्थ - वह धारिणी रानी किसी समय पुण्यात्माओं के शयन करने योग्य और कोमलता आदि गुणों से युक्त शय्या पर सोई हुई थी। उस समय उसने एक शुभ स्वप्न देखा। स्वप्न देख कर रानी जाग्रत हुई। उसने राजा के पास जा कर अपना देखा हुआ स्वप्न सुनाया। राजा ने स्वप्न का फल बतलाया, यथासमय रानी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। बालक का बाल्यकाल बहुत सुखपूर्वक बीता। उसने गणित, लेख आदि बहत्तर कलाओं को सीखा। उसके बाद युवावस्था होने पर उसका विवाह हुआ। उसका भवन बहुत सुन्दर था और उसकी भोगोपभोग सामग्रियाँ चित्ताकर्षक थीं। इन सब बातों का विस्तृत वर्णन भगवती सूत्र शतक ११ उद्देशक ११ में दिये महाबल कुमार के वर्णन के समान समझना चाहिए। अंतर इतना है कि इनका नाम 'गौतम' था। माता-पिता ने एक ही दिन में आठ सुन्दर राजकन्याओं के साथ इनका विवाह कराया। विवाह में आठ कोटि हिरण्य (चाँदी) आठ कोटि सुवर्ण आदि आठ-आठ वस्तुएं इन्हें दहेज में मिली।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गौतमकुमार के गर्भ में आने से लेकर विवाह तक का वर्णन किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् अरिष्टनेमिनाथ का पदार्पण

(७)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी आइगरे जाव विहरइ। चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए।

कठिन शब्दार्थ - **अरहा** - अर्हन्त, **अरिट्ठणेमी** - अरिष्टनेमि, **आइगरे** - आदिकर, **चउव्विहा देवा** - चार प्रकार के देव, **आगया** - आये, **णिग्गए** - निकले।

भावार्थ - उस काल उस समय में अपने शासन की अपेक्षा से धर्म की आदि करने वाले, बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि, ग्रामानुग्राम विचरते हुए द्वारिका नगरी के बाहर नंदनवन नामक उद्यान में पधारे। वहाँ भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चारों प्रकार के देव तथा मनुष्य और तिर्यंच, भगवान् की धर्म-कथा सुनने के लिए आये। कृष्ण वासुदेव भी अपने भवन से निकल कर भगवान् के समीप धर्म श्रवण करने के लिए पहुँचे।

जिनवाणी श्रवण और वैराग्य

तएणं से गोयमे कुमारे जहा मेहे तहा णिग्गए। धम्मं सोच्चा णिसम्म जं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि।

कठिन शब्दार्थ - **धम्मं** - धर्म को, **सोच्चा** - सुन कर, **णिसम्म** - संतुष्ट हो कर, **देवाणुप्पिया** - हे देवानुप्रिय! **अम्मापियरो** - माता-पिता से, **आपुच्छामि** - पूछ कर, **अंतिए** - समीप, **पव्वयामि** - प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

भावार्थ - ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन में वर्णित मेघकुमार के समान गौतमकुमार भी धर्मकथा सुनने के लिए आये। धर्म-कथा सुन कर और उसे हृदय में धारण कर के गौतमकुमार ने भगवान् से प्रार्थना की कि - 'हे भगवन्! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूँ।'

गौतमकुमार की दीक्षा

एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए, इरियासमिए जाव इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - जहा मेहे - मेघकुमार के समान, **अणगारे जाए** - अनगार जन्म, **इरियासमिए** - ईर्यासमिति से युक्त, **णिग्गंथं पावयणं** - निर्ग्रंथ प्रवचन को, **पुरओ काउं** - आगे रख कर के।

भावार्थ - इसके बाद गौतमकुमार के अनगार होने तक का वृत्तान्त ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन में वर्णित मेघकुमार के समान समझना चाहिये। जैसे मेघकुमार वैराग्य प्राप्त कर, माता-पिता के बहुत समझाने पर भी भोग-विलास की समस्त सामग्री को छोड़ कर अनगार बन गए, उसी प्रकार गौतमकुमार भी अनगार बन गए। अनगार बनने के बाद ईर्या-समिति, भाषा-समिति आदि से ले कर निर्ग्रन्थ-प्रवचन को आगे रख कर (भगवान् के कहे हुए प्रवचनों का पालन करते हुए) विचरने लगे।

विवेचन - 'अणगारे जाए' - वैसे तो कोई भी न तो अपना जन्म देखता है और न मृत्यु देखता है पर संयम लेने वाला अपनी गृहस्थ अवस्था का मरण देखता है और संयमी के रूप में अपना जन्म देखता है। इसीलिये संसारावस्था का त्याग कर अनगार बनने को 'नया जन्म' कहा गया है।

'इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ' - जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में उन्होंने निर्ग्रंथ प्रवचन को आगे रख कर विहार किया अर्थात् निर्ग्रन्थ प्रवचन को सन्मुख रख कर भगवान् की आज्ञाओं का पालन करते हुए विचरने लगे। जैसे आंखों से देख कर सारे काम किए जाते हैं वैसे ही उन्होंने निर्ग्रंथ प्रवचन (जिनवाणी) को अपनी आंखों के समान मान लिया था।

ज्ञानाराधना और तपाराधना

तएणं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

कठिन शब्दार्थ - तहारूवाणं - तथारूप, **थेराणं** - स्थविरों के, **सामाइयमाइयाइं** - सामायिक आदि, **एक्कारस अंगाइं** - ग्यारह अंगों का, **अहिज्जइ** - अध्ययन किया, **बहूहिं** - बहुत से, **चउत्थ** - चतुर्थ भक्त - उपवास, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **भावेमाणे** - भावित करते हुए।

भावार्थ - उसके बाद बाद गौतम अनगार ने किसी समय में अर्हंत भगवान् **अरिष्टनेमि** के गीतार्थ स्थविर साधुओं के समीप सावद्ययोग परिवर्जन निरवद्य योग सेवन रूप **सामायिक** आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छह आवश्यक तथा ११ अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन कर के बहुत-से चतुर्थभक्त (उपवास), षष्ठभक्त (बेला), अष्टभक्त (तेला), दशमभक्त (चोला), द्वादशभक्त (पचोला) अर्द्धमास और मासखमण आदि तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन - निर्ग्रंथ प्रवचन को सर्वस्व समर्पण करने वाले उन गौतम अनगार ने भगवान् अरिष्टनेमि के यथार्थ संयमी तथारूप स्थविर भगवंतों के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का शास्त्राध्ययन किया। इतना ही नहीं स्वाध्याय के साथ साथ उपवास, बेला, तेला, चोला यावत् अठाई अर्द्धमासखमण, मासखमण आदि विविध तप साधना भी चलती रही।

धर्मकथानुयोग में वर्णित जीवन चरित्रों में प्रत्येक साधक के दो महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर हमारा ध्यान जाना चाहिए - १. उन्होंने क्या अध्ययन किया? और २. उनकी तप साधना क्या रही?

उपरोक्त वर्णन से यह फलित है कि प्राचीनकाल में हमारा श्रमण-समाज ज्ञान-ध्यान एवं तपस्या में मग्न रहता था।

शंका - आचारांग आदि ग्यारह अंग हैं फिर सामायिक आदि ग्यारह अंग कहने का क्या आशय है?

समाधान - आवश्यक सूत्र के छह आवश्यक (अध्ययन) हैं, उनमें पहला है सामायिक। यहां आवश्यक सूत्र को सामायिक कह कर आवश्यक सहित ग्यारह अंगों का अध्ययन करना बताया गया है।

शंका - क्या चार वक्त (काल) आहार छोड़े वह चउत्थभत्त - चतुर्थभक्त है?

समाधान - **'चउत्थभत्तमिति उपवासस्य संज्ञा'** चतुर्थ भक्त उपवास की संज्ञा है। **'चउत्थभत्त'** शब्द का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार लिखा है -

''चउत्थं चउत्थेणं, त्ति चतुर्थभक्तं यावद् भक्तं त्यज्यते,- यत्र तच्चतुर्थम् इयं चोपवासस्य संज्ञा, एवं षष्ठादिकमुपवासद्वयादेरिति।''

अर्थ - जिस तप में चार टंक का आहार छोड़ा जाय, उसे **'चउत्थभत्त'** - चतुर्थ भक्त कहते हैं। यह 'चतुर्थ भक्त' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) है किन्तु 'चतुर्थ भक्त' यह उपवास का नाम है। उपवास को चतुर्थ भक्त कहते हैं। अतः चार टंक का आहार छोड़ना यह अर्थ नहीं लेना चाहिए। इसी प्रकार षष्ठ भक्त, अष्ट भक्त आदि शब्द - बेला, तेला आदि की संज्ञा है। शब्दों का व्युत्पत्यर्थ व्यवहार में नहीं लिया जाता है, किन्तु रूढ़ (संज्ञा) अर्थ ही ग्रहण किया जाता है। चउत्थभत्त शब्द भी उपवास, अर्थ में रूढ़ है अतः 'चार टंक आहार छोड़ना यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'चउत्थभत्त' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ व्यवहार एवं प्रवृत्ति में नहीं लिया जाता हैं। चार टंक आहार छोड़ना ऐसा 'चउत्थभत्त' शब्द व्यवहार में अर्थ लेना आगमों से विपरीत है। अतः 'चउत्थभत्त' यह उपवास की संज्ञा है - सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन सूर्योदय तक आठ प्रहर आहार छोड़ना उपवास है।

चार भक्त - चार वक्त (काल) आहार त्याग का यहां आशय नहीं हैं क्योंकि एकांतर करने वाले पारणे के दिन सुबह पहले दिन का छोड़े, शाम का अगले दिन के हिसाब से छोड़े। इस प्रकार तो भोजन ही नहीं कर सकेंगे।

चार टंक आहार छोड़ने पर भी चउत्थभत्त कह सकते हैं और पारणे धारणे में एक-एक टंक न छोड़ कर उपवास करने को भी 'चउत्थभत्त' कहते हैं क्योंकि चउत्थभत्त, छठ भत्त और अट्ठम भत्त आदि नाम क्रमशः उपवास, बेले और तेले के हैं।

भगवान् ऋषभदेव को ६ दिन का संथारा आया, उसे जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में चौदह भक्त का संथारा कहा है। इसी तरह भगवान् महावीर स्वामी के बेले के संथारे को छठ-भक्त कहा है। उनके तो कोई पारणे का प्रश्न ही नहीं था तो भी उनको उपरोक्त भक्त ही बताया है। कृष्ण-वासुदेव ने देवकी के पास से पौषधशाला में जाकर गजसुकुमाल जी के लिए तेला किया। इसी प्रकार अभयकुमार ने दोहद-पूर्ति के लिए तेला किया। धारणे के दिन एक टंक न करने पर भी उसे अट्ठमभत्त की कहा है तथा भगवती सूत्र में दो दिन के आयंबिल को भी आयंबिल छठ कहा है। इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट है कि उपवास, बेला आदि के नाम ही चउक्त भक्त, छट्ठ भक्त आदि है।

तहारूवाणं - तथारूपता - जैसा वेश वैसा ही जीवन तथारूपता होती है। कथनी करणी की समानता वाले श्रमण 'तथारूप श्रमण' कहलाते हैं।

भगवान् का विहार

तएणं अरहा अरिट्ठणेमी अण्णया कयाइं बारवईओ णयरीओ णंदणवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - पडिणिक्खमइ - निकलते हैं, **बहिया** - बाहर, **जणवय विहारं** - जनपद में विहार।

भावार्थ - अर्हंत भगवान् अरिष्टनेमि ने द्वारिका नगरी के नंदन वन उद्यान से विहार कर दिया और धर्मोपदेश करते हुए विचरण करने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतम अनगार द्वारा भिक्षु-प्रतिमा ग्रहण

(८)

तएणं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइं जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

कठिन शब्दार्थ - **जेणेव** - जहां, **तेणेव** - वहां, **उवागच्छइ** - जाते हैं, **तिक्खुत्तो** - तीन बार, **आयाहिणं** - आदक्षिणा, **पयाहिणं** - प्रदक्षिणा, **करेइ** - करते हैं, **तुब्भेहिं** - आपकी, **अब्भणुण्णाए समाणे** - आज्ञा मिलने पर, **मासियं** - मासिकी, **भिक्खुपडिमं** - भिक्षु प्रतिमा को, **उवसंपज्जित्ताणं** - स्वीकार करके, **विहरित्तए** - विचरूं।

भावार्थ - एक दिन गौतम अनगार अर्हंत अरिष्टनेमि के समीप आये और भगवान् अरिष्टनेमि को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिण किया। आदक्षिण-प्रदक्षिण कर के गौतमकुमार ने भगवान् को वंदना नमस्कार किया और वे इस प्रकार निवेदन करने लगे - 'हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो, तो मैं मासिकी भिक्षु-प्रतिमा स्वीकार करूँ।' भगवान् ने फरमाया - 'जैसे सुख हो वैसे करो।'

विवेचन - दोनों हाथ जोड़ने को 'अंजलिपुट' कहते हैं। अंजलिपुट को अपने दाहिने कान से लेकर सिर पर घुमाते हुए बायें कान तक ले जा कर फिर उसे घुमाते हुए दाहिने कान पर ले जावे और बाद में उसे अपने ललाट पर स्थापन करे, इसे आदक्षिण-प्रदक्षिण कहते हैं।

संथारा और निर्वाण

एवं जहा खंदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासित्ता गुणरयणं वि तवोकम्मं तहेव फासेइ, णिरवसेसं एवं जहा खंदओ तहा चिंतइ, तहा आपुच्छइ तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरूहइ, मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं परियाए जाव सिद्धे।

कठिन शब्दार्थ - **फासेइ** - स्पर्श करता है, **गुणरयणं** - गुणरत्न, **तवोकम्मं** - तप कर्म, **णिरवसेसं** - निरवशेष, **चिंतइ** - चिंतन करते हैं, **आपुच्छइ** - पूछते हैं, **थेरेहिं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थविरों के, **सद्धिं** - साथ में, **सेत्तुंजं** - शत्रुञ्जय पर, **दुरूहइ** - चढ़ते हैं, **मासियाए** - मासिक, **संलेहणाए** - संलेखना, **बारस** - बारह, **वरिसाइं** - वर्षों की, **परियाए** - पर्याय, **सिद्धे** - सिद्ध हुए।

भावार्थ - भगवान् की आज्ञा पा कर गौतम अनगार ने भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १ में वर्णित स्कन्दक मुनि के समान बारह भिक्षु-प्रतिमा का सम्यक् आराधन किया और स्कन्दक मुनि के समान ही गुणरत्न-संवत्सर नामक तप का भी पूर्ण रूप से आराधन किया। जिस प्रकार स्कन्दक मुनि ने विचार कर के भगवान् से पूछा, उसी प्रकार गौतम अनगार ने भी विचार किया और भगवान् से पूछा। स्कन्दक मुनि विपुल पर्वत पर गये, उसी प्रकार गौतम मुनि भी स्थविरों के साथ शत्रुंजय पर्वत पर गये और बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन कर मासिक संलेखना कर के सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

विवेचन - यहां गौतम अनगार द्वारा 'द्वादश भिक्षु प्रतिमाओं' व 'गुणरत्न संवत्सर तप कर्म' का उल्लेख हुआ है। प्रासंगिक परिचय आवश्यक होने से यहाँ कुछ ऊहापोह किया जाता है -

प्रश्न - मासिकी भिक्षु प्रतिमा रूप पहली प्रतिमा में किन-किन नियमों का पालन किया जाता है?

उत्तर - शारीरिक संस्कार एवं देह ममत्व त्याग कर प्रतिमाधारी मुनि देव-मनुष्य-तिर्यंच के उपसर्गों को तितिक्षा पूर्वक सहता है। श्रमण, भिखारी, पशु, ब्राह्मण आदि को अंतराय नहीं देता है। अज्ञात कुल से गोचरी करता हुआ एक व्यक्ति के भोजन में से पहली पडिमाधारी साधु एक दत्ति आहार की व एक दत्ति पानी की ग्रहण करता है। साधु के पात्र में दाता द्वारा दिये जाने वाले अन्न और पानी की जब तक धारा अखण्ड बनी रहे उसका नाम 'दत्ति' है। धारा खण्डित होने पर दत्ति की समाप्ति हो जाती है। गर्भवती, स्तनपायी आदि से भिक्षा नहीं लेता। जिस दाता का एक पैर देहली के भीतर व एक बाहर हो, उसी से भिक्षा ग्रहण करता है। दिन के आदि, मध्य व अंत - तीन विभाग करके किसी एक भाग में ही गोचरी जाता है, चाहे मिले या नहीं। पेटा, अर्द्धपेटा, गौमूत्रिका, पतंगवीथिका, शंखावर्ता, गतप्रत्यागता, इन छह प्रकारों में से गोचरी करता है। जहाँ जान पहिचान हों-वहां एक रात्रि, अन्यत्र दो रात्रि से अधिक नहीं ठहर सकता। अधिक ठहरने की अवधि जितना ही छेद या तप का प्रायश्चित्त अधिक ठहरने पर आता है। आहारादि याचने के लिए, मार्ग पूछने के लिए, स्थान आदि की आज्ञा लेने के लिए, प्रश्नों का उत्तर देने के लिए क्रमशः याचनी, पृच्छनी, अनुज्ञापनी और पुट्ठवागरणी - ये चार प्रकार की भाषा बोलना उन्हें कल्पता है, अन्यथा प्रायः मौन ही रखता है। चारों ओर बाग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले, अधोआरामगृह अथवा ऊपर से ही ढका अधोविकट गृह या वृक्ष के नीचे बने स्थान में ही रहना कल्पता है। तीन प्रकार के संस्तारक ग्रहण कर सकता है-पृथ्वी शिला, काष्ठ शय्या और पहले से बिछा संस्तारक। आने-जाने वालों के प्रति उपेक्षा भाव रख कर अपने ज्ञान-ध्यान में लीन रहता है। उपाश्रय में आग लग जावे तो भी निर्भयता पूर्वक अपने ध्यान में लीन रहता है। कोई प्राणान्त करने को तत्पर हो तो भी उसे पकड़ता नहीं है। पाँव में कंकर-कांटा लग जाय तथा मच्छर आदि काटे तो भी बाधा नहीं देता है। सूर्यास्त के बाद एक कदम भी नहीं चलता है। हिंसक पशुओं से डर कर पथ परिवर्तन नहीं करता है। इन्द्रिय प्रतिकूल सर्दी, गर्मी आदि से बचने के लिए अन्यत्र गमन नहीं करता है। विशेष वर्णन के लिए श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, ब्यावर से प्रकाशित श्री भगवती सूत्र भाग १ पृ० ४२५ देखना चाहिए।

प्रश्न - बारह भिक्षु-प्रतिमाओं को वहन करने में कुल कितना समय लगता है?

उत्तर - चूंकि प्रतिमाधारी कहीं भी एक-दो रात्रि से अधिक नहीं ठहर सकते। अतः यह तो स्पष्ट ही है कि प्रतिमा धारण ऋतुबद्ध (शेष) काल के आठ महीनों में ही हो सकता है। एक के बाद दूसरी, तीसरी इस प्रकार अनुबद्ध प्रतिमा धारण का भी वर्णन गौतम, स्कन्दक आदि के वर्णन में हुआ है। अतः सात प्रतिमाओं में सात मास, आठवीं, नववीं, दसवीं, में ७×३=२१ दिन, ग्यारहवीं प्रतिमा अहोरात्रि की बेले के तप से तथा बारहवीं प्रतिमा एक रात्रि की बेले को बढ़ा कर तेले के तप से होती हैं। इस प्रकार ७ मास २३ दिन में प्रतिमा का आराधन होता है।

प्रश्न - फिर दूसरी द्विमासिकी यावत् सातवीं सप्तमासिकी क्यों कही गई है?

उत्तर - कालमान की अपेक्षा उपरोक्त संज्ञा नहीं समझना, सप्तमासिकी का अर्थ 'सातवीं मासिकी प्रतिमा' करना चाहिए।

प्रश्न - दूसरी आदि प्रतिमाओं की पहली की अपेक्षा क्या विशेषता है?

उत्तर - आगे की प्रतिमाओं में दत्तियों की संख्या बढ़ जाती है तथा रात्रि में अमुक आसनों से रहना होता है। विस्तृत वर्णन के लिए श्री दशाश्रुतस्कन्ध की आठवीं दशा देखनी चाहिए। प्रत्येक साधु को प्रतिमावहन की अनुज्ञा नहीं दी जाती है। संहनन-धृति युक्त, अतिशय-पराक्रमी, संयम में तल्लीन, शुद्ध आत्मा - जिसे गुरु की अनुज्ञा प्राप्त हो गई हो - ऐसा महान् बल सम्पन्न साधु ही प्रतिमा धारण कर सकता है। साध्वियाँ इन प्रतिमाओं को धारण नहीं कर सकती। वैसे तो कम से कम उनतीस वर्ष की वय पर्याय, कम से कम बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय, नववें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु तक का ज्ञान तथा गच्छ में रह कर प्रतिमाओं का पूर्वाभ्यास आदि विशेषताएं होना अनिवार्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणरत्न-संवत्सर तप

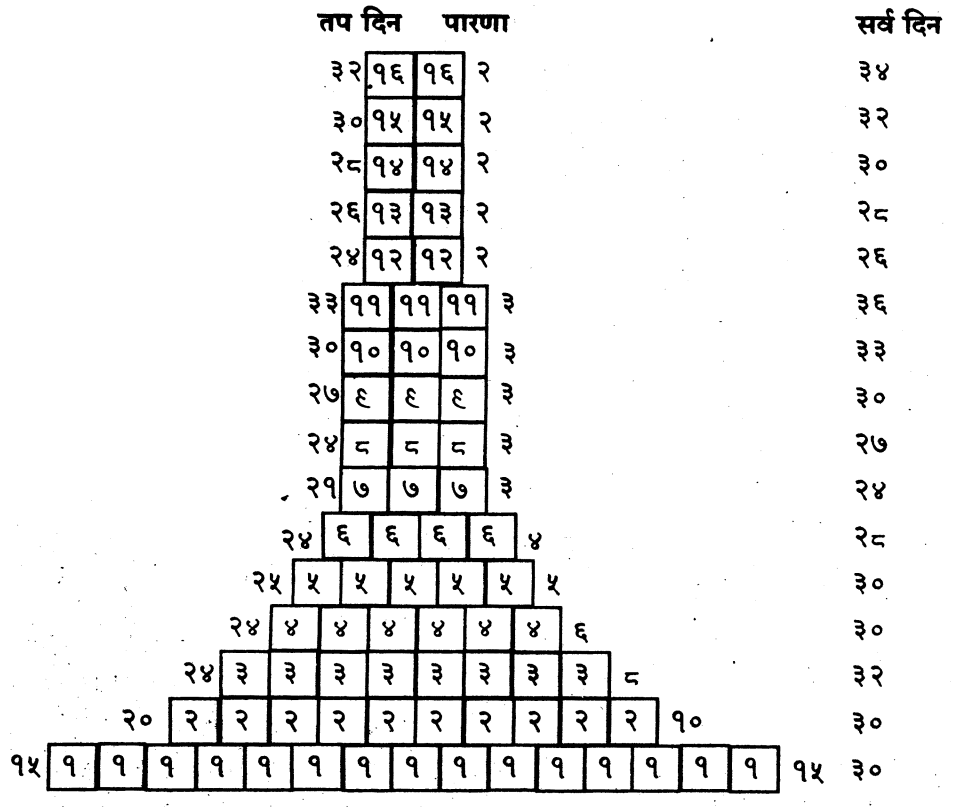

प्रश्न - गुणरत्न-संवत्सर तप की विधि क्या है?

उत्तर - गुणरत्न-संवत्सर तप की आराधना में सोलह महीने लगते हैं, इनमें तपस्या के चार सौ सात दिन तथा पारणे के तिहत्तर दिन लगते हैं। तपस्या के दिन, दिन में उकडू आसन से सूर्य के सन्मुख आतापना एवं रात्रि में प्रावरण रहित हो कर वीरासन से स्थिर रहना पड़ता है। पहले महीने में निरन्तर उपवास, दूसरे में बेले-बेले इस प्रकार सोलहवें महीने में सोलह-सोलह की तपस्या करनी होती है। नीचे तालिका में इसी तप का स्वरूप दिया गया है। तीसरे महीने व पन्द्रहवें महीने में दो दिन ज्यादा लगे हैं तो छठे व तेरहवें महीने में दो-दो दिन कम हैं। ग्यारहवें महीने के छह दिन की पूर्ति सातवें से, दसवें के तीन दिन की पूर्ति आठवें से, बारहवें के बचे चार दिन सोलहवें महीने में मिला देने से बराबर चार सौ अस्सी दिन में आराधना होती हैं, जो तालिका से स्पष्ट है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महीना	तप व तप संख्या	तप के दिन	पारणे के दिन	योग
पहला	१५ उपवास	१५	१५	३०
दूसरा	१० बेला	२०	१०	३०
तीसरा	८ तेला	२४	८	३२
चौथा	६ चोला	२४	६	३०
पांचवां	५ पंचोला	२५	५	३०
छठा	४ छह	२४	४	२८
सातवां	३ सात	२१	३	२४
आठवां	३ अठाई	२४	३	२७
नववां	३ नव	२७	३	३०
दसवां	३ दस	३०	३	३३
ग्यारहवां	३ ग्यारह	३३	३	३६
बारहवां	२ बारह	२४	२	२६
तेरहवां	२ तेरह	२६	२	२८
चौदहवां	२ चौदह	२८	२	३०
पन्द्रहवां	२ पन्द्रह	३०	२	३२
सोलहवां	२ सोलह	३२	२	३४
योग		४०७	७३	४८०

विशेष जानने के लिए श्री भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १ तथा ज्ञातासूत्र प्रथम अध्ययन दृष्टव्य है। गुणरत्न-संवत्सर तप की एक ही परिपाटी होती है। गजसुकुमाल व अर्जुन अनगार के अतिरिक्त अन्तकृत सूत्र के सभी पुरुष नायकों ने द्वादश भिक्षु प्रतिमाओं व गुणरत्न-संवत्सर तप का आराधन किया था, ऐसी धारणा है।

प्रथम अध्ययन का उपसंहार

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। पढमं अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं - 'हे आयुष्मन् जम्बू! सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा नामक आठवें अंग के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में गौतमकुमार के मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया है।'

॥ प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२-१० अज्झयणाणि

प्रथम वर्ग : शेष नौ(२-१०)अध्ययन

एवं जहा गोयमो तहा सेसा वि वण्ही पिया, धारिणी माया, समुद्दे, सागरे, गम्भीरे, थिमिए, अयले, कंपिल्ले, अक्खोभे, पसेणई, विण्हुए, एए एगगमा। पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - सेसा वि - शेष भी, **वण्ही पिया** - वृष्णि पिता, **धारिणी माया** - धारिणी माता, **एगगमा** - एक समान।

भावार्थ - जिस प्रकार गौतमकुमार के प्रथम अध्ययन का वर्णन किया है, उसी प्रकार शेष समुद्रकुमार आदि के नौ अध्ययनों का वर्णन भी जानना चाहिए। कुमारों के नाम इस प्रकार हैं - २ समुद्रकुमार ३ सागरकुमार ४ गम्भीरकुमार ५ स्तिमितकुमार ६ अचलकुमार ७ कम्पिलकुमार ८ अक्षोभकुमार ९. प्रसेनजितकुमार और १०. विष्णुकुमार।

इन सब के पिता का नाम 'अन्धकवृष्णि' और माता का नाम 'धारिणी' है। इसके अतिरिक्त इन नौ अध्ययनों में कोई भेद नहीं है। सब का वर्णन एक समान है।

हे जम्बू! इस प्रकार प्रथम वर्ग के दस अध्ययनों का प्रतिपादन किया गया है।

विवेचनं - शंका - गौतमकुमार के पिता का नाम तो अंधकवृष्णि बताया गया, किंतु शेष नौ के पिता 'वृष्णि' हैं फिर इन्हें सगे भाई बताने का क्या आधार है?

समाधान - यद्यपि प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन में **'वण्हीपिया'** लिखा है तो भी एक ही वर्ग होने से तथा नाम साम्य नहीं होने से जैसे 'भामा' के द्वारा 'सत्यभामा' का ग्रहण होता है, वैसे ही 'वृष्णि' शब्द से अंधकवृष्णि का ग्रहण किया जाता है तथा दसों को सगा भाई मानने की निर्विवाद परम्परागत धारणा है।

॥ प्रथम वर्ग के शेष नौ अध्ययन समाप्त॥

॥ इति प्रथम वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीओ वग्गो - द्वितीय वर्ग

प्रस्तावना

(९)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

भावार्थ - जम्बू स्वामी, अपने गुरु श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि - हे भगवन्! सिद्धिगति को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग में गौतम आदि दस कुमारों का मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त वर्णन किया, वह मैंने सुना। उसके बाद अंतगडदशा के दूसरे वर्ग में कितने अध्ययनों का प्रतिपादन किया है?

अध्ययनों के नाम

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा -

अक्खोभे सागरे खलु, समुद्द हिमवंत अयलणामे य।
धरणे य पूरणे वि य, अभिचंदे चेव अट्ठमए॥१॥

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दूसरे वर्ग में आठ अध्ययनों का वर्णन किया हैं। वे इस प्रकार हैं - १ अक्षोभ २. सागर ३. समुद्र ४. हिमवान् ५. अचल ६. धरण ७. पूरण और ८. अभिचन्द्र।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए वण्ही पिया, धारिणी माया। जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे। अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्मं, सोलस-वासाइं परियाओ, सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धा।

भावार्थ - जिस समय भगवान् अरिष्टनेमि विचरते थे, उस समय द्वारिका नगरी में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्धकवृष्णि नाम के एक राजा रहते थे। उनके धारिणी नाम की रानी थी। उनके अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवान्, अचल, धरण, पूरण और अभिचन्द्र नाम के आठ पुत्र थे।

प्रथम-वर्ग में गौतमादि अध्ययन के समान अक्षोभ आदि आठ अध्ययन भी हैं। गौतम आदि दस कुमारों के समान इन्होंने भी 'गुणरत्न-संवत्सर' तप किया। सोलह वर्ष तक दीक्षा-पर्याय का पालन किया और शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना कर के सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

उपसंहार

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ इइ दोच्चो वग्गो अट्ठ अज्झयणा समत्ता॥

भावार्थ - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदसा नामक आठवें अंग के दूसरे वर्ग में उपरोक्त अर्थ का प्रतिपादन किया है।

विवेचन - अंतगडदशा सूत्र के प्रथम एवं द्वितीय वर्ग के १८ (अठारह) ही अध्ययनों के लिए दो प्रकार कि मान्यताएं प्रचलित हैं। श्रावक दलपत राय जी प्रमुख 'दोनों वर्गों' में सादृश्य होने से प्रथम वर्ग के दसों व्यक्तियों को अंधकवृष्णि के पुत्र और धारिणी रानी के अंगजात सहोदर भाई मानते हैं और दूसरे वर्ग के आठों कुमारों को प्रथम वर्ग के दशवें अध्ययन में वर्णित विष्णु (पाठांतर-वृष्णि) कुमार के पुत्र अर्थात् अंधकवृष्टि के पौत्र मानते हैं।

दूसरी मान्यता - पूज्य श्री जयमलजी महाराज प्रमुख प्रथम वर्ग के दसवें अध्ययन का नाम वृष्णिकुमार नहीं मानकर 'विष्णुकुमार' मानते हैं और द्वितीय वर्ग में वर्णित वृष्णि को अंधकवृष्णि मान कर अठारह ही कुमारों को सहोदर भाई मानते हैं। जैसा कि उनके द्वारा रचित बड़ी साधु वंदना में कहा है -

'गौतमादिक कुंवर, सगा अठारह भ्रात।
सर्व अंधक विष्णु सुत धारणी ज्यांरी मात॥५५॥
तजी आठ अंतेउरी, काढ़ी दीक्षा नी बात।
चारित्र लई ने कीधो मुक्ति नो साथ॥५६॥ इत्यादि॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब इन दोनों मान्यताओं पर विचार करते हैं तो वसुदेव हिण्डी (श्री संघ दासगणि विरचित) एवं पाण्डव चारित्र प्रमुख ग्रंथों में अंधकवृष्णि के पुत्र दश दर्शार्हों के नाम (१. समुद्रविजय, २. अक्षोभ ३. स्तिमित ४. सागर ५. हिमवान ६ अचल ७. धरण ८. पूरण ९. अभिचन्द्र १०. वसुदेव) मिलते हैं जिनमें से बसुदेव को छोड़ कर, शेष नव नाम दोनों में मिल जाते हैं। किन्तु पाण्डव चारित्र प्रमुख ग्रन्थों में माता का नाम सुभद्रा (भद्रा) मिलता है तो अंतगड़ सूत्र में धारिणी तथा आगमिक दृष्टि से भगवान् अरिष्टनेमि के दीक्षित होने के पहले ही समुद्रविजयादि १० दशार्ह तो राज्यपद पर आसीन हो गये थे। किन्तु अंतगड सूत्र के प्रथम द्वितीय वर्ग में वर्णित अठारहों ही बिना राज्य किये कुमार पद में ही दीक्षित हुए थे। अतः इन अठारह कुमारों की १० दशार्हों में तो गिनती करना उचित नहीं है। पौत्र एवं पितामह का सरीखा नाम देने की प्रथा होने के अनुसार एवं अनेक रानियों का नाम 'धारिणी' संभव होने से वैमात्रिक भाईयों के सरीखे नाम भी हो सकते हैं। तथापि प्रथम वर्ग एवं द्वितीय वर्ग के कुमार सहोदर भाई नहीं जचते हैं। क्योंकि प्रथम वर्ग वर्णित १० कुमारों के पिता अंधकवृष्णि राजा थे। तो द्वितीय वर्ग वर्णित कुमारों के पिता वृष्णि थे। उनके लिये राजा होने का उल्लेख नहीं है। अतः उपर्युक्त बात पर विचार करने पर इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि - "अंधकवृष्णि राजा के १० सहोदर पुत्र तो राजा बन जाने के कारण एवं बलदेव वासुदेव के वंश होने के कारण दश दशार्ह के रूप में प्रसिद्ध हुए, शेष धारिणी आदि अनेक रानियों से अनेक पुत्र हुए - वे कुमार पद से ही दीक्षित हो गये। द्वितीय वर्ग में वर्णित आठ कुमार दशवें वृष्णि कुमार के पुत्र थे। (प्रथम वर्ग के दशवें अध्ययन विष्णु का कहीं कहीं पर 'वृष्णि' पाठान्तर भी मिलता है।) वृष्णिकुमार राजा नहीं बनने से उनको द्वितीय वर्ग में राजा नहीं बताया गया है। इस प्रकार दोनों वर्गों के अठारह कुमारों को सहोदर भाई नहीं मानने की तरह ही ज्यादा झुकाव होता है।" बाकी तो विशिष्ट ज्ञानी कहे वही प्रमाण है।

॥ द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन समाप्त ॥

॥ इति द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तइओ वग्गो - तृतीय वर्ग

प्रस्तावना

(१०)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। तच्चस्स णं भंते! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि - हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा नामक आठवें अंग के दूसरे वर्ग का यह प्रतिपादन किया है तो तीसरे वर्ग के क्या भाव कहे हैं?

तेरह अध्ययनों के नाम

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा - १ अणीयसेणे २ अणंतसेणे ३ अजियसेणे ४ अणिहयरिउ ५ देवसेणे ६ सत्तुसेणे ७ सारणे ८ गए ९ सुमुहे १० दुम्मुहे ११ कूवए १२ दारुए १३ अणादिट्ठी।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी से कहते हैं कि - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें अंग अंतगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययनों का वर्णन किया है। वे इस प्रकार हैं - १. अनीकसेन २. अनन्तसेन ३. अजितसेन ४. अनिहतरिपु ५. देवसेन ६. शत्रुसेन ७. सारण ८. गज ९. सुमुख १०. दुर्मुख ११. कूपक १२. दारुक और १३. अनादृष्टि।

प्रथम अध्ययन भाव-पृच्छा

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-अणीयसेणे जाव अणादिट्ठी।

पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! इस आठवें अंग अंतगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तेरह अध्यनयों का वर्णन किया है, तो प्रथम अध्ययन का क्या भाव प्रतिपादन किया है?

अनीकसेनकुमार

(११)

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णामं णयरे होत्था, रिद्धित्थिमिय-समिद्धे वण्णओ। तस्स णं भद्दिलपुरस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सिरीवणे णामं उज्जाणे होत्था, वण्णओ। जियसत्तु राया।

भावार्थ - हे जम्बू! उस काल उस समय में 'भद्दिलपुर' नाम का नगर था। वह नगर उत्तम नगरों के सभी गुणों से युक्त एवं धन-धान्यादि से परिपूर्ण था। उस भद्दिलपुर नगर के बाहर ईशान-कोण में सभी गुणों से युक्त श्रीवन नाम का उद्यान था। नगर में जितशत्रु राजा राज करता था।

माता पिता और बाल्यकाल

तत्थ णं भद्दिलपुरे णयरे णागे णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा। तस्स णं णागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसेणे णामं कुमारे होत्था, सुकुमाले जाव सुरूवे पंचधाइ परिक्खित्ते। तंजहा-खीरधाई, मज्जणधाई, मंडणधाई, कीलावणधाई, अंकधाई जहा दढपइण्णे जाव गिरिकंदरमल्लीणेव चंपगवरपायवे सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

कठिन शब्दार्थ - **णागे णामं** - नाग नाम का, **गाहावई** - गाथापति, **अड्ढे** - ऋद्धि सम्पन्न, **अपरिभूए** - अपरिभूत, **भारिया** - भार्या (पत्नी), **सुकुमाला** - सुकुमार, **सुरूवा** - सुरूप - रूपवती, **अत्तए** - पुत्र (अंगजात), **पंचधाइ** - पांच धायमाताओं से, **परिक्खित्ते** - घिरा हुआ - पालन पोषण किया हुआ, **खीरधाई** - क्षीर धात्री, **मज्जणधाई** - मज्जन धात्री,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंडणधाई - मण्डन धात्री, **कीलावणधाई** - क्रीडन धात्री, **अंकधाई** - अंक धात्री, **गिरिकंदरमल्लीणेव** - पर्वत की गुफा में चम्पक वृक्ष के समान, **सुहंसुहेणं** - सुखपूर्वक, **परिवड्ढइ** - बढ़ने लगा।

भावार्थ - उसी नगर में 'नाग' नाम का एक गाथापति रहता था। वह अतीव समृद्धिशाली और अपरिभूत (जिसका कोई भी पराभव-अपमान नहीं कर सकता) था। उसकी पत्नी का नाम 'सुलसा' था, जो अत्यन्त सुकुमाल एवं सुरूप थी। नाग गाथापति का पुत्र एवं सुलसा का अंगजात 'अनीकसेन' नाम का कुमार था। जिसके हाथ-पाँव अत्यन्त सुकुमाल थे और वह अत्यन्त सुरूप था। १. क्षीर-धात्री (दूध पिलाने वाली धायमाता) २. मज्जनधात्री (स्नान कराने वाली धायमाता) ३. मण्डन-धात्री (वस्त्र-अलंकार आदि से विभूषित करने वाली धायमाता) ४. क्रीडन-धात्री (क्रीड़ा कराने वाली धाय माता) और ५. अंक-धात्री (गोद में उठाने वाली धायमाता) इन पांच प्रकार की धायमाताओं से उसकी दृढ़-प्रतिज्ञ कुमार के समान प्रतिपालना की जाती थी। जिस प्रकार पर्वत की गुफा में रही हुई मनोहर चम्पक लता सुरक्षित रूप से बढ़ती है, उसी प्रकार अनीकसेन कुमार भी सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अनीकसेन कुमार के माता-पिता और उसके बाल्यकाल का वर्णन किया गया है।

दृढ़प्रतिज्ञकुमार का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र में है। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

शैक्षणिक जीवन

(१२)

तएणं तं अणीयसेणं कुमारं साइरेग अट्ठवासजायं अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - **साइरेग** - सातिरेक - कुछ अधिक, **अट्ठवासजायं** - आठ वर्ष की अवस्था में, **कलायरिय** - कलाचार्य, **भोगसमत्थे** - भोग समर्थ।

भावार्थ - अनीकसेन कुमार की उम्र आठ वर्ष से कुछ अधिक हो गई, तो उसके माता-पिता ने उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलाचार्य के पास भेजा। थोड़े ही समय में वह सभी कलाओं में पारंगत हो गया और युवावस्था को प्राप्त हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - गर्भकाल सहित नौ वर्ष यानी लगभग सवा आठ वर्ष की अवस्था में माता पिता ने उन्हें अध्ययन के लिए कलाचार्य - गुरु के पास भेजा। गुरु ने उन्हें सूत्र, अर्थ और प्रयोग रूप से बहोत्तर कलाओं में निष्णात कर माता पिता को वापस सौंपा।

विवाह और सुखोपभोग

(१३)

तएणं तं अणीयसेणं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसियाणं सरिसव्वयाणं सरिसत्तयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेयाणं सरिसेहिंतो कुलेहिंतो आणिल्लियाणं बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति।

कठिन शब्दार्थ - उम्मुक्कबालभावं - बालभाव से मुक्त, **सरिसियाणं** - सरीखी, **सरिसव्वयाणं** - समान वय वाली, **सरिसत्तयाणं** - समान त्वचा वाली, **सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेयाणं** - समान लावण्य, रूप, यौवन, शालीनता, कुलीनता, सुशीलता आदि गुणों से युक्त, **सरिसेहिंतो** - समान, **कुलेहिंतो** - कुलों से, **आणिल्लियाणं**- लायी हुई, **बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं** - इभ्य सेठों की बत्तीस कन्याओं के साथ, **एगदिवसेणं** - एक दिन में।

भावार्थ - अनीकसेन कुमार को यौवनावस्था से युक्त देख कर उसके माता-पिता ने समान वय, समान त्वचा और समान लावण्य, रूप यौवन एवं सुशीलता आदि गुणों से युक्त तथा अपने सदृश्य कुलों से लाई हुई, इभ्य-सेठों की बत्तीस कन्याओं के साथ, एक दिन में विवाह कर दिया।

(१४)

तएणं से णागे गाहावई अणीयसेणस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तं जहा - बत्तीसं हिरण्णकोडिओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **एयारूवं** - इस प्रकार, **पीइदाणं** - प्रीतिदान, **दलयइ** - देता है, **बत्तीसं हिरण्णकोडिओ** - बत्तीस कोटि रजत मुद्रा, **उप्पिंपासायवरगए** - श्रेष्ठ भवन के ऊपर के खंड में, **फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थेहिं** - मृदंगों के मस्तक फूटते थे यानी निरंतर बजती हुई मृदंगों से, **भोगभोगाइं** - इन्द्रिय भोगों को, **भुंजमाणे** - भोगते हुए।

भावार्थ - नाग गाथापति ने सोना, चांदी आदि का बत्तीस-बत्तीस करोड़ धन अनीकसेन कुमार के लिए प्रीतिदान दिया, जैसा कि महाबलकुमार के लिए उसके पिता ने दिया था। अनीकसेन कुमार भी महाबलकुमार के समान भवन के ऊपर के खंड में निरन्तर बजती हुई मृदंगों से यावत् पूर्व पुण्योपार्जित मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए सुखपूर्वक रहता था।

विवेचन - महाबलकुमार का वर्णन भगवती सूत्र श० ११ उ० ११ में है।

भगवान् का पदार्पण

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी जाव समोसढे, सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरइ। परिसा णिग्गया।

कठिन शब्दार्थ - **अहापडिरूवं** - यथाविधि अपनी मर्यादा के अनुसार, **उग्गहं** - अवग्रह को।

भावार्थ - उस काल उस समय में अरहन्त अरिष्टनेमि भगवान् उस भद्दिलपुर नगर के बाहर श्रीवन नामक उद्यान में पधारे और अपनी मर्यादा के अनुसार अवग्रह ले कर विचरने लगे। जनसमुदाय रूप परिषद् धर्म-कथा सुनने के लिए अपने-अपने घर से निकली।

संयमी जीवन और मोक्ष

तएणं तस्स अणीयसेणस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं जहा गोयमे तहा णवरं सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। वीसं वासाइं परियाओ, सेसं तहेव जाव सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे।

कठिन शब्दार्थ - **महया** - महान्, **जणसद्दं** - जनशब्द को, **णवरं** - विशेषता है कि।

भावार्थ - जन-समुदाय का कोलाहल सुन कर अनीकसेन कुमार भी गौतम कुमार के समान अपने भवन से निकला और भगवान् के समीप आ कर धर्म-कथा सुनी तथा माता-पिता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा धारण कर ली। गौतमकुमार के अध्ययन से इसमें यह विशेषता है कि इन्होंने सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष दीक्षा-पर्याय का पालन किया और शत्रुञ्जय पर्वत पर जा कर एक मास की संलेखना कर के सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए। शेष सारा अधिकार गौतम कुमार के समान है।

विवेचन - अर्हन्त अरिष्टनेमि प्रभु भद्दिलपुर के श्रीवन उद्यान में पधारे। तीसरे महाव्रत के धारक होने से प्रभु ने ठहरने के लिए उद्यानपालक की आज्ञा ग्रहण की। यथाविधि अवग्रह तृणादि की आज्ञा लेकर समवसृत हुए तथा तप संयम से आत्मा को भावित करने लगे। धर्म श्रवण करने परिषद् आई।

अनीकसेन कुमार के कर्ण रन्ध्रों में प्रभु दर्शनार्थ जाते हुए जनसमूह का विपुल कोलाहल पड़ा। गौतमकुमार के समान अनीकसेन भी समवशरण में गये। प्रभु की पातक प्रक्षालिनी धर्मदेशना श्रवण की। वैराग्य हुआ। माता-पिता से आज्ञा लेकर प्रभु के चरणों में दीक्षा ग्रहण की। विशेषता यह है कि गौतमकुमार ने सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया था और संयम का बारह वर्ष पालन किया था जबकि अनीकसेन ने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया और संयम का २० वर्षों तक पालन कर शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए।

प्रथम अध्ययन का उपसंहार

एवं खलु! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि - "हे जम्बू! सिद्धि-गति को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन में अनीकसेन कुमार का उपर्युक्त वर्णन किया है।

॥ तीसरे वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२-६ अज्झयणाणि

दो से छह तक पांच अध्ययन

जहा अणीयसेणे एवं सेसा वि अणंतसेणे अजियसेणे अणिहयरिऊ देवसेणे सत्तुसेणे छ अज्झयणा एगगमा। बत्तीसाओ दाओ वीसं वासाइं परियाओ, चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जंति, जाव सेत्तुंजे सिद्धा। छट्ठमज्झयणं समत्तं।

भावार्थ - जैसा अनीकसेन कुमार का अध्ययन है, वैसा ही अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन और शत्रुसेन नामक अध्ययनों का वर्णन है। इन छहों अध्ययनों का वर्णन एक समान है। इनके माता-पिता भी एक ही थे। ये छहों कुमार नाग गाथापति के पुत्र एवं सुलसा के अंगजात थे। बत्तीस-बत्तीस करोड़ का दहेज मिला था। सभी ने ऋद्धि-सम्पत्ति को छोड़ कर दीक्षा अंगीकार की थी। बीस वर्ष दीक्षा पर्याय पाली। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। एक मास की संलेखना करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए।

॥ तीसरे वर्ग के छह अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमं अज्झयणं - सप्तम अध्ययन

सारणकुमार

(१५)

जइ णं भंते! उक्खेवो सत्तमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए जहा पढमे, णवरं वसुदेवे राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणे, सारणे कुमारे, पण्णासओ दाओ, चोद्दस पुव्वाइं, वीसं वासाइं परियाओ, सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे।

॥ सत्तमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - उक्खेवो - उत्क्षेप, **पण्णासओ** - पचास-पचास।

भावार्थ - 'उक्खेवो' - उत्क्षेप का अर्थ है - 'प्रारम्भिक वाक्य'। जिस प्रकार सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी के प्रश्नोत्तर के रूप से प्रथम अध्ययन प्रारम्भ हुआ है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। जम्बू स्वामी, सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि - "हे भगवन्! सिद्धि-गति प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा के तीसरे वर्ग के छठे अध्ययन का जो भाव कहा वह मैंने सुना। अब सातवें अध्ययन में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने क्या भाव बताया सो कृपा कर के कहिए।" श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें अध्ययन में ये भाव कहे हैं।

हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी। 'वसुदेव' नाम के राजा रहते थे। उनकी रानी का नाम 'धारिणी' था। किसी एक रात्रि के समय उसने सिंह का स्वप्न देखा। गर्भ काल पूर्ण होने पर उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'सारणकुमार' रखा गया। सारणकुमार ने बहत्तर कलाओं का अध्ययन किया। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर माता-पिता ने उसका विवाह किया। पचास करोड़ सोनैया आदि की दात (दहेज) मिली। भगवान् अरिष्टनेमि का उपदेश सुन कर सारणकुमार ने दीक्षा अंगीकार की। चौदह पूर्व का अध्ययन किया और बीस वर्ष दीक्षा-पर्याय पाली। अन्त में गौतम कुमार के समान शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना कर के सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए।

॥ तीसरे वर्ग का सातवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं अज्झयणं - अष्टम अध्ययन

गजसुकुमाल

(१६)

जइ णं भंते! उक्खेवो अट्ठमस्स। एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठणेमी। सामी समोसढे।

भावार्थ - आठवें अध्ययन का भी प्रारम्भ वाक्य - **'जइ णं भंते! उक्खेवो'** इत्यादि है। इसका अभिप्राय भी पूर्वानुसार है।

जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि - हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी। भगवान् अरिष्टनेमि पधारे, इत्यादि वर्णन प्रथम वर्ग के समान है।

छह अनगारों का परिचय

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोयरा होत्था। सरिसया सरिसत्तया सरिसव्वया णिलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकिय-वच्छा कुसुमकुंडल-भद्दलया णलकूबर समाणा।

कठिन शब्दार्थ - छ अणगारा - छह अनगार, **भायरो** - भाई, **सहोयरा** - सहोदर, **सरिसया** - सरीखे दिखने वाले, **सरिसत्तया** - सरीखी त्वचा वाले, **सरिसव्वया** - अवस्था में समान दिखने वाले (यद्यपि ये जुड़वां नहीं थे पर सब सरीखी उम्र वाले हों ऐसा आभास होता था), **णिलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासा** - नीलकमल, भैंसे के सिंग के भीतरी भाग और अलसी के फूल के समान, **सिरिवच्छंकियवच्छा** - श्रीवत्स से अंकित वक्ष, **कुसुम-कुंडल भद्दलया** - कुसुम के समान कोमल एवं कुण्डल के समान घुंघराले बालों वाले, **णलकूबर समाणा** - नलकूबर (कूबर देवों के पुत्र) समान।

भावार्थ - उस काल उस समय में छह सहोदर भाई (एक माता के उदर से जन्मे हुए)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् अरिष्टनेमि के अंतेवासी (शिष्य) थे। वे छहों समान आकार, समान रूप और समान वय वाले थे। उनके शरीर की कान्ति नीलकमल, भैंस के सींग के आन्तरिक भाग और गुली के रंग के समान तथा अलसी के फूल के समान नीले रंग वाली थी। उनका वक्षस्थल (छाती) 'श्रीवत्स' नामक चिह्न विशेष से अंकित था। उनके मस्तक के केश फूलों के समान कोमल और कुंडल के समान घुमे हुए - घुंघराले तथा अति सुन्दर लगते थे। सौन्दर्यादि गुणों से वे नलकूबर के समान थे।

विवेचन - अंतेवासी - समीप रहने वाले शिष्य 'अंतेवासी' कहलाते हैं। आज्ञा पालन करने से क्षेत्र की अपेक्षा दूर होते हुए भी आज्ञा की अपेक्षा नजदीक होने से सभी अंतेवासी हैं। उपासकदशा सूत्र में तो महाशतक श्रावक को भी भगवान् ने 'मेरा अंतेवासी' फरमाया है।

भायरो सहोयरा - छहों मुनिराज एक पिता की संतान होने से भाई थे, एक ही माता की संतान होने से सहोदर थे। भाई व सहोदर में अंतर इतना है कि भाई तो अनेक रिश्तों से हो सकते हैं पर सहोदर तो वें ही होते हैं जिनकी माता एक हो।

कुसुमकुंडल-भद्दलया - यद्यपि मुनि शरीर-संस्कार के पूर्ण त्यागी होते हैं तथापि उन छहों मुनियों के बाल काले, घुंघराले एवं कुसुम के समान कोमल थे, कानों पर आई केश-राशि कुण्डल का सा आभास कराती थी।

णलकूबर-समाणा - यद्यपि देवताओं के पुत्र नहीं होते तथापि नल-कूबर द्वारा विकुर्वित श्रेष्ठ रूपवान् बालक के समान वे छहों मुनि अतीव-अतीव रूप राशि के स्वामी थे।

छहों अनगारों का संकल्प

(१७)

तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - इच्छामो णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए।

कठिन शब्दार्थ - **मुंडा** - मुण्डित (द्रव्य और भाव से मुण्डन किये हुए), **भवित्ता** - होकर, **अगाराओ** - अगार से, **अणगारियं** - अनगार धर्म में, **पव्वइया** - प्रव्रजित, **इच्छामो**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहते हैं, **तुब्भेहिं** - आपकी, **अब्भणुण्णाया समाणा** - अनुज्ञा प्राप्त होने पर, **जावज्जीवाए**- जीवन पर्यन्त, **छट्ठं छट्ठेणं** - बेले-बेले, **अणिक्खित्तेणं** - निरन्तर - बिना छोड़े लगातार, **तवोकम्मेणं** - तप कर्म से, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **भावेमाणा** - भावित करते हुए, **विहरित्तए** - विचरण करें।

भावार्थ - वे छहों अनगार जिस दिन दीक्षित हुए, उसी दिन उन्होंने भगवान् को वंदन-नमस्कार कर के इस प्रकार निवेदन किया - 'हे भगवन्! यदि आपकी आज्ञा हो, तो हमारी ऐसी इच्छा है कि हम यावज्जीवन निरंतर छट्ठ-छट्ठ (बेले-बेले) की तपश्चर्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करें।'

विवेचन - उन छहों मुनिराजों ने जिस दिन मस्तक मुंडित करवा कर इन्द्रिय-मुण्डन और कषाय-मुण्डन किया तथा गृहस्थ अवस्था का त्याग कर मुनिपना स्वीकारा उसी दिन भगवान् से विनयपूर्वक यावज्जीवन बेले-बेले की तपस्या करने की आज्ञा चाही। क्योंकि जिनशासन में प्रत्येक कार्य का विधि-निषेध आज्ञा पर अवलंबित है।

छट्ठं छट्ठेणं - छट्ठ-छट्ठ (बेले बेले की तपस्या)। छट्ठ भत्त यह बेले की संज्ञा है किंतु 'छह वक्त के भोजन का त्याग करना' - ऐसा अर्थ एकान्त नहीं है।

बेले-बेले तप की अनुज्ञा

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह। तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंति।

कठिन शब्दार्थ - **अहासुहं** - जैसा सुख हो, **देवाणुप्पिया** - हे देवानुप्रिय! **मा** - मत, **पडिबंधं** - प्रतिबंध - प्रमाद - विलम्ब, **करेह** - करो।

भावार्थ - भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रियो! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा करो। धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।' इसके बाद वे छहों अनगार भगवान् की आज्ञा पा कर यावज्जीवन बेले-बेले की तपश्चर्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन - भगवान् अरिष्टनेमिनाथ ने छहों अनगारों की शारीरिक शक्ति रूप बल तथा मानसिक शक्ति रूप स्थाम देख कर फरमाया - हे देवानुप्रियो! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, धर्म कार्य में रुकावट मत करो। संयम व तप मुक्ति के हेतु हैं। मुक्ति के लिए संयम लिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है तो तप, संयम उसके लिए जरूरी है। वे छहों अनगार भगवान् की आज्ञा पाकर बेले बेले का तप करते हुए कर्मों का क्षय करने लगे।

भिक्षा हेतु भ्रमण

(१८)

तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाइं छट्ठक्खमण पारणगंसि पढमाए पोरिसिए सज्झायं करेंति जहा गोयमसामी जाव इच्छामो णं भंते! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए णयरीए जाव अडित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया!

कठिन शब्दार्थ - छट्ठक्खमण पारणगंसि - बेले के पारणे के दिन, **पढमाए** - प्रथम, **पोरिसिए - पोरिसी में, सज्झायं - स्वाध्याय, तिहिं - तीन, संघाडएहिं** - संघाडों में, **अडित्तए - भ्रमण करें।**

भावार्थ - तदनन्तर किसी समय बेले के पारणे के दिन उन छहों अनगारों ने प्रथम प्रहर में **स्वाध्याय किया, दूसरे** प्रहर में **ध्यान किया** और तीसरे प्रहर में भगवान् के समीप आ कर इस प्रकार बोले - 'हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो, तो आज बेले के पारणे में हम छहों मुनि, तीन संघाड़ों में विभक्त हो कर मुनियों के कल्पानुसार सामुदायिक भिक्षा के लिए द्वारिका नगरी में जावें।' भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रियो! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो।'

विवेचन - 'जहा गोयमसामी जाव इच्छामो' - भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक ५ में वर्णित गौतमस्वामी की तरह बेले के पारणे के दिन उन छहों सहोदर मुनियों ने प्रथम प्रहर में शास्त्र स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान (अर्थ चिंतन) तथा तीसरे प्रहर में मुखवस्त्रिका, वस्त्रों और पात्रों की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् पात्रों को लेकर भगवान् के चरणों में विधिवत् वन्दन नमस्कार करके नगरी में भिक्षार्थ जाने की आज्ञा मांगी। आज्ञा मिल जाने पर अविक्षिप्त, अत्वरित, चंचलता रहित तथा ईर्या शोधन पूर्वक शांत चित्त से भिक्षा हेतु भ्रमण करने लगे।

तएणं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठणेमि वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव अडंति।

भावार्थ - भगवान् की आज्ञा पा कर उन अनगारों ने भगवान् को वंदन-नमस्कार किया और सहस्राम्र वन उद्यान के बाहर निकले। दो-दो मुनियों के तीन संघाड़े बना कर शीघ्रता-रहित, चपलता-रहित और लाभालाभ की चिंता की संभ्रान्ति-रहित एवं उद्वेग-रहित वे भिक्षा के लिए द्वारिका नगरी में गये।

देवकी के घर में प्रवेश

तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए णयरीए उच्चणीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गिहे अणुप्पविट्ठे।

कठिन शब्दार्थ - उच्चणीयमज्झिमाइं - ऊँच-नीच और मध्यम, **कुलाइं** - कुलों में, **घरसमुदाणस्स** - गृहसामुदायिक - एक घर से दूसरे घर को, **भिक्खायरियाए** - भिक्षा के लिये, **अडमाणे** - घूमता हुआ, **देवईए देवीए** - देवकी देवी के, **गिहे** - घर में, **अणुप्पविट्ठे**- प्रविष्ट हुआ।

भावार्थ - उस तीन संघाड़ों में से एक संघाड़ा द्वारिका नगरी के ऊंच-नीच और मध्यम-कुलों में गृह-सामुदायिक भिक्षा के लिए घूमता हुआ, राजा वसुदेव और रानी देवकी के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

देवकी द्वारा प्रसन्नतापूर्वक भिक्षादान

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिया पीईमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, भरित्ता ते अणगारे पडिलाभेइ पडिलाभित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **एज्जमाणे** - आते हुए, **हट्ठतुट्ठ** - हृष्टतुष्ट, **चित्तमाणंदिया** - चित्त में आनंदित हुई, **पीईमणा** - प्रीतिवश उसका मन, **परमसोमणस्सिया** - बहुत शांति और सौम्यता की अनुभूति हुई, **हरिसवसविसप्पमाणहियया** - हर्ष के वश विकसित हृदय वाली, **आसणाओ** - आसन से, **अब्भुट्ठेइ** - उठती है, **सत्तट्ठपयाइं** - सात-आठ कदम, **अणुगच्छइ**- सामने जाती है, **भत्तघरे** - भोजनगृह, **सीहकेसराणं** - सिंह केसरी, **मोयगाणं** - मोदकों से, **थालं** - थाल को, **भरेइ** - भरती है, **पडिलाभेइ** - प्रतिलाभित किया, **पडिविसज्जेइ** - विसर्जित किया।

भावार्थ - उस संघाड़े (दो मुनियों) को अपने यहाँ आते हुए देखकर देवकी महारानी अपने आसन से उठी और सात-आठ चरण उनके सामने गई। उन दोनों अनगारों के आकस्मिक आगमन से वह अत्यन्त हर्षित होती हुई बोली - 'मैं धन्य हूँ, जो मेरे घर अनगार पधारे' इस हेतु संतुष्ट-चित्त के कारण वह अत्यन्त आनन्दित हुई। मुनियों के पधारने से उसके अन्तःकरण में अपूर्व प्रेम उत्पन्न हुआ और मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसका हृदय हर्षातिरेक से उछलने लगा (अपूर्व आनन्दित हुआ)। विधिपूर्वक वंदन-नमस्कार कर के वह मुनियों को रसोई-घर में ले गई। फिर सिंहकेसरी मोदक का थाल भर कर लाई और उन अनगारों को प्रतिलाभित कर (बहरा कर) वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर के आदर सहित विनय पूर्वक उनको विसर्जित किया।

विवेचन - शंका - उच्च, नीच और मध्यम कुल की भिक्षा से क्या आशय समझना चाहिये?

समाधान - यहां जन्म या जाति की अपेक्षा से उच्च, नीच और मध्यम कुल का अभिप्राय न समझ कर आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कंध और निशीथ सूत्र के अनुसार राजा आदि के भवन, प्रतिष्ठा और सम्पदा की दृष्टि से उच्च कुल, श्रेष्ठियों के सप्तभौम - प्रासाद, दो तीन मंजिल की अपेक्षा मध्यम कुल और एक मंजिल वाले झोपड़ी में रहने वाले तथा परिवार से छोटे कुल को नीच कुल समझना चाहिये।

दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ५ उद्देशक २ गाथा ५ में कहा है -

"णीयकुलमइक्कमं ऊसढं णाभिधारए"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् - साधु छोटे कुल को लांघ कर ऊंचे कुल अर्थात् भवन या प्रासाद में न जायें।

सत्तट्ठपयाइं - सात या आठ कदम प्रायिक वचन हैं। गिन कर इतने कदम भरे हों, ऐसी कोई बात नहीं है। अर्थात् आदर देने के लिए उठ कर जितनी दूर सामने जा सकती थी, उतनी सामने गई।

सीहकेसराणं मोयगाणं - जिनमें चौरासी प्रकार की विशिष्ट पौष्टिक वस्तुएं मिला कर तैयार किया जाता है उन्हें सिंह केसरी (केसरा) मोदक (लड्डु) कहते हैं। वे कृष्ण वासुदेव के कलेवे के लिए तैयार किये गये थे।

सिंह केसरी (सिंह केसरा) मोदक सिंह के समान सब मोदकों में प्रधान होता है। श्रेष्ठ मेवे, शक्कर आदि मूल्यवान् सामग्री से निष्पन्न यह मोदक उत्तम संहनन वाले वासुदेव आदि ही पचा सकते हैं। केसरा का अर्थ गर्दन के बाल होता है, फीणी की भांति जिन मोदकों का निर्माण सिंह के बालों सरीखे पिण्ड जैसा दिखे अथवा सिंह के बालों जैसे वर्ण वाले मोदक इत्यादि वर्णन सिंह केसरा मोदक के लिए मिलता है।

पडिलाभेइ - गुरु-भक्ति पूर्वक दान देना 'प्रतिलाभ' कहा गया है। तथारूप के श्रमण-निर्ग्रंथों को प्रासुक एषणीय भोजन आदि बहरा कर देवकी श्रावक के बारहवें व्रत की स्पर्शना करती है। दान देने से पूर्व, दान देते समय तथा बहराने के बाद भी वह प्रसन्न होती है। देवकी देवी की यह अनुपम भक्ति आदर्श है।

देवकी देवी ने मुनियों को प्रतिलाभित करके पुनः वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके उन्हें विदाई दी। श्रावक का यह बारहवां व्रत है कि मुनि भगवंतों को प्रासुक एषणीय दान देकर महान् लाभ प्राप्त करे। दान देने के पूर्व, दान देते समय तथा दान देने के बाद दाता को कितनी प्रसन्नता होनी चाहिये, यह बात देवकी के इस प्रसंग से जानी जा सकती है।

(१९)

तयाणंतरं च णं दोच्चे संघाडए बारवईए णयरीए उच्च जाव पडिविसज्जेइ।

भावार्थ - उसके थोड़ी देर बाद दूसरा संघाड़ा भी ऊंच-नीच-मध्यम कुलों में घूमता हुआ देवकी महारानी के घर आया। देवकी महारानी ने उसे भी उसी प्रकार सिंहकेसरी मोदकों से प्रतिलाभित कर विसर्जित किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवकी की शंका

तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए णयरीए उच्चणीय जाव पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता एवं वयासी-किण्णं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए णयरीए दुवालस-जोयण-आयामाए णव-जोयणविच्छिण्णाए पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्चणीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, जण्णं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति?।

कठिन शब्दार्थ - दुवालस-जोयण-आयामाए - बारह योजन लम्बी, **णवजोयण विच्छिण्णाए** - नौ योजन चौड़ी, **पच्चक्खं** - प्रत्यक्ष, **देवलोगभूयाए** - देवलोक (स्वर्गपुरी) के समान, **भत्तपाणं** - आहार पानी, **णो लभंति** - प्राप्त नहीं होता, **भुज्जो-भुज्जो** - बार-बार, **अणुप्पविसंति** - प्रवेश करते हैं।

भावार्थ - इसके बाद तीसरा संघाड़ा भी उसी प्रकार देवकी महारानी के घर आया। देवकी महारानी ने उसे भी उसी आदरभाव से सिंहकेसरी मोदक बहराया। इसके बाद वह विनय पूर्वक पूछने लगी - 'हे भगवन्! कृष्ण-वासुदेव जैसे महाप्रतापी राजा की बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी स्वर्गलोक के सदृश इस द्वारिका नगरी के ऊँच-नीच और मध्यम कुलों में सामुदायिक भिक्षा के लिए घूमते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थों को आहार-पानी नहीं मिलता है क्या? जिससे एक ही कुल में बार-बार आना पड़ता है।

विवेचन - समणा - श्रमण - समभावों से मुनि 'समन' है, कषायों को दबाते रहते हैं सो 'शमन' है, तप संयम में श्रम करने वाले होने से 'श्रमण' हैं।

णिग्गंथा - निर्ग्रंथ - माया, मिथ्यात्व आदि की जिनके गांठ नहीं है जो सरल हैं। बिना गांठ वाले संत निर्ग्रंथ कहलाते हैं।

न तो गरिष्ठ पदार्थों में रुचि तथा रूखे-सूखे पदार्थों में अरुचि के कारण धन्ना (संपन्न) सेठों के ही जाने की भावना और न ही पूंजीपतियों से द्वेष के कारण केवल गरीबों के यहां ही जाना, ऐसी दुर्भावनाओं से वे मुनि मुक्त थे। गोचरी के समान उपदेश के लिए भी आगमकार भगवंत गरीब अमीर को एक ही तराजू में तोलते हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ
जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ

यानी जैसा उपदेश गरीब को वैसा ही धनवान को और जैसा धनवान को वैसा ही गरीब को देना चाहिए, ऐसा भगवान् फरमाते हैं।

उक्त प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि मध्य के तीर्थंकरों के शासन में भी साधु-साध्वी एक घर को एक ही दिन में अनेक बार नहीं फरसते थे। देवकी रानी धर्म की जानकार थी। भगवान् अरिष्टनेमिनाथ के हस्त दीक्षित शिष्यों को पूछने में भी उसने विचार नहीं किया। यदि अनेक बार घर फरसने की तत्कालीन रीति होती तो देवकी के मन में इस प्रकार की शंका होने का कोई कारण ही नहीं रहता।

'भुज्जो-भुज्जो' पद दो-तीन बार के लिए आया है। विचक्षण संत समझ गये कि रूप सरीखा होने के कारण देवकी हम छहों भाई मुनियों को दो ही समझ बैठी है। अतः इस शंका का समाधान करने के लिए वे अनगार फरमाते हैं।

अनगारों का समाधान

(२०)

तए णं ते अणगारा देवइं देवी एवं वयासी - णो खलु देवाणुप्पिए! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए णयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्चणीय जाव अडमाणा भत्तपाणं णो लब्भंति, णो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुप्पविसंति।

भावार्थ - देवकी देवी का प्रश्न सुन कर वे अनगार इस प्रकार कहने लगे - 'हे देवानुप्रिये ! कृष्ण-वासुदेव की स्वर्ग के सदृश इस द्वारिका नगरी में ऊंच-नीच और मध्यम कुलों में भिक्षार्थ घूमते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थों को आहार-पानी नहीं मिलता है। इसलिए वे भिक्षा के लिए एक ही घर में बार-बार आते हैं - ऐसी बात नहीं है।

एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हे भद्दिलपुरे णयरे णागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोयरा सरिसया जाव णलकूबरसमाणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म संसारभउविग्गा भीया जम्मणं-मरणाणं मुंडा जाव पव्वइया।

कठिन शब्दार्थ - संसारभउविग्गा - संसार के भय से उद्विग्न, **भीया** - भयभीत, **जम्मणं-मरणाणं** - जन्म-मरण से।

भावार्थ - हे देवानुप्रिये! हमारा रूप, उम्र आदि एक समान होने के कारण तुम्हारे मन में शंका उत्पन्न हुई है। इसका समाधान यह है कि - हम भद्दिलपुर नगर निवासी नाग गाथापति के पुत्र एवं सुलसा के अंगजात हैं। हम रूप, लावण्य आदि से समान और सौन्दर्य में नलकूबर के समान छह सहोदर भाई हैं। हमने भगवान् अरिष्टनेमि से धर्म सुन कर, हृदय में धारण कर और संसार के भय से उद्विग्न हो कर, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए प्रव्रज्या ग्रहण की है।

तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामो णमंसामो वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो-इच्छामो णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं देवाणुप्पिया! तएणं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो। तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा। तं णो खलु देवाणुप्पिए! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अण्णे। देवइं देवीं एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगया।

कठिन शब्दार्थ - अभिग्गहं - अभिग्रह को, **अभिगिण्हामो** - धारण किया है, **जामेव**- जिस, **दिसं** - दिशा से, **पाउब्भूए** - आए, **तामेव** - उसी, **पडिगए** - लौट गये।

भावार्थ - हमने जिस दिन प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी दिन से भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर के यावज्जीवन बेले-बेले पारणा करने की प्रतिज्ञा की है। उसी प्रतिज्ञानुसार हम बेले-बेले पारणा करते हैं। हम सब के आज बेले का पारणा है, इसलिए पहले प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे प्रहर में ध्यान करने के बाद तीसरे प्रहर में भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर के हम तीन संघाड़ों से निकले। ऊंच-नीच-मध्यम कुलों में सामुदायिक भिक्षा के लिए घूमते हुए संयोगवश हम तीनों संघाड़े तुम्हारे घर आ गये हैं। इसलिए हे देवानुप्रिये! हम वे ही मुनि नहीं हैं, जो पहले आये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थे। हम दूसरे हैं। सर्व प्रथम संघाड़े में जो मुनि आये, वे दूसरे थे और बीच में (दूसरे संघाड़ें में) जो मुनि आये, वे भी दूसरे थे। जो तीसरे संघाड़े में हम आये हैं, सो हम भी दूसरे हैं। अतः हे देवानुप्रिये! हम तुम्हारे घर बार-बार नहीं आये हैं।' इस प्रकार देवकी देवी से कह कर वे मुनि जिधर से आये थे, उधर ही चले गये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देवकी के मन में उठी शंका का मुनि युगल ने समाधान प्रस्तुत किया है।

शंका - देवकी का प्रश्न तो इतना ही था कि क्या आप दुबारा तिबारा आये हैं, तो गृहस्थ अवस्था, संयमी जीवन व तप का परिचय देने की क्या आवश्यकता थी?

समाधान - यद्यपि मुनि को अपना परिचय सामान्यतया देना नहीं चाहिये तथा तपश्चर्या आदि का गोपन करना चाहिये परंतु यहां प्रसंग ऐसा आ पड़ा कि संसार का पूर्व परिचय तो देना पड़ा ही, साथ ही देवकी कहीं ऐसा न समझ ले कि ये पेटू हैं, सिंहकेसरा मोदक के लालच में बार-बार यहां चक्कर लगाते हैं। इस संभावित भ्रम को मिटाने के लिए अनगारों ने कहा - हम करोड़पतियों के घराने से निकले हैं, खाने पीने की कोई कमी वहां नहीं थी। दीक्षा लेने के बाद बेले-बेले का तप यह बता रहा है कि खाना-पीना और मौज करना हमारे संयमी जीवन का लक्ष्य नहीं है।

इस वृत्तांत में यथार्थ झलक रहा है, अभिमान नहीं। ऐसा ही एक यथार्थ - धर्मघोष स्थविर के शिष्यों द्वारा चम्पानगरी में उस समय बताया गया था, जब नागश्री के द्वारा दिये गये कड़ुए तुंबे से महातपोधनी धर्मरुचि अनगार की अकाल मृत्यु हुई थी। "मुनियों ने ईर्ष्यावश धर्मरुचिजी की घात कर दी होगी" ऐसा भ्रम न फैले - इसलिए संतों ने सार्वजनिक रूप से सूचना की थी। बाकी सामान्यतया तो संत समाचारी यही है कि वे जाति, कुल या तप बता कर भिक्षा प्राप्त करते ही नहीं हैं।

जैसे देवकी देवी ने लिहाज नहीं रख कर के अपनी शंका यथातथ्य रख दी, वैसे ही धर्मप्रेमी श्रावकों को मुनियों का ध्यान रखना चाहिए। उनमें कोई गलती या संयम विरुद्ध कोई प्रवृत्ति दिखाई दे तो विनयपूर्वक प्रेम से अरज करनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवकी देवी का चिन्तन

(२१)

तएणं तीसे देवइए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे - एवं खलु अहं पोलासपुरे णयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिया - तुमं णं देवाणुप्पिए! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव णलकूबरसमाणे, णो चेव णं भरहेवासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्संति, तं णं मिच्छा।

कठिन शब्दार्थ - अयमेयारूवे - इस प्रकार का, **अज्झत्थिए** - अध्यवसाय, **समुप्पण्णे**- उत्पन्न हुए, **अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं** - अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण (बाल्य अवस्था में दीक्षित होने के कारण कुमारश्रमण कहा है), **बालत्तणे** - बचपन में, **वागरिया** - कहा, **अट्ठ पुत्ते** - आठ पुत्र, **पयाइस्ससि** - जन्म दोगी, **अण्णाओ** - अन्य, **अम्मयाओ** - माता, **तारिसए** - तादृश।

भावार्थ - उन अनगारों के चले जाने पर देवकी देवी की आत्मा में इस प्रकार मानसिक संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुआ कि जब मैं बालक थी, उस समय पोलासपुर नगर में अतिमुक्तक अनगार ने मुझे कहा था कि - 'हे देवकी! तू आठ पुत्रों को जन्म देगी। तेरे वे सभी पुत्र आकृति, वय और कान्ति आदि में समान होंगे और वे नलकूबर के सदृश सुन्दर होंगे। इस भरत क्षेत्र में तेरे सिवाय अन्य कोई माता ऐसी नहीं होगी, जो ऐसे सुन्दर पुत्रों को जन्म दे सके।'

'मुनियों की वाणी असत्य नहीं होती। परन्तु अतिमुक्तक मुनि का वह कथन मिथ्या हुआ है।'

देवकी की शंका

इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ भारहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु सरिसए जाव पुत्ते पयायाओ। तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामि णमंसामि वंदित्ता णमंसित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी - लहुकरण-जाणप्पवरं जाव उवट्ठवेंति। जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - पच्चक्खमेव - प्रत्यक्ष ही, **दिस्सइ** - दिखता है, **पयायाओ** - जन्म दिया है, **एयारूवं** - इस प्रकार के, **वागरणं** - कथन के विषय में, **पुच्छिस्सामि** - पूछूं, **संपेहेइ** - विचार करती है, **लहुकरणजाणप्पवरं** - शीघ्रगामी बैलों से युक्त श्रेष्ठ रथ को, **उवट्ठवेंति** - उपस्थित करो, **पज्जुवासइ** - पर्युपासना करती है।

भावार्थ - 'मैं आज यह प्रत्यक्ष देख रही हूँ कि इस भरत क्षेत्र में दूसरी माता ने ऐसे पुत्रों को जन्म दिया है। अतिमुक्तक मुनि के वचन असत्य नहीं होने चाहिए। इसलिए उचित है कि मैं भगवान् अरिष्टनेमि के पास जाऊँ और उन्हें वंदन-नमस्कार करूँ तथा उनसे पूछ कर अपने संदेह को दूर करूँ।' ऐसा विचार कर उसने अपने सेवकों को बुलाया और कहा कि - 'हे देवानुप्रियो! धार्मिक रथ तैयार कर मेरे पास लाओ।' देवकी रानी की यह आज्ञा सुनकर सेवकों ने तुरन्त धार्मिक रथ सजा कर उपस्थित किया। उसके बाद देवकी देवी, भगवान् महावीर स्वामी की माता देवानन्दा के समान रथारूढ़ हो कर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप गई और भगवान् को वंदन-नमस्कार कर के पर्युपासना करने लगी।

विवेचन - "जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ" - भगवती सूत्र शतक ९ उद्देशक ३३ में वर्णित देवानन्दा के भगवान् की सेवा में जाने, दर्शन करने एवं पर्युपासना करने के समान देवकी महारानी भगवान् अरिष्टनेमिनाथ की सेवा में गयी अर्थात् देवकी महारानी धार्मिक रथ में बैठ कर द्वारिका के मध्य बाजारों में होती हुई नन्दन वन में भगवान् के अतिशय को देख कर रथ से नीचे उतरी और पांच अभिगम करके समवशरण में जाकर भगवान् को विधिवत् वन्दन नमस्कार करके पर्युपासना (सेवा) करने लगी।

भगवान् अरिष्टनेमि का समाधान

(२२)

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी देवइं देवीं एवं वयासी - 'से णूणं तव देवई! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था - एवं खलु पोलासपुरे णयरे अइमुत्तेणं तं चेव जाव णिगच्छसि, णिगच्छित्ता जेणेव ममं अंतियं हव्वमागया से णूणं देवई देवि! अयमट्ठे समट्ठे? 'हंता अत्थि।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - णिगच्छसि - निकली, **हव्वमागया** - शीघ्रता से, **अयं** - यह, **अट्ठे** - अर्थ - भाव, **समट्ठे** - समर्थ - सत्य, **हंता** - हां, **अत्थि** - है।

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि ने देवकी देवी से इस प्रकार कहा - "हे देवकी! आज इन छह अनगारों को देख कर तेरे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि 'मुझे पोलासपुर नगर में अतिमुक्तक अनगार ने इस प्रकार कहा था - 'हे देवकी! तू आकृति, वय और कान्ति आदि से एक समान, नलकूबर के सदृश सुन्दर ऐसे आठ पुत्रों को जन्म देगी कि वैसे पुत्रों को इस भरत क्षेत्र में दूसरी कोई माता जन्म नहीं देगी। परन्तु दूसरी माता ने भी अतिमुक्तक से कथित लक्षणों वाले पुत्रों को जन्म दिया है। अतिमुक्तक अनगार के वचन असत्य कैसे हुए?' इस शंका का समाधान भगवान् अरिष्टनेमि से प्राप्त करूँ, ऐसा मन में विचार कर के रथ पर चढ़ कर मेरे समीप आई है क्यों देवकी! यह बात सत्य है?"

उत्तर में देवकी ने कहा - 'हाँ, भगवन्! आपका कथन सत्य है।'

एवं खलु देवाणुप्पिया! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णयरे णागे णामं गाहावई परिवसइ अड्ढे। तस्स णं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था। सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव णिमित्तिएणं वागरिया एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ।

कठिन शब्दार्थ - णिमित्तिएणं - नैमित्तिक (भविष्यवक्ता) ने, **दारिया** - कन्या, **णिंदू**-निन्दू - मृतवन्ध्या - मृत बालकों को जन्म देने वाली।

भावार्थ - भगवान् ने फरमाया - 'हे देवानुप्रिये! उस काल उस समय में भद्दिलपुर नामक नगर था। वहाँ धन-धान्यादि से सम्पन्न नाग नामक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। जब सुलसा गाथापत्नी बाल-अवस्था में थी, तब एक भविष्यवक्ता (नैमित्तक) ने उसके माता-पिता से कहा था कि 'यह कन्या मृतवन्ध्या होगी।'

तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसिदेवभत्ता यावि होत्था। हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ करित्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता उल्लपडसाडिया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करित्ता जाणुपायवडिया पणामं करेइ, करित्ता तओ पच्छा आहारेइ वा णीहारेइ वा।

कठिन शब्दार्थ - बालप्पभिइं - बाल्यकाल से ही, **हरिणेगमेसिदेवभत्ता** - हरिनैगमेषीदेव की भक्त, **पडिमं** - प्रतिमा, **कल्लाकल्लिं** - प्रातःकाल, **ण्हाया** - स्नान कर, **पायच्छित्ता** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुःस्वप्न निवारणार्थ प्रायश्चित्त कर, **उल्लपडसाडिया** - भीगी साड़ी पहिने हुए, **महरिहं** - महान् पुरुषों के योग्य-बहुमूल्य, **पुप्फच्चणं** - पुष्पों से अर्चना, **जाणुपायवडिया** - घुटनों को पृथ्वी पर टिका कर, **पणामं** - प्रणाम, **करेइ** - करती है, **आहारेइ** - आहार करती, **णिहारेइ** - नीहार करती।

भावार्थ - उसके बाद वह सुलसा बालिका अपने बाल्य-काल से ही हरिनैगमेषी देव की भक्तिन बन गई। उसने हरिनैगमेषी देव की प्रतिमा बनाई और प्रतिदिन स्नान आदि कर के भीगी साड़ी पहने हुए ही वह उस प्रतिमा के सामने फूलों का ढेर करने लगी और अपने दोनों घुटनों को पृथ्वी पर टिका कर नमस्कार करने लगी। आहार-नीहार आदि कार्य वह इसके बाद करती थी।

(२३)

तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिबहुमाणसुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था। तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठाए सुलसं गाहावइणीं तुमं च णं दोण्णि वि समउउयाओ करेइ। तएणं तुब्भे दोवि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह। तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयाइइ।

कठिन शब्दार्थ - **भत्तिबहुमाण** - भक्ति बहुमान पूर्वक, **सुस्सूसाए** - शुश्रूषा से, **आराहिए** - आराधित - प्रसन्न, **अणुकंपणट्ठाए** - अनुकम्पा करने हेतु, **दोण्णि** - दोनों, **समउउयाओ** - समकाल में ऋतुमती (रजस्वला), **सममेव** - साथ-साथ ही, **गब्भे गिण्हह** - गर्भ धारण करती, **गब्भे परिवहह** - गर्भ का वहन करती, **दारए** - बालक, **पयायह** - जन्म देती, **विणिहायमावण्णे** - मरे हुए।

भावार्थ - सुलसा द्वारा भक्ति एवं बहुमानपूर्वक की गई शुश्रूषा से हरिनैगमेषी देव प्रसन्न हुआ। हरिनैगमेषी देव ने सुलसा गाथापत्नी की अनुकम्पा के लिए सुलसा को और तुम्हें एक ही समय में ऋतुमती (रजस्वला) किया। फिर तुम दोनों एक साथ गर्भ धारण करती, एक साथ गर्भ का पालन करती तथा एक साथ बालक को जन्म देती थी। सुलसा के बालक मरे हुए होते थे।

तए णं से हरिणेगमेसि देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठाए विणिहायमावण्णए दारए करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता तव अंतियं साहरइ। तं समयं च णं तुमं पि णवण्हं मासाणं सुकुमाल दारए पसवसि। जे वि य णं देवाणुप्पिए! तव पुत्ता ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वि य तव अंतियाओ करयल संपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ। तं तव चेव णं देवई! एए पुत्ता, णो चेव सुलसाए गाहावइणीए।

कठिन शब्दार्थ - करयलसंपुडेणं - हाथों में, **तव अंतियं** - तुम्हारे पास में, **साहरइ**- लाकर रखता, **पसवसि** - प्रसव करती।

भावार्थ - हरिनैगमेषी देव, सुलसा की अनुकम्पा के लिए उन मरे हुए बालकों को अपने दोनों हाथों में उठा कर तुम्हारे पास ले आता था। उसी समय तुम भी नौ मास साढ़े सात रात बीतने पर सुन्दर और सुकुमार पुत्रों को जन्म देती थी। तुम्हारे पुत्रों को दोनों हाथों से उठा कर हरिनैगमेषी देव, सुलसा के पास रख देता था। इसलिए हे देवकी! अतिमुक्तक अनगार के वचन सत्य हैं। ये सभी पुत्र तुम्हारे ही हैं, सुलसा के नहीं। इन सभी को तुमने ही जन्म दिया है, सुलसा ने नहीं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् अरिष्टनेमि ने देवकी देवी के समाधान के लिए नाग की पत्नी सुलसा का निन्दू - मृतवन्धया होना, उसका हरिनैगमेषी देव की आराधना करना, हरिनैगमेषी देव का प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रों को सुलसा के पास पहुँचाना तथा सुलसा के मृतपुत्रों को देवकी देवी के पास पहुँचाना आदि का वर्णन किया गया है।

जिन दिनों देवकी का विवाह हो रहा था, जीवयशा अपनी ननद देवकी का सिर गूंथ रही थी। जीवयशा के देवर, कंस के छोटे भाई अतिमुक्तक अनगार गोचरी के लिए पधारे तो वैवाहिक राग रंग में मस्त जीवयशा ने उनसे कहा - देवरजी! घर पर तो बहिन का विवाह है, आप क्या घर-घर गोचरी फिरते हो? इस प्रकार अभद्र चेष्टा करने लगी, तब अतिमुक्त अनगार ने जीवयशा से कहा - "तू जिस देवकी के विवाह के उत्सव में बेभान हो रही है, इसकी सातवीं संतान तुझे वैधव्य देगी।" जीवयशा ने कंस से कहा तथा उसने वसुदेवजी की प्रथम सात संतानें मांग ली। उनमें से अनीकसेन आदि छह तो चरमशरीरी थे तथा सातवीं संतान श्रीकृष्ण को गुप्त रूप से अन्यत्र भेजा गया, उसी प्रसंग का वर्णन करते हुए भगवान् देवकी से फरमाते हैं-

सुलसा की इकरंगी भक्ति-बहुमान एवं सेवा-शुश्रूषा से हरिनैगमेषी देव प्रसन्न हो गया। वह सुलसा पर अनुकम्पा करके तुम्हें और सुलसा को साथ-साथ ऋतुमती करने लगा। तुम दोनों साथ-साथ ही गर्भ धारण करती, गर्भ का वहन करती तथा साथ ही प्रसव करती थी। जब सुलसा के मृत संतान का जन्म होता तब हरिनैगमेषी देव उसे उठा कर तुम्हारे पास ले आता था

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा तुम्हारे जो सुंदर सुकुमार पुत्र होते उसे उठा कर सुलसा के पास रख आता था। इस प्रकार हरिनैगमेषी देव ने छह बार ऐसा किया।

पुत्र संहरण का कारण - देवकी देवी ने पूर्व जन्म में अपनी जेठानी के छह रत्न चुराये थे, उसके बदले में इसके छह पुत्र चुराये गये।

सुलसा और देवकी पूर्व जन्म में देराणी-जेठाणी थी। एक बार देवकी ने सुलसा के छह रत्न चुरा कर भय के वश किसी चूहे के बिल में डाल दिए। बिल में छुपाने का मतलब यह था कि खोजने पर कदाचित् मिल भी जाय तो मेरी बदनामी नहीं हो और चूहों ने इधर-उधर कर दिया समझ कर संतोष कर लिया जाय। कदाचित् नहीं मिले तो कुछ दिनों बाद में उन्हें अपने बना लूंगी। संयोगवश वे रत्न देराणी को मिल गये और उनकी नजरों में चूहा चोर समझा गया। कहा जाता है कि वह चूहा हरिनैगमेषी देव बना और देराणी सुलसा के रूप में उत्पन्न हुई। पूर्व भव की रत्न चोरी के फलस्वरूप देवकी के पुत्रों का हरण हुआ और चूहे पर चोरी का दोष मंढा जाने से हरिनैगमेषी देव ने पुत्रों का हरण कर सुलसा के पास पहुंचाया। हरिनैगमेषी देव चूहे का जीव कहा गया है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने देवकी से कहा - हरिनैगमेषी देव द्वारा संहरण किये जा कर सुलसा को दिए गए ये छहों मुनि तुम्हारे ही अंगजात हैं, सुलसा गाथापत्नी के नहीं। अतः अतिमुक्तक कुमार की भविष्यवाणी असत्य नहीं, अपितु सत्य है।

शंका - तृतीय बर्ग के प्रथम अध्ययन में तो अनीकसेन आदि को नाग एवं सुलसा की संतान बताया है। यहां स्वयं भगवान् ने देवकी की संतान बताया है, क्या यह परस्पर विरोधी बात नहीं हैं?

समाधान - लोक-प्रसिद्धि अनीकसेनादि के लिए यही थी, अतः लोक सम्मत्त सत्य की शास्त्रकार उपेक्षा नहीं करते। वे छहों भाई वहीं बड़े हुए थे। वहीं विवाह हुआ तथा उन्हीं की आज्ञा से प्रव्रजित हुए, अतः उस अपेक्षा से वे उनकी संतानें भी हैं ही तथा जन्मदात्री माता देवकी थी, अतः यह बात भी सही है। इसमें विरोध नहीं है।

बड़ा होकर बालक गोद दिया जाता है वह दत्तक पुत्र भी लोक व्यवहार एवं कानून विधि के अनुसार गोद लेने वाले का गिना ही जाता है अतः स्वयं सुलसा भी इस हेराफेरी से अनजान थी तथा सभी लोग उन्हें नाग-सुलसा की संतति मानते थे। अतः पहले छहों नाग-सुलसा के पुत्र स्वयं आगमकार ने फरमाये इसलिए इस कथन में और पूर्व कथन में कोई असंगतता नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुत्रों की पहचान, छह अनगारों को वंदन

(२४)

तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया, अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता आगयपण्हुया पप्फुयलोयणा कंचुयपडिक्खित्तिया दरियवलयबाहा धाराहयकलंबपुप्फगं विव समूसियरोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी सुचिरं णिरिक्खइ, णिरिक्खित्ता वंदइ णमंसइ।

कठिन शब्दार्थ - **आगयपण्हुया** - आगतप्रश्नवा - स्तनों में पाना आ गया, **पप्फुयलोयणा**- आंखों में सजल स्नेहभरी चमक, **कंचुयपडिक्खित्तिया** - कंचूकी की कसें टूट गई, **दरियवलयबाहा** - दीर्ण वलयौ भुजौ - भुजाओं के आभूषण तंग हो गये, **धाराहय-कलंब-पुप्फगं विव समूसियरोमकूवा** - वर्षा की धारा पड़ने से विकसित कदम्ब पुष्प के समान शरीर के रोम पुलकित हो गये, **अणिमिसाए** - अनिमेष, **दिट्ठीए** - दृष्टि से, **पेहमाणी**- देखती हुई, **सुचिरं** - चिरकाल तक, **णिरिक्खइ** - निरखती रही।

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि का उत्तर सुन कर देवकी देवी अत्यन्त प्रसन्न हुई और भगवान् को वंदन-नमस्कार कर के वहाँ गई - जहाँ वे छहों अनगार थे। उन अनगारों को देख कर पुत्र-प्रेम के कारण उसके स्तनों से दूध झरने लगा। हर्ष के कारण उसकी आँखों में आंसू भर आए एवं अत्यन्त हर्ष के कारण शरीर फूलने से उसकी कंचुकी की कसें टूट गई और भुजाओं के आभूषण तथा हाथ की चूड़ियाँ तंग हो गई। जिस प्रकार वर्षा की धारा पड़ने से कदम्ब पुष्प एक साथ विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार उसके शरीर के सभी रोम पुलकित हो गए। वह उन छहों अनगारों को अनिमेष दृष्टि से देखती हुई बहुत काल तक निरखती रही और बाद में उन्हें वंदन-नमस्कार किया।

विवेचन - गोचरी पधारते समय भगवान् के संतों के नाते देवकी ने आदर बहुमान किया था किन्तु **बाद में 'अपने पुत्र हैं'** - यह जान कर उन्हें जो प्रसन्नता हुई वह उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है। **"छहों संतों की मैं माता हूं"** - यह आह्लाद उनके शारीरिक परिवर्तन से भी परिलक्षित हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवई णयरी अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि णिसीयइ।

कठिन शब्दार्थ - बाहिरिया - बाहर की, **उवट्ठाणसाला** - उपस्थान शाला (बैठक), **पच्चोरुहइ** - उतरती है, **सए** - अपना, **वासघरे** - वासगृह, **सयणिज्जंसि** - शय्या पर, **णिसीयइ** - बैठती है।

भावार्थ - छहों मुनियों को वंदन-नमस्कार कर के भगवान् अरिष्टनेमि के समीप आई और भगवान् को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिण कर के वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर के अपने धार्मिक रथ पर चढ़ कर द्वारिका नगरी के मध्य में हो कर क्रमशः अपनी बाहरी उपस्थान शाला (बैठक) के निकट पहुँची। फिर धार्मिक रथ से उतर कर और अपने भवन में प्रवेश कर, सुकोमल शय्या पर बैठी।

देवकी की पुत्र-अभिलाषा

(२५)

तए णं तीसे देवईए देवीए अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे - एवं खलु अहं सरिसए जाव णलकूबर-समाणे सत्तपुत्ते पयाया, णो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुभूए। एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ।

कठिन शब्दार्थ - अज्झत्थिए - आध्यात्मिक - आत्माश्रित, **चिंतिए** - चिंतित - स्मरण रूप, **पत्थिए** - प्रार्थित - अभिलाषा रूप, **मणोगए** - मनोगत - मनोविकार रूप, **संकप्पे** - संकल्प, **बालत्तणए समणुभूए** - बाल-क्रीड़ा के आनंद का अनुभव, **छण्हं मासाणं**- छह महीनों में, **पायवंदए** - चरणवंदन के लिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस समय वह देवकी पुत्र सम्बन्धी चिंता से युक्त हो, अभिलषित विचार अपने मन में इस प्रकार करने लगी - "मैंने आकृति, वय और कान्ति में एक समान यावत् नलकूबर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया, किन्तु उन पुत्रों में से किसी भी पुत्र की बाल-क्रीड़ा के आनंद का अनुभव नहीं किया। यह कृष्ण भी मेरे पास चरण-वंदन के लिए छह-छह महीने के बाद आता है।"

विवेचन - शंका - श्रीकृष्ण जैसे विनीत पुत्र अपनी माता को चरण वंदन के लिए छह-छह माह से जाते थे, इसका क्या कारण है?

समाधान - कृष्ण वासुदेव प्रतिदिन ४०० माताओं को चरण वंदन करते थे। इस प्रकार छह महिने में ७२ (बहत्तर) हजार माताओं को वंदन होता था। भगवती सूत्र श० ११ उ० ११ में महाबल के वर्णन से यह मालूम पड़ता है कि - बीच में उनका (वासुदेवजी का) महल था, चारों तरफ रानियों के महल थे। सभी महलों का एक द्वार मुख्य (बीच के) महल की तरफ था। वैसे ही यहाँ पर भी बीच में वसुदेव जी का महल एवं उसके चारों ओर १८० महलों का झूमका होगा। एक-एक महल की ४००-४०० माताओं के एक साथ एक जगह इकट्ठा होने पर वे उनको वंदना करे तो थोड़े समय में चरणवंदन भी हो सकता है तथा इस प्रकार मानने पर उपरोक्त पाठ की संगति भी बैठ जाती है। ऐसा पू० गुरुदेव (श्रमणश्रेष्ठ बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म. सा.) फरमाया करते थे।

श्री कृष्ण वासुदेव के पिता 'वसुदेवजी' ने अपने पहले के नन्दीषेण के भव में 'स्त्री वल्लभ' होने का निदान किया था। उसके फलस्वरूप १०० (सौ) वर्ष तक विद्याधर श्रेणी आदि अनेक स्थानों पर घुमते हुए उन्हें सैकड़ों पत्नियाँ उपलब्ध हुई। ऐसा वर्णन त्रिषष्टिशलाका पुरुष चारित्र एवं वसुदेव हिण्डि आदि ग्रंथों में मिलता है। ७२००० का उल्लेख देखने में नहीं आया है। पू० गुरुदेव से तो सुना गया है। शायद टब्बों आदि में पू० गुरुदेव को ऐसा उल्लेख मिला होगा। 'स्त्रीवल्लभ' निदान के कारण अधिक स्त्रियाँ मिलना तो ग्रंथकार बताते ही हैं।

अंतगडदशा सूत्र के मूल पाठ में ही **'छण्हं छण्हं मासाणं मम अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ'** 'छह-छह महीनों से कृष्ण वासुदेव के आने का' उल्लेख है। वहाँ के वर्णन को देखने में ऐसा आभास नहीं होता है कि 'दुःख की रात्रि बड़ी लगने जैसा यह वर्णन है।' देवकी का दुःख तो पुत्रों के बचपन को नहीं देखने का है। किन्तु कृष्णवासुदेव के छह महीनों से आने का दुःख नहीं बताया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवकी का आर्त्तध्यान

तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जासिं मण्णे णियगकुच्छिंसंभूयाइं थणदुद्धलुद्धयाइं महुरसमुल्लावयाइं मम्मण-पजंपियाइं थणमूलकक्ख-देसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए।

अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एगयरमवि ण पत्ता (एवं) ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ।

कठिन शब्दार्थ - धण्णाओ - धन्य, **णियगकुच्छिंसंभूयाइं** - अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए, **थणदुद्धलुद्धयाइं** - स्तनदुग्धलुब्ध - स्तनपान के लोभी, **महुरसमुल्लावयाइं** - मधुर आलाप करते हुए, **मम्मण-पजंपियाइं** - तुतलाती बोली से मन्मन बोलते हुए, **थणमूलकक्ख-देसभागं**- स्तन मूल से लेकर कक्ष तक के भाग, **अभिसरमाणाइं** - अभिसरण करते हुए, **मुद्धयाइं** - मुग्ध, **कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं** - कमल के समान कोमल हाथों द्वारा, **गिण्हिऊण** - पकड़ कर, **उच्छंगे** - गोद में, **णिवेसयाइं देंति** - बिठाती है, **सुमहुरे समुल्लावए**- मधुर शब्दों में आलाप करते हुए, **पुणो पुणो** - बार बार, **मंजुलप्पभणिए** - मंजुल शब्दों में बोलते हैं, **अधण्णा** - अधन्य, **अपुण्णा** - अपुण्य, **अकयपुण्णा** - अकृतपुण्य, **एगयरमवि**- एक की भी, **ओहयमणसंकप्पा**- खिन्न मन से, **झियायइ** - आर्त्तध्यान करती।

भावार्थ - वास्तव में वे माताएं धन्य हैं - भाग्यशालिनी हैं कि जिनकी कुक्षि से उत्पन्न हुए बच्चे स्तनपान करने के लिए अपनी मनोहर तोतली बोली से आकर्षित करते हैं और मम्मण शब्द करते हुए स्तनमूल से ले कर कक्ष (काँख) तक के भाग में अभिसरण करते रहते हैं, फिर वे मुग्ध (भोले) बालक अपनी माँ के द्वारा कमल के समान कोमल हाथों से उठा कर गोदी में बिठाये जाने पर दूध पीते हुए अपनी माँ से तुतले शब्दों में बातें करते हैं और मीठी-मीठी बोली बोलते हैं।

"मैं अधन्य हूँ, मैं अपुण्य हूँ - मैंने पुण्य नहीं किया, इसीसे मैं अपनी संतान की बाल-क्रीड़ा के आनंद का अनुभव नहीं कर सकी।" इस प्रकार वह देवकी खिन्न हृदय हो कर आर्त्तध्यान करने लगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - मोहकर्म की विचित्र दशा जीव को समाधि एवं शान्ति के नजदीक ही नहीं आने देती। पानी के नीचे आग लगी रहे तो वह ठण्डा एवं स्थिर कैसे रहेगा? देवकी रानी ने जो आर्त्तध्यान किया वह मोहजनित एवं अप्रशस्त है। आगमकारों ने यथास्थिति चित्रण किया है। 'परायी थाली में घी ज्यादा दिखाई देता है।' इस लोकोक्ति के अनुसार देवकी को बच्चों के लालन-पालन नहीं कर पाने का खेद हैं, पर क्या बच्चों का लालन-पालन करने वाली माताएं अपने को सुखी मानती है? नहीं, बच्चों का सकारण-अकारण रोना-रूठना माताओं को तंग कर देता है। बच्चों के मल-मूत्र माताओं को साफ करने पड़ते हैं, तरह-तरह की छोटी-मोटी बीमारियाँ बच्चों को लगी रहती है, बालक रोता है, पर कहाँ क्या दर्द है - यह कह नहीं पाता। ऐसी स्थिति में पुत्रवती माताओं के ये उद्‌गार होते हैं -

"तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव जीवियफले जाओ णं वंझाओ अवियाउरीओ जाणुकोप्पर मायाओ सुरभिगन्ध-गन्धियाओ विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणीओ विहरंति, अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा। णो संचाएमि रहकूडेणं सद्धिं विउलाइं जाव विहरत्तए॥"

अर्थ - वे स्त्रियाँ धन्य हैं, पुण्यवान हैं, उन्हीं का नर-जीवन सफल हैं जो वंध्या हैं, प्रसव करने के स्वभाव से रहित हैं, सर्दी की मौसम में घुटने एवं कोहनी ही उनके स्तनों का स्पर्श करते हैं, पुत्र नहीं। अतः ऐसी जानु कूर्पर की माताएं ही धन्य हैं जो वस्त्रों-गहनों एवं सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग करती हुई मानवीय काम-भोगों का स्वतंत्र सुख भोगती हैं। सोमा ब्राह्मणी कहती है कि मैं अधन्या अपुण्या हूँ जो राष्ट्रकूट-पति के साथ भोग नहीं भोग पाती हूँ।

अस्तु, सुख न तो वंध्यापने में है, न सन्तानवती होने में। सुख का स्थान तो संयम ही है।

माता-पुत्र का वार्तालाप

(२६)

इमं च णं से कण्हे-वासुदेवे ण्हाए जाव विभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ करित्ता देवइं देविं एवं वयासी - 'अण्णया णं अम्मो! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठ जाव भवह, किण्णं अम्मो! अज्ज तुब्भे ओहय जाव झियायह?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - वह इस प्रकार का चिन्तन कर ही रही थी कि कृष्ण-वासुदेव स्नानादि कर के तथा वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो कर, देवकी देवी के चरण-वंदन करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी माता को उदास एवं चिन्तित देखा। उनके चरणों में नमस्कार कर वे इस प्रकार पूछने लगे - "हे माता! जब मैं पहले तुम्हारे चरण-वंदन करने के लिए आता था तब मुझे देख कर तुम्हारा हृदय आनन्दित हो जाता था, परन्तु आज तुम्हारा मुख उदास और चिन्तित दिखाई दे रहा है। हे माता! इसका क्या कारण है?"

विवेचन - पुण्यवान् जीवों को वैसे तो आर्त्तध्यान के प्रसंग कम ही आते हैं, कभी आ भी जाय तो वे लम्बे समय तक नहीं ठहरते, यह उपरोक्त प्रसंग से स्पष्ट होता है। कृष्ण महाराज अपनी माताजी की कितनी भक्ति करते थे, यह भी एक अनुकरणीय आदर्श है।

तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु अहं पुत्ता! सरिसए जाव समाणे सत्त पुत्ते पयाया। णो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुभूए। तुमं पि य णं पुत्ता! छण्हं छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि, तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि।

भावार्थ - तब देवकी देवी ने कहा - 'हे पुत्र! मैंने आकृति वय और कान्ति में एक समान नलकूबर के सदृश सुन्दर सात पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु मैंने एक की भी बाल-क्रीड़ा के आनंद का अनुभव नहीं किया। हे पुत्र! तुम भी मेरे पास चरण-वंदन करने के लिए छह-छह मास में आते हो। इसलिए मैं अनुभव करती हूँ कि वे माताएं धन्य हैं, पुण्यशालिनी हैं, उन्होंने पुण्याचरण किया है, जो अपनी संतान की बाल-क्रीड़ा के आनंद का अनुभव करती हैं। मैं अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ। इसी बात को सोचती हुई मैं उदासीन हो कर आर्त्तध्यान कर रही हूँ।'

श्रीकृष्ण का प्रयास

(२७)

तए णं कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी-मा णं तुब्भे अम्मो! ओहय जाव झियायह। अहण्णं तहा वत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोयरे कणीयसे भाउए भविस्सइ त्ति कट्टु, देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समासासित्ता तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा अभओ, णवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी - इच्छामि णं देवाणुप्पिया! सहोयरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।

कठिन शब्दार्थ - वत्तिस्सामि - प्रयत्न करूंगा, **सहोयरे** - सहोदर, **कणीयसे** - कनिष्ठ (छोटा), **भाउए** - भाई, **इट्ठाहिं** - इष्ट, **कंताहिं** - कान्त, **वग्गूहिं** - वचनों से, **समासासेइ** - धैर्य बंधाता है, **पडिणिक्खमइ** - निकलता है, **पोसहसाला** - पौषधशाला, **जहा अभओ** - अभयकुमार के समान, **अट्ठमभत्तं** - अष्टमभक्त (तेला), **विदिण्णं** - इच्छा है।

भावार्थ - माता की बात सुनकर कृष्ण-वासुदेव ने कहा - "हे माता! अब तुम आर्त्तध्यान मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि जिससे मेरे एक सहोदर छोटा भाई उत्पन्न हो।" ऐसा कह कर अभिलषित प्रिय और मधुर वचनों से माता को विश्वास और धैर्य बंधाया। इसके बाद वहाँ से निकल कर कृष्ण-वासुदेव पौषधशाला में आये और जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टम-भक्त स्वीकार कर के अपने मित्र-देव की आराधना की थी, उसी प्रकार कृष्ण वासुदेव भी अष्टम-भक्त कर के हरिनैगमेषी देव की आराधना करने लगे। आराधना से आकृष्ट हरिनैगमेषी देव वहाँ उपस्थित हुआ और कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहने लगा -

"हे देवानुप्रिय! आपने मेरा स्मरण क्यों किया? मैं उपस्थित हूँ। कहिये आपका क्या मनोरथ है?" तब कृष्ण वासुदेव ने दोनों हाथ जोड़ कर उस देव से ऐसा कहा - "हे देवानुप्रिय! मेरे एक सहोदर लघुभ्राता का जन्म हो, यह मेरी इच्छा है।"

विवेचन - 'जहा अभओ' - जिस प्रकार अभयकुमार ने (जिसका वर्णन ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र प्रथम अध्ययन में उपलब्ध है) अपनी छोटी माता धारिणी के दोहद की पूर्ति के लिए अपने पूर्व भव के सौधर्म कल्पवासी देव को पौषध युक्त तेले के तप से स्मरण किया, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने पौषधशाला में जा कर विधि युक्त अष्टम तप द्वारा हरिनैगमेषी देव का ध्यान किया। तेले की पूर्ति पर उस देव का आसन चलायमान हुआ और अवधिज्ञान के उपयोग से उसने जाना कि श्रीकृष्ण मुझको याद कर रहे हैं तब वह देव उत्तर वैक्रिय करके श्रीकृष्ण के पास आया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवकी को शुभ समाचार

(२८)

तए णं से हरिणेगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-'होहिइ णं देवाणुप्पिया! तव देवलोयचुए सहोयरे कणीयसे भाउए। से णं उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडे जाव पव्वइस्सइ।' कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

कठिन शब्दार्थ - **देवलोयचुए** - देवलोक से च्यव कर, **उम्मुक्कबालभावे** - बालभाव से मुक्त होकर, **जोव्वणगमणुप्पत्ते** - युवावस्था प्राप्त होने पर।

भावार्थ - इसके बाद उस हरिनैगमेषी देव ने कृष्ण-वासुदेव से इस प्रकार कहा -

"हे देवानुप्रिय! देवलोक का एक देव वहाँ की आयुष्य पूर्ण कर के तुम्हारा सहोदर लघुभ्राता हो कर जन्म लेगा और बाल्यावस्था बीत कर युवावस्था प्राप्त होते ही भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित हो कर दीक्षा लेगा।" हरिनैगमेषी देव ने कृष्ण-वासुदेव से दो-तीन बार इसी प्रकार कहा और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर लौट गया।

विवेचन - विचक्षण श्रीकृष्ण ने यह तो माता के कहे वृत्तांत से जान लिया था कि अतिमुक्तक अनगार द्वार आठ संतान की बात कही गई है। उसकी सत्यता स्वयं भगवान् अरिष्टनेमि प्रमाणित कर चुके हैं। अतः माता को धीरज बंधा दिया।

शंका - श्रीकृष्ण ने देवाराधना क्यों की? क्या देव भाई दे सकता है?

समाधान - श्रीकृष्ण महाराज ने हरिनैगमेषी देव की आराधना भाई प्राप्ति के लिए नहीं की थी। देव भाई देने-नहीं देने में समर्थ नहीं होता तथा भाई तो होने की बात पक्की ही थी। हरिनैगमेषी देव की आराधना का कारण तो यह था कि आगे छहों बालकों का संहरण हरिनैगमेषी देव ने ही किया था। कहीं आठवीं अंतिम संतान का भी संहरण नहीं कर ले। अतः उसी से याचना कर ली जाय, इसलिए आराधना की थी।

शंका - क्या पौषध में देव को आह्वान् करना उचित था? यदि यह धार्मिक पौषध नहीं था तो पौषध को पार कर देव का आदर-सत्कार क्यों किया?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - यद्यपि यह धार्मिक दृष्टि से पौषध नहीं होकर पौषध की क्रिया थी तथापि वे पौषध का बाह्य व्यवहार कायम रखने के लिए पौषध में सावद्य प्रयोजन विषयक वार्तालाप नहीं करते थे। क्योंकि दुनियाँ में व्यवहार पालन भी उत्तम पुरुषों को तो करना ही पड़ता है।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता एवं वयासी-'होहिइ णं अम्मो! ममं सहोयरे कणीयसे भाउत्ति कट्टु' देवइं देविं इट्ठाहिं जाव आसासइ, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

भावार्थ - इसके बाद कृष्ण-वासुदेव पौषधशाला से निकल कर देवकी देवी के पास आये और चरण-वंदन किया तथा देवकी देवी से इस प्रकार कहा - "हे माता! मेरे एक सहोदर लघुभ्राता होगा। आप चिन्ता मत करो। आपके मनोरथ पूर्ण होंगे।" इस प्रकार इष्ट, मनोहर और मनानुकूल वचनों से माता को संतुष्ट कर के वे अपने स्थान चले गये।

विवेचन - शंका - देव ने कृष्ण महाराज से होने वाले लघुभ्राता के संयम लेने की सूचना भी दी थी, पर कृष्ण महाराज ने माताजी को अधूरी सूचना ही क्यों दी?

समाधान - माताजी को दीक्षित होने के समाचार साथ ही देने से खेद होने की संभावना थी। माताजी को बालक का बचपना देखना था तथा वह मनोरथ पूरा होने में कोई बाधा नहीं थी। उत्तम पुरुषों का वचन-विवेक बड़ा प्रशंसनीय होता है। वे कहने योग्य बात ही कहते हैं।

गर्भ पालन

(२९)

तए णं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव हट्ठतुट्ठहियया। गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ।

भावार्थ - कालान्तर में देवकी देवी सुख-शय्या पर सोई हुई थी, तब उसने सिंह का स्वप्न देखा। स्वप्न के बाद जागृत हो कर पति से स्वप्न का वृत्तान्त कहा। अपने मनोरथ की पूर्णता को निश्चित समझ कर देवकी का मन हृष्ट तुष्ट हो गया। वह सुखपूर्वक गर्भ का पालन करने लगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गजसुकुमाल का जन्म

(३०)

तए णं देवई देवी णवण्हं मासाणं जासुमणारत्तबंधुजीवय-लक्खारस-सरस-पारिजातक-तरुण दिवायरसमप्पभं, सव्वणयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं गयतालुयसमाणं दारयं पयाया। जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव जम्हा णं अम्हं इमे दारए गयतालुसमाणो तं होउ णं अम्हं एयस्स दारयस्स णामधेज्जे गयसुकुमाले।

तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामं करेइ गयसुकुमाले त्ति सेसं जहा मेहे जाव अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - जासुमणा-रत्तबंधु-जीवयलक्खारस-सरस पारिजातक-तरुण दिवायर समप्पभं - जपाकुसुम, बंधुक-पुष्प, जीवक लाक्षा रस, श्रेष्ठ पारिजात एवं उदीयमान सूर्य के समान प्रभा, **सव्वणयणकंतं** - सर्वनयनकान्त - सर्वजन नयनाभिराम, **सुकुमालं**- सुकुमाल, **गयतालुयसमाणं** - गजतालु के समान, **दारगस्स** - बालक के, **अम्मापियरो** - माता पिता, **गयसुकुमाले** - गजसुकुमाल, **भोगसमत्थे** - भोगसमर्थ।

भावार्थ - नौ महीने साढ़े सात दिन बीतने पर देवकी ने जपाकुसुम, बन्धुक-पुष्प, लाक्षारस, पारिजात तथा उदय होते हुए सूर्य के समान प्रभा वाले और सभी के नयन को सुख देने वाले अत्यन्त कोमल यावत् सुरूप एवं गज (हाथी) के तालु के समान सुकोमल बालक को जन्म दिया। जिस प्रकार मेघकुमार के जन्म के समय उनके माता-पिता ने महोत्सव किया, उसी प्रकार देवकी और वासुदेव ने जन्म-महोत्सव किया। उन्होंने विचार किया कि यह बालक, गज के तालु के समान सुकोमल है, इसलिए इसका नाम 'गजसुकुमाल' हो। ऐसा विचार कर माता-पिता ने उस बालक का नाम 'गजसुकुमाल' रखा। गजसुकुमाल का बाल्यकाल से ले कर यौवन तक वृत्तान्त मेघकुमार के समान जानना चाहिए।

विवेचन - 'जम्मणं जहा मेहकुमारे' - धारिणी के समान देवकी महारानी के दोहद पूर्ति होने पर वह सुखपूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी और नौ मास साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर उसने एक सुंदर पुत्र रत्न को जन्म दिया जिसका जन्म अभिषेक ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में वर्णित मेघकुमार के समान समझना चाहिये अर्थात् -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. सूचना देने वाली दासियों का दासत्व दूर किया और उनको विपुल आजीविका दी।

२. नगर को सुगंधित कराया, कैदियों को बंधन मुक्त किया और तोलमाप की वृद्धि की।

३. दस दिन के लिये कर मुक्त किया और गरीबों तथा अनाथों को राजा ने मुक्त हाथ से दान दिया। दस दिन तक राज्य में आनंद महोत्सव हुआ।

४. बारहवें दिन राजा ने विपुल भोजन बनवा कर मित्र, ज्ञाति, राज्य-सेवक आदि के साथ खाते-खिलाते हुए आनंद-प्रमोद का उत्सव मनाया फिर उनका वस्त्राभूषण आदि से सत्कार सम्मान कर माता-पिता ने कहा कि - हमारा यह बालक गज के तालु के समान कोमल व लाल है इसलिये इसका नाम 'गजसुकुमाल' होना चाहिये, ऐसा कह कर पुत्र का नाम 'गजसुकुमाल' रखा।

इस प्रकार मेघकुमार के जन्मोत्सव का विस्तृत वर्णन यहां भी समझना चाहिये, विशेषता यह है कि वहां अकाल मेघ (बादल) का दोहद होने से 'मेघकुमार' नाम रखा था। यहां गज तालु के समान कोमल बालक होने से माता-पिता ने यथानाम तथा गुण के अनुसार 'गजसुकुमाल' नाम रखा।

सोमिल की पुत्री सोमा

(३१)

तत्थ णं बारवईए णयरीए सोमिले णामं माहणे परिवसइ अड्ढे रिउव्वेय जाव सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था। तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स सोमसिरी णामं माहणी होत्था, सुकुमाला। तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स धूया। सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा णामं दारिया होत्था। सुकुमाल जाव सुरूवा, रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - माहणे - ब्राह्मण, **परिवसइ** - रहता था, **अड्ढे** - आढ्य-धनधान्यादि से समृद्ध, **रिउव्वेय** - ऋग्वेद, **सुपरिणिट्ठिए** - सांगोपांग ज्ञाता, **माहणी** - ब्राह्मणी, **धूया** - पुत्री, **अत्तया** - आत्मजा, **दारिया** - कन्या, **लावण्णेणं** - लावण्य से, **उक्किट्ठा** - उत्कृष्ट, **उक्किट्ठसरीरा** - उत्कृष्ट शरीर वाली।

भावार्थ - उस द्वारिका नगरी में सोमिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह धन-धान्यादि से समृद्ध था और ऋग्वेद, यजुवेद, सामवेद, अथर्ववेद - इन चारों वेदों का सांगोपांग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाता था। उस ब्राह्मण की पत्नी का नाम सोमश्री था। वह अत्यन्त सुकुमार एवं सुरूप थी। उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री एवं सोमश्री ब्राह्मणी की अंगजात 'सोमा' नाम की कन्या थी, जो सुकुमार यावत् रूपवती थी और आकृति तथा लावण्य में उत्कृष्ट थी। वह सोमा बालिका पांचों इन्द्रियों से परिपूर्ण एवं अवयवों की यथावत् स्थिति के कारण उत्कृष्ट शरीर-शोभा वाली थी।

तए णं सा सोमा-दारिया अण्णया कयाइं ण्हाया जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी कीलमाणी चिट्ठइ।

कठिन शब्दार्थ - **ण्हाया** - स्नान कर, **विभूसिया** - विभूषित होकर, **बहूहिं** - बहुत सी, **खुज्जाहिं** - कुब्जा दासियों से, **परिक्खित्ता** - घिरी हुई, **गिहाओ** - घर से, **रायमग्गे** - राजमार्ग पर, **कणगतिंदूसएणं** - सुवर्ण की (सुवर्ण तारों से गठित) गेंद से, **कीलमाणी** - खेलती हुई।

भावार्थ - एक दिन सोमा बालिका स्नानादि कर के तथा वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो कर अनेक कुब्जा दासियों से तथा अन्य दूसरी दासियों से घिरी हुई अपने घर से निकल कर राजमार्ग पर आई और वहाँ सोने की गेंद से खेलने लगी।

भगवान् का द्वारिका पदार्पण

(३२)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमि समोसढे, परिसा णिग्गया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवंदए णिगच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य जाव विम्हिए।

कठिन शब्दार्थ - **हत्थिखंधवरगए** - श्रेष्ठ हाथी के हौदे पर, **सकोरंटमल्लदामेणं**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छत्तेणं - छत्र पर कोरंट पुष्पों की माला, **धरिज्जमाणेणं** - धारण किये हुए, **सेयवरचामराहिं**- श्वेत एवं श्रेष्ठ चामरों से, **उद्धुव्वमाणीहिं** - बिंजाते (वीज्यमान) हुए, **णिगच्छमाणे** - जाते हुए, **जोव्वणेण** - यौवन को, **विम्हिए** - विस्मित - आश्चर्यचकित।

भावार्थ - उस काल उस समय में भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारे। परिषद् धर्म-कथा सुनने के लिए गई।

कृष्ण-वासुदेव ने भी भगवान् का आगमन सुन कर स्नान किया और वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो कर अपने छोटे भाई गजसुकुमाल के साथ हाथी पर बैठे। कोरण्ट फूलों की माला से युक्त छत्र तथा बिंजाते हुए चामरों से सुशोभित कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य होते हुए भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा में जाने के लिए निकले। कृष्ण-वासुदेव ने राजमार्ग में खेलती हुई उस सोमा कन्या को देखा। उसके रूप, लावण्य और कान्ति युक्त यौवन को देख कर कृष्ण-वासुदेव को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

विवेचन - यद्यपि हरिनैगमेषी देव ने कृष्ण-वासुदेव को गजसुकुमाल जी की दीक्षा लेने की सूचना कर दी थी, तथापि धर्मप्रेमी श्रीकृष्ण ने प्रभु की पर्युपासना में जाते समय गजसुकुमाल जी को साथ लिया। "प्रभु की वाणी सुन कर कहीं यह वैराग्य-वासित नहीं हो जाय" यह भावना नहीं थी।

अशुभ नजर निवारण के लिए छत्र पर कोरंट (कनेर) के फूलों की माला रखी जाती थी, ऐसी श्रुति है।

सोमा कन्या की याचना

(३३)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी- गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सोमिलं माहणं जाइत्ता सोमं दारियं गिण्हह, गिण्हित्ता कण्णंतेउरंसि पक्खिवह, तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पक्खिवंति, तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - कोडुंबियपुरिसे - कौटुम्बिक पुरुषों को, **सद्दावेइ** - बुलाते हैं, **जाइत्ता** - याचना कर, **गिण्हह** - ग्रहण करो, **कण्णंतेउरंसि** - कन्याओं के अंतःपुर में, **पक्खिवह** - पहुंचा दो (रख दो), **पच्चप्पिणंति** - आज्ञा प्रत्यर्पित करते हैं (लौटाते हैं) अर्थात् कार्य पूरा हो जाने की सूचना देते हैं।

भावार्थ - सोमा को देख कर कृष्ण-वासुदेव ने अपने सेवकों को बुला कर इस प्रकार आज्ञा दी कि - 'हे देवानुप्रिय! तुम सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ और उससे इस कन्या की याचना करो। तत्पश्चात् इस सोमा कन्या को कन्याओं के अन्तःपुर में पहुँचा दो। यह गजसुकुमाल की भार्या होगी।' इस आज्ञा को पा कर वे राज-सेवक सोमिल ब्राह्मण के पास गये और उससे कन्या की याचना की। राज-पुरुषों की बात सुन कर सोमिल ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या को ले जाने की स्वीकृति दे दी। राज-पुरुषों ने सोमा कन्या को ले जा कर कन्याओं के अन्तःपुर में रख दी और कृष्ण-वासुदेव को इस बात की सूचना दे दी।

विवेचन - शंका - जब श्रीकृष्ण जानते थे कि गजसुकुमाल दीक्षा लेंगे, तो उन्होंने सोमा कन्या की याचना क्यों करवाई?

समाधान - देव ने संयमी बनने की सूचना तो की थी, पर स्पष्टतया यह नहीं बताया था कि वे कुंवारे ही संयम धारण करेंगे या विवाहित होकर? कन्या की याचना तो बड़े भाई होने के लौकिक उत्तरदायित्व के नाते की थी।

भगवान् का धर्मोपदेश

कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ। तए णं अरहा अरिट्ठणेमि कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा। कण्हे पडिगए।

भावार्थ - तत्पश्चात् कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य में होते हुए सहस्राम्र वन उद्यान में पहुँचे, भगवान् अरिष्टनेमि को वंदन-नमस्कार किया और भगवान् की पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने कृष्ण-वासुदेव और गजसुकुमाल कुमार तथा विशाल परिषद् को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुन कर कृष्ण-वासुदेव अपने भवन की ओर चले गये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गजसुकुमाल को वैराग्य

(३४)

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा जं णवरं अम्मापियरं आपुच्छामि, जहा मेहे णवरं महिलिया वज्जं जाव वड्ढियकुले।

कठिन शब्दार्थ - **वड्ढियकुले** - वर्द्धितकुल - कुल की वृद्धि करके।

भावार्थ - भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर कृष्ण-वासुदेव तो चले गए, किन्तु भगवान् की वाणी सुन कर गजसुकुमाल कुमार को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने हाथ जोड़ कर भगवान् से निवेदन किया - "हे भगवन्! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर आपके पास दीक्षा ग्रहण करूँगा।" इस प्रकार मेघकुमार के समान भगवान् को निवेदन कर अपने घर आये और माता-पिता के समक्ष अपना अभिप्राय प्रकट किया। माता-पिता ने दीक्षा की बात सुन कर उनसे कहा - "हे वत्स! तुम हमें बहुत इष्ट एवं प्रिय हो। हम तुम्हारा वियोग सहन करने में समर्थ नहीं है। अभी तुम्हारा विवाह भी नहीं हुआ है। इसलिए पहले तुम विवाह करो। कुल की वृद्धि करने के बाद (तुम्हारे पुत्रादि हो जाने पर तथा हमारा स्वर्गवास हो जाने पर) तुम दीक्षा ग्रहण करना।" इस प्रकार माता-पिता ने गजसुकुमाल कुमार से कहा।

तए णं कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालं कुमारं आलिंगइ, आलिंगित्ता उच्छंगे णिवेसेइ, णिवेसित्ता एवं वयासी - तुमं णं ममं सहोयरे कणीयसे भाया तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया! इयाणिं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वयाहि। अहण्णं तुमे बारवईए णयरीए महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि। तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

कठिन शब्दार्थ - **आलिंगइ** - आलिंगन किया, **उच्छंगे** - गोद में, **णिवेसेइ** - बिठाया, **महया** - महान्, **रायाभिसेएणं** - राज्याभिषेक से, **अभिसिंचिस्सामि** - अभिषिक्त करूंगा, **तुसिणीए संचिट्ठइ** - मौन रहे।

भावार्थ - जब गजसुकुमाल के वैराग्य की बात कृष्ण-वासुदेव ने सुनी, तो वे तुरन्त गजसुकुमाल के पास आये और उन्होंने स्नेहपूर्वक गजसुकुमाल को हृदय से लगाया तथा उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनी गोदी में बिठा कर इस प्रकार बोले - "हे देवानुप्रिय! तुम मेरे सहोदर छोटे भाई हो। तुम अभी दीक्षा मत लो। मैं बड़े ठाट-बाट के साथ तुम्हारा राज्याभिषेक कर के तुम्हें इस द्वारिका का राजा बना दूँगा।" कृष्ण-वासुदेव के ये वचन सुन कर गजसुकुमाल कुमार मौन रहे।

माता-पिता से दीक्षा हेतु आग्रह

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! माणुस्सया कामा असुई असासया वंतासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए।

कठिन शब्दार्थ - **दोच्चंपि तच्चंपि** - दो तीन बार, **माणुस्सया** - मनुष्य संबंधी, **कामा** - काम, **असुई** - अशुचि, **असासया** - अशाश्वत, **विप्पजहियव्वा** - छोड़ने योग्य, **पव्वइत्तए** - प्रव्रज्या ग्रहण कर लूं।

भावार्थ - उसके बाद गजसुकुमाल कुमार ने कृष्ण वासुदेव और अपने माता-पिता से दो-तीन बार इस प्रकार कहा - "हे देवानुप्रियो! काम-भोग का आधारभूत यह स्त्री-पुरुष सम्बन्धी शरीर मल, मूत्र, कफ, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित का भंडार है। यह शरीर अस्थिर है, अनित्य है तथा सड़न-गलन और नष्ट होने रूप धर्म से युक्त होने के कारण आगे-पीछे कभी न कभी अवश्य नष्ट होने वाला है। यह अशुचि का स्थान है, वमन का स्थान है, पित्त, कफ, शुक्र एवं शोणित का भंडार है। यह शरीर दुर्गन्ध युक्त, मल, मूत्र और पीप आदि से परिपूर्ण है। इस शरीर को पहले या पीछे एक दिन अवश्य छोड़ना ही होगा। इसलिए हे माता-पिता! हे बन्धुवर! मैं आपकी आज्ञा ले कर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा लेना चाहता हूँ।"

एक दिन की राज्यश्री और प्रव्रज्या

(३५)

तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे णो संचाएइ बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तए, ताहे अकामाइं चेव एवं वयासी - तं इच्छामो णं ते जाया! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए। णिक्खमणं जहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महब्बलस्स जाव तमाणाए तहा जाव संजमित्तए। से गयसुकुमाले अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

कठिन शब्दार्थ - **णो संचाएइ** - समर्थ नहीं हुए, **बहुयाहिं** - बहुत से, **अणुलोमाहिं**- अनुकूल युक्तियों से, **आघवित्तए** - समझाने में, **अकामाइं** - निराश (लाचार) होकर, **रज्जसिरिं**- राज्यश्री, **पासित्तए** - देखना चाहते हैं, **णिक्खमणं** - निष्क्रमण, **तमाणाए** - आज्ञा में रह कर, **संजमित्तए** - संयमित करने लगे, **जाए** - जन्म, **इरियासमिए** - ईर्यासमिति, **गुत्तबंभयारी**- गुप्त ब्रह्मचारी।

भावार्थ - जब कृष्ण-वासुदेव और राजा वसुदेवजी तथा देवकी रानी, गजसुकुमाल कुमार को अनेक प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल वचनों से भी नहीं समझा सके, तब असमर्थ हो कर इस प्रकार बोले -

"हे पुत्र! हम लोग तुझे एक दिन के लिए भी राजसिंहासन पर बिठा कर तेरी राज्यश्री देखना चाहते हैं। इसलिए तुम कम-से-कम एक दिन के लिए भी राज्य-लक्ष्मी को स्वीकार करो।"

माता-पिता और बड़े भाई के अनुरोध से गजसुकुमाल चुप रहे। इसके बाद बड़े समारोह के साथ उनका राज्याभिषेक किया गया। गजसुकुमाल के राजा हो जाने के बाद माता-पिता ने पूछा - 'हे पुत्र! तुम क्या चाहते हो?' गजसुकुमाल ने उत्तर दिया - 'मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।' तब गजसुकुमाल की आज्ञानुसार दीक्षा की सभी सामग्री मंगाई गई और महाबल के समान दीक्षा अंगीकार कर के गजसुकुमाल अनगार बन गये। वे ईर्यासमिति आदि से युक्त हो कर सभी इन्द्रियों को अपने वश में कर के गुप्त ब्रह्मचारी बन गये।

विवेचन - कृष्ण वासुदेव के द्वारा गजसुकुमाल को ऐसा कहे जाने पर कि - 'मैं तुम्हें तीन खण्ड का राजा बनाऊंगा' गजसुकुमाल मौन रहे क्योंकि उनकी इच्छा द्वारकाधीश बनने की नहीं थी। वे दूसरों पर राज्य नहीं करना चाहते थे। वे तो आत्माधीश बनने की ठान चुके थे। दीक्षा की आज्ञा प्राप्ति के लिए उन्होंने उद्यम नहीं छोड़ा। बार-बार माता-पिता से आग्रह किया। सांसारिक सुखोपभोग एवं शरीर की नश्वरता का कथन किया। जब कृष्ण और उनके माता-पिता संसार से जोड़ने वाली अनुकूल बातों से और संयम से विमुख करने वाली प्रतिकूल बातों से, साधारण रूप से और विशेष रूप से नहीं समझा सके तब विवश होकर कहा कि - "हमारी इच्छा है कि हम तुम्हें एक दिन के लिए भी राजा बना हुआ देखें?"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजगद्दी पर बैठकर भी उन्होंने अपनी इच्छानुसार दीक्षा सामग्री मंगाई। भगवती सूत्र शतक ११ उद्देशक ११ में वर्णित महाबल के समान गजसुकुमाल का दीक्षा समारोह हुआ। आज्ञा में रह कर समिति गुप्ति पूर्वक महाव्रतों से आत्मा को संयमित करने लगे। संवर और निर्जरा से इन्द्रियों एवं मन को वश में रखने वाले हो गए।

गृहस्थ अवस्था मृत्यु को प्राप्त हुई और संयमी अनगार के रूप में उन्होंने नया जन्म पाया। अब वे पांचों समिति और तीनों गुप्ति युक्त हुए। ब्रह्मचर्य आदि पांचों महाव्रतों के सुरक्षा कवच में आ गए।

गजसुकुमाल अनगार द्वारा भिक्षु प्रतिमा ग्रहण

(३६)

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठणेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया।

कठिन शब्दार्थ - **पुव्वावरण्हकालसमयंसि** - दिन के पिछले भाग में, **महाकालंसि सुसाणंसि** - महाकाल नामक श्मशान में, **एगराइयं** - एक रात्रिकी, **महापडिमं** - महाप्रतिमा, **उवसंपज्जित्ता णं** - धारण करके, **विहरित्तए** - विचरना चाहता हूँ।

भावार्थ - उसके बाद वे गजसुकुमाल अनगार, जिस दिन प्रव्रजित हुए, उसी दिन, दिन के चौथे प्रहर में भगवान् अरिष्टनेमि के पास आ कर तीन बार विधियुक्त वंदन-नमस्कार किया और इस प्रकार बोले -'हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो, तो मेरी ऐसी इच्छा है कि महाकाल श्मशान में जा कर एक रात्रि की महाप्रतिमा (भिक्षु प्रतिमा) स्वीकार करूँ अर्थात् सम्पूर्ण रात्रि ध्यानस्थ हो कर खड़ा रहूँ।

भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो।'

विवेचन - प्रश्न - बारहवीं भिक्षु-प्रतिमा के क्या नियम हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - निर्जल तेला कर के साधक ग्रामादि के बाहर, शरीर को कुछ झुका कर के, एक पुद्गल पर दृष्टि जमा कर, अनिमेष दृष्टि से स्थिर शरीरी होकर, सभी इन्द्रियों का गोपन करता हुआ ध्यानस्थ रहता है। दैविक, मानवीय या पाशविक उपसर्गों को समभाव से सहता है। मल-मूत्र की बाधा होने पर पूर्व प्रतिलेखित स्थान पर जा कर निवृत्त होकर पुनः कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित रहता है। यदि इस प्रतिमा का सम्यक् परिवहन नहीं किया जाय तो उन्माद, दीर्घकालिक रोगातंक या जिनधर्म से च्युति हो सकती है। सम्यक् आराधना होने पर अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान या केवलज्ञान तीनों में से कोई न कोई अवश्य होता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कम से कम उनतीस वर्ष की उम्र, बीस वर्ष की दीक्षा तथा नववें पूर्व की तीसरी आचार-वस्तु का ज्ञान आवश्यक है, पर यहाँ अनुज्ञा प्रदान करने वाले स्वयं तीर्थंकर देव हैं, अतः श्रुत व्यवहार यहाँ निर्यामक नहीं है।

प्रश्न - गजसुकुमालजी को बारहवीं भिक्षु प्रतिमाराधन की कैसी सूझी तथा इसकी परिचिति एवं विधि कहाँ से जानी?

उत्तर - संभवतः धर्म-देशना में प्रतिमा वर्णन हुआ हो जिससे उनमें भी प्रतिमाराधन करने का उत्साह जगा हो। अनुज्ञा देने वालों ने विधि भी बताई ही होगी।

प्रश्न - पूर्वधर तो अनुप्रेक्षा में समय बिताते हैं, गजसुकुमालजी ने कायोत्सर्ग में क्या चिन्तन किया?

उत्तर - यद्यपि वे आगमों के अभ्यासी नहीं थे, तथापि भगवान् की धर्मदेशना तो सुनी ही थी, उस सुने हुए एवं भिक्षु प्रतिमा की अनुज्ञा प्रदान करते समय भगवान् ने जो विधि फरमाई उसका चिन्तन करते रहे होंगे।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चारपासवणं भूमिं पडिलेहेइ,पडिलेहित्ता ईसिंपब्भारगएणं काएणं जाव दो वि पाए साहट्टु एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - थंडिलं - स्थंडिल भूमि की, **पडिलेहेइ** - प्रतिलेखना की, **उच्चारपासवणं भूमिं** - उच्चार-प्रस्रवण योग्य भूमि की, **ईसिंपब्भारगएणं काएणं** - शरीर को थोड़ा-सा झुका कर, **दो वि पाए** - दोनों पैरों को, **साहट्टु** - सिकोड़ कर।

भावार्थ - इस प्रकार भगवान् से आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने भगवान् को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर के वे सहस्राम्रवन उद्यान से निकल कर महाकाल श्मशान में पहुँचे। वहाँ जा कर उन्होंने कायोत्सर्ग करने के लिए प्रासुक भूमि तथा उच्चार-प्रस्रवण (गुरुनीत, लघुनीत) परिठवने योग्य भूमि की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् काया को कुछ नमा कर चार अंगुल के अन्तर से दोनों पैरों को सिकोड़ कर एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए, एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार कर ध्यानस्थ खड़े रहे।

सोमिल का क्रोध

(३७)

इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ णयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडयं च गिण्हइ, गिण्हित्ता तओ पडिणिवत्तइ।

कठिन शब्दार्थ- सामिधेयस्स अट्ठाए - समिधा (यज्ञ की लकड़ी) के लिये, **पुव्वणिग्गए**- पूर्व ही निकला, **समिहाओ** - समिधा, **दब्भे** - दर्भ०, **कुसे** - कुश●, **पत्तामोडयं** - पत्रामोटक✡-अग्रभाग में मुड़े हुए पत्तों को, **पडिणिवत्तइ** - लौटता है।

भावार्थ - गजसुकुमाल अनगार के श्मशान-भूमि में जाने से पूर्व ही सोमिल ब्राह्मण हवन के निमित्त समिधा (काष्ठ) दर्भ-कुश आदि लाने के लिए द्वारिका नगरी से बाहर निकला था। वह सोमिल ब्राह्मण समिधा, कुश, डाभ और पत्र ले कर अपने घर आ रहा था।

---

० **दर्भ** - दूब नामक घास।

● **कुश** - तीखे सिर वाली कुश नामक तृण वनस्पति।

✡ **पत्रामोटक** - जमीन पर पड़े हुए पत्ते यज्ञ में काम नहीं आने की संभावना है। पत्ते तोड़ने का साधन ऊपर लगा हुआ और पत्ते ग्रहण करने का साधन नीचे लगा हुआ इस प्रकार का बर्तन पत्तों से भरा हुआ जिसे यहाँ पत्रामोटक कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिणिवत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे वीइवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते एवं वयासी - "एस णं भो! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय जाव परिवज्जिए। जे णं ममं धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणीं विप्पजहित्ता मुंडे जाव पव्वइए।"

कठिन शब्दार्थ - अदूरसामंतेणं - न अति दूर न अधिक निकट, **वीइवयमाणे** - चलते हुए, **संझाकालसमयंसि** - संध्याकाल के समय, **पविरलमणुस्संसि** - कोई विरला ही मनुष्य आवे ऐसे समय, **वेरं** - वैर का, **सरइ** - स्मरण किया, **आसुरुत्ते** - क्रोधित हो कर, **अपत्थिय** - अप्रार्थित, **परिवज्जिए** - परिवर्जित, **अदिट्ठदोसपइयं** - कोई भी दोष नहीं देखा गया-निर्दोष, **कालवत्तिणीं** - युवावस्था को प्राप्त, भोगकाल - योग्य समय पर, **विप्पजहित्ता**- छोड़ कर।

भावार्थ - संध्या समय, जब मनुष्यों का आवागमन नहीं था, घर लौटते हुए सोमिल ने महाकाल श्मशान के पास कायोत्सर्ग कर के ध्यानस्थ खड़े हुए गजसुकुमाल अनगार को देखा। देखते ही उसके हृदय में पूर्वभव का वैर जाग्रत हुआ। वह इस प्रकार कहने लगा - "अरे! यह वही निर्लज्ज, श्री कान्ति आदि से परिवर्जित, अप्रार्थितप्रार्थक (मृत्यु चाहने वाला) गजसुकुमाल कुमार है। यह पुण्यहीन और दुर्लक्षण युक्त है। मेरी भार्या सोमश्री की अंगजात एवं मेरी निर्दोष पुत्री सोमा जो यौवनावस्था को प्राप्त है, उसे निष्कारण ही छोड़ कर साधु बन गया है।"

विवेचन - सोमिल का पूर्व भव का वैर जाग्रत हुआ। पूर्व भव का वैर इस प्रकार कहा जाता है -

गजसुकुमाल का जीव पूर्वभव में एक राजा की रानी के रूप था। उसके कोई पुत्र नहीं था। उसकी सौतेली रानी के पुत्र होने से उसे बहुत द्वेष हो गया और चाहने लगी कि किसी भी तरह से उसका पुत्र मर जाय।

संयोग की बात है कि पुत्र के सिर में फोड़ा (गुमड़ा) हो गया और वह पीड़ा से छटपटाने लगा। विमाता ने कहा - मैं इस रोग का उपचार जानती हूं अभी ठीक कर देती हूं। इस पर रानी ने अपने पुत्र को विमाता को दे दिया। उसने उड़द की मोटी रोटी बना कर गर्म गर्म बच्चे के सिर पर बांध दी। बालक को भयंकर असह्य वेदना हुई। वेदना सहन न हो सकी और वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो गया। कालान्तर में बच्चे का जीव सोमिल और विमाता का जीव गजसुकुमाल के रूप में उत्पन्न हुआ।

'तं वेरं सरइ' - इस पूर्व भव के वैर को याद करके ही सोमिल को तीव्र क्रोध उत्पन्न हुआ और बदला चुकाने के लिये ध्यानस्थ मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बांध कर खैर के धधकते अंगारे रखे।

कहा भी है - **'कडाण कम्माण ण मुक्ख अत्थि'** अर्थात् कृत कर्मों को भोगे बिना मुक्ति नहीं होती। अतः कर्म बांधते समय विचार करना चाहिये। कर्मबंध से बचना चाहिये।

गजसुकुमाल अनगार के सिर पर अंगारे

(३८)

तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स वेरणिज्जायणं करित्तए, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करित्ता सरसं मट्टियं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खयरंगारे कहल्लेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

कठिन शब्दार्थ - **वेरणिज्जायणं करित्तए** - वैर का बदला लेना चाहिये, **दिसापडिलेहणं**- दिशा-प्रतिलेखन - चारों ओर देखा, कोई मुझे देख तो नहीं रहा है, **सरसं** - गीली, **मट्टियं** - मिट्टी, **मत्थए** - मस्तक पर, **पालिं** - पाल, **बंधइ** - बांधता है, **जलंतीओ** - जलती हुई, **चिययाओ** - चिता में से, **फुल्लिय किंसुयसमाणे** - फूले हुए टेसू के समान लाल लाल, **खयरंगारे** - खेर के अंगारों को, **कहल्लेणं** - मिट्टी के ठीकरे में, **पक्खिवइ** - रख दिये, **भीए** - भयभीत होकर, **अवक्कमइ** - पीछे की ओर हटता है।

भावार्थ - सोमिल ब्राह्मण इस प्रकार विचार करने लगा - "मुझे उचित है कि मैं अपने वैर का बदला लूँ।" इस प्रकार विचार कर उसने चारों दिशाओं में अच्छी तरह देखा (कि इधर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई आता-जाता तो नहीं है)। चारों ओर देख कर उसने पास के तालाब से गीली मिट्टी ली और गजसुकुमाल अनगार के पास आया। उसने गजसुकुमाल अनगार के सिर पर मिट्टी की पाल बांधी। फिर वह जलती हुई एक चिता में से फूले हुए टेसू के समान खैर की लकड़ी के लाल अंगारों को एक फूटे हुए मिट्टी के बरतन के टुकड़े (ठीकरे) में भर कर लाया और धधकते हुए अंगारों को गजसुकुमाल अनगार के सिर पर रख दिया। इसके बाद 'मुझे कोई देख न ले' - इस भय से चारों ओर इधर-उधर देखता हुआ वह वहाँ से भागा और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

विवेचन - शंका - क्या सोमिल जिस दिशा से आया, पुनः उसी दिशा में गया?

समाधान - "जामेव दिसं पाउब्भूए" - अर्थात् जिस दिशा से प्रकट हुआ था, आया था यानी मार्ग से चल कर जहां गजसुकुमाल अनगार ध्यानस्थ खड़े थे उस दिशा में आया था तथा अंगारे डाल कर **'तामेव दिसं पडिगए'** - उसी दिशा में वापस चला गया यानी मार्ग तक वापस पहुंच गया। कहने का आशय यह है कि मार्ग से गजसुकुमाल तक आया यह भाव तो **'जामेव दिसं पाउब्भूए'** का है और गजसुकुमाल जी के पास से वापस मार्ग तक पहुँचा यह भाव **'तामेव दिसं पडिगए'** का है। मार्ग पर पहुंच कर सोमिल चाहे जंगल में गया हो या द्वारिका में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

असह्यवेदना और मोक्ष गमन

(३९)

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा। तएणं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव अहियासेइ। तएणं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे तओ पच्छा सिद्धे जावप्पहीणे।

कठिन शब्दार्थ - सरीरयंसि - शरीर में, **वेयणा** - वेदना, **पाउब्भूया** - उत्पन्न हुई, **उज्जला** - उज्ज्वल - जलाने वाली, **दुरहियासा** - दुस्सह, **अप्पदुस्समाणे** - लेश मात्र भी द्वेष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करते हुए, **सुभेणं** - शुभ, **परिणामेणं** - परिणामों से, **पसत्थज्झवसाणेणं** - प्रशस्त अध्यवसायों से, **तयावरणिज्जाणं कम्माणं** - तदावरणीय कर्मों को, **खएणं** - क्षय करके, **कम्मरयविकिरणकरं** - कर्म रज को झाड़ कर साफ कर देने वाले, **अपुव्वकरणं** - अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में, **अणुप्पविट्ठस्स**- प्रवेश करके, **अणंते**- अनंत - अन्त रहित, **अणुत्तरे**- अनुत्तर, **केवलवरणाणदंसणे** - श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन को, **समुप्पण्णे** - उत्पन्न किया।

भावार्थ - सोमिल ब्राह्मण द्वारा सिर पर अंगारे रखे जाने से गजसुकुमाल अनगार के शरीर में महावेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना अत्यन्त दुःखमयी, जाज्वल्यमान और असह्य थी। फिर भी गजसुकुमाल अनगार, सोमिल ब्राह्मण पर लेशमात्र भी द्वेष नहीं करते हुए समभाव पूर्वक सहन करने लगे। शुभ परिणाम तथा शुभ अध्यवसायों से तथा तदावरणीय (आत्मा के उन-उन गुणों को आच्छादित करने वाले) कर्मों के नाश से कर्म-विनाशक अपूर्वकरण में प्रवेश किया, जिससे उनको अनन्त (अन्त-रहित) अनुत्तर (प्रधान) निर्व्याघात (रुकावट रहित) निरावरण, कृत्स्न (सम्पूर्ण) प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् सकल कर्मों के क्षय हो जाने के कारण गजसुकुमाल अनगार कृतकृत्य बन कर 'सिद्ध' पद को प्राप्त हुए, जिससे वे लोकालोक के सभी पदार्थों के ज्ञान से 'बुद्ध' हुए। सभी कर्मों से छूट जाने से 'परिनिर्वृत' (शीतलीभूत) हुए। शारीरिक और मानसिक सभी दुःखों से रहित होने के कारण 'सर्व दुःख-प्रहीण' हुए अर्थात् गजसुकुमाल अनगार मोक्ष को प्राप्त हो गये।

विवेचन - **'उज्जला जाव दुरहियासा'** में **'जाव'** शब्द से निम्न शब्दों का ग्रहण हुआ है - **विउला** - विपुल - बड़ी मात्रा वाली, **पगाढा** - प्रगाढ - गाढे अनुभाग वाली, **कक्कसा**- कर्कश - कठोर, **कडुया** - कटुक - खारी, **फरुसा** - परुष - निर्दयता वाली, **णिट्ठुरा** - निष्ठुर- बिना लिहाज वाली, **चण्डा** - चाण्डाल के समान अनुकम्पा रहित, प्रचण्ड, **तिव्वा** - तीव्र, **दुक्खा** - दुःख देने वाली, **दुग्गा** - दुर्ग-कठिनता से सही जाने वाली, जिसका वेदन कठिनाई से हो, **दुरहियासा** - काया से जिसे सहन करना अत्यंत मुश्किल है - ऐसी वेदना गजसुकुमाल के शरीर में उत्पन्न हुई। उस महान् वेदना को काया से अंगारे गिरा कर प्रतिकार करना तो दूर, सोमिल के सामने कुपित दृष्टि से देखना तो दूर, वचनों से कुछ भी कहना तो दूर, मन से भी ऊंचे नीचे भाव नहीं लाते हुए बहुत ही ऊंचे समभावों के साथ सहन किया।

सोमा कन्या को कन्याओं के अन्तःपुर में रखा गया था। वह कुँवारी थी तथा सुरूपा भी थी। ऐसी रूप राशि की स्वामिनी जिसने कृष्ण महाराज को विस्मित कर दिया था। क्या गजसुकुमालजी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के दीक्षा ले लेने मात्र से सोमा कुँवारी रह जाती? यादव वंश में अनेक बल-रूप संपन्न राजकुमार थे। फिर कुँवारी के तो 'सौ घर और सौ वर' की लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है। अनीकसेनादि ने बत्तीस-बत्तीस पत्नियों को छोड़ कर दीक्षा ली थी, गौतमकुमार आदि ने आठ-आठ रानियाँ छोड़ी थी। उनके श्वसुर तो नाराज नहीं हुए थे जब कि वे परिणिता पत्नियाँ थीं। इत्यादि ऊहापोह करने पर ध्यान में आयेगा कि सोमिल का यह चिन्तन असामयिक एवं अव्यावहारिक था।

कुछ भी हो, ग्रंथकारों का कहना है कि निन्नाणु लाख भवों के पूर्व गजसुकुमाल के जीव ने सोत के लड़के सोमिल के जीव को ईर्ष्यावश गर्म-गर्म उड़द के आटे की मोटी रोटी सिर पर बांध कर मार दिया था, उस वैर का बदला सोमिल ने इस भव में लिया।

बदला लेना या नहीं लेना - यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि इस बीच सोमिल की मुक्ति हो गई होती अथवा वह मानवेत्तर गति में होता अथवा मनुष्य होकर भी द्वारिका में नहीं होता तो वह बदला लेने कहां से आता? महत्त्वपूर्ण है बदला चुकाना। उदय होने पर कर्म फल देते हैं। गजसुकुमालजी की भांति क्षमा-तितिक्षा पूर्वक समभाव से विपाक वेदन कर लिया जाय तो नए कर्मों की श्रृंखला नहीं बनती।

सोमिल ने उनके सिर पर अंगारे डाले थे तब भी उन्होंने उस पर मन से भी द्वेष नहीं किया। आत्मज्ञानी साधक जानता है कि कोई किसी को सुखी या दुःखी बनाने का निमित्त मात्र होता है, वास्तव में उपादान तो अपनी आत्मा ही है।

शंका - गीली मिट्टी की पाल बांधने की क्या आवश्यकता थी?

समाधान - महापुरुषों का मस्तक गोल एवं ऊँचा होता है। उस पर मुण्डन हुआ था, अतः बाल भी नहीं थे। ऐसी अवस्था में बिना पाल बांधे वे अंगारे सिर पर टिक नहीं सकते थे।

शंका - गजसुकुमालजी को यह वेदना कितने समय तक रही?

समाधान - अंगारे डालने के बाद देह दग्ध होने लग गया था। प्रहर भर के भीतर भीतर ही मुक्ति हो जाने की संभावना है। खैर के अंगारे काफी समय तक जलते हैं तथा ताप भी विशेष देते हैं।

नरक में यहाँ से अनंतगुणी उष्णता है, अतः कर्म-निर्जरा के लिए मात्र ताप ही पर्याप्त नहीं, उनके परिणामों-अध्यवसायों की निर्मलता एवं आत्मा के भेद-विज्ञान का चिंतन भी कर्म-क्षय में प्रबल सहायक सिद्ध होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका - भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी ने गजसुकुमालजी को आज्ञा ही क्यों दी? वे तो केवलज्ञानी थे।

समाधान - केवलज्ञानी होने के कारण भगवान् जानते थे कि गजसुकुमाल की मुक्ति इसी रूप में होने वाली है। गोशालक-उपसर्ग में भगवान् महावीर स्वामी ने स्पष्ट आदेश फरमाया था कि कोई भी गोशालक से प्रश्नोत्तर नहीं करे, पर सर्वानुभूति एवं सुनक्षत्र मुनिराज से नहीं रहा गया। उन्होंने गोशालक को समझाया फलतः वे तेजोलेश्या के निसर्ग से भस्मीभूत हो गए। भवितव्यता ज्ञानियों के दृष्टिपथ में होती है, उसे अन्यथा करना तो स्वयं अपने ज्ञान में ही विसंवादन होने जैसा होने से असंभव है।

गजसुकुमालजी की आयुष्य पर्याय भी पूरी होने को थी। अतः पूर्ण ज्ञानी प्रभु की प्रवृत्ति में मंगल ही रहा हुआ समझना चाहिए।

पांच दिव्य प्रकट

तत्थ णं अहासंणिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहिए त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाडिए चेलुक्खेवे कए दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - **अहासंणिहिएहिं** - समीपवर्ती, **देवेहिं** - देवों ने, **आराहिए** - आराधना की है, **दिव्वे** - दिव्य, **सुरभिगंधोदए** - सुगंधित अचित्त जल की, **वुट्ठे** - वर्षा की, **दसद्धवण्णे** - दस के आधे रंग के यानी पांच रंगों के, **कुसुमे** - फूलों का, **णिवाडिए** - बिखराव किया, **चेलुक्खेवे कए** - सुंदर सुंदर ध्वजा पताकाएं फहराई, **गीयगंधव्वणिणाए कए**- गीत गंधर्वों से आकाश गुंजा दिया, (साजों के साथ गाया गया गीत गंधर्व है बिना साज के गाया गया गीत है)

भावार्थ - उस समय वहाँ समीपवर्ती देवों ने - 'इन गजसुकुमाल अनगार ने चारित्र का सम्यक् आराधन किया है' - ऐसा विचार कर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगन्धित अचित्त जल और पांच वर्णों के अचित्त फूलों एवं वस्त्रों की वर्षा की और दिव्य मधुर गायन एवं वाद्यों की ध्वनि से आकाश को व्याप्त कर दिया।

विवेचन - शंका - कृष्ण महाराज को इन दिव्य संकेतों से कोई ज्ञान नहीं हुआ कि मेरे भाई का मोक्ष हो गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - भगवान् के शासन में मुक्ति होती ही रहती थी, गजसुकुमाल अनगार के लिए ऐसा सोचना अप्रत्याशित ही था।

प्रश्न - निर्वाणोपरांत देवों ने ये उपक्रम किए तो जब सिर पर अंगारे धधक रहे थे तब देवों ने सहायता क्यों नहीं की?

उत्तर - उस समय देवों का उपयोग नहीं लगा था।

प्रश्न - क्या श्री कृष्ण महाराज को इन दैविक कार्यक्रमों से गजसुकुमालजी के निर्वाण का पता नहीं लगा?

उत्तर - उस समय देवों द्वारा किये गये जल-पुष्प वृष्टि आदि सामान्य समझे जाते थे क्योंकि भगवान् के कई अंतेवासी केवलज्ञान, निर्वाण आदि प्राप्त करते रहते थे। फिर यह भी कोई नियम नहीं कि हर महापुरुष को केवलज्ञान होने पर या निर्वाण होने पर देवों द्वारा महोत्सव हो ही, यह तो देवों का उपयोग लग गया, अतः उन्होंने ये कार्य कर लिए अन्यथा उपयोग नहीं लगता तो ये कार्यक्रम नहीं भी होते। राज-कार्य में व्यस्त कृष्ण महाराज ने कदाचित् ये देवकृत शब्दादि सुने भी होंगे तब भी यह तो वे कैसे सोच सकते थे कि गजसुकुमालजी का निर्वाण हो गया है, क्योंकि इतनी जल्दी गजसुकुमालजी को केवलज्ञान या मुक्ति होने की तो संभावना ही नहीं रखी जाती थी।

कृष्ण वासुदेव का भगवान् की सेवा में जाना

(४०)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते ण्हाए जाव विभूसिए हत्थिक्खंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं महया-भड-चडगर-पहकर-वंदपरिक्खित्ते बारवइं णयरीं मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

कठिन शब्दार्थ - कल्लं पाउप्पभायाए - दूसरे दिन प्रभात होने पर, **महया** - महान्, **भड-चडगर-पहकर-वंदपरिक्खित्ते** - बहुसंख्यक सुभट आदि के वृंद से घिरे हुए, **पहारेत्थ गमणाए** - जाने के लिए रवाना होना।

भावार्थ - गजसुकुमाल की दीक्षा के दूसरे दिन सूर्योदय हो जाने पर स्नानादि कर के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् सभी अलंकारों से अलंकृत हो, हाथी पर बैठ कर, कोरण्ट के फूलों की माला से युक्त छत्र सिर पर धराते हुए तथा दाएँ-बाएँ दोनों ओर श्वेत चामर डुलाते हुए, अनेक सुभटों के समूह से युक्त कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के राजमार्ग से होते हुए भगवान् अरिष्टनेमि के समीप जाने के लिए चले।

वृद्ध पर अनुकम्पा एवं सहयोग

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं पासइ जुण्णं जराजज्जरियदेहं जाव किलंतं महईमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहियारत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासइ।

कठिन शब्दार्थ - **जुण्णं** - वृद्ध, **जराजज्जरियदेहं** - जरा से जर्जरित देह, **किलंतं** - क्लान्त - कुम्हलाया हुआ एवं थका हुआ, **महई महालयाओ** - महातिमहतः - बहुत बड़ा, **इट्टगरासीओ** - ईंटों का ढेर, **एगमेगं** - एक-एक, **इट्टगं** - ईंट को, **बहियारत्थापहाओ** - बाहर गली में रखे हुए, **अंतोगिहं** - गृह के अंदर।

भावार्थ - द्वारिका नगरी के मध्य जाते हुए कृष्ण-वासुदेव ने एक पुरुष को देखा। वह बहुत वृद्ध था। वृद्धावस्था के कारण उसकी देह जर्जरित हो गई थी। वह बहुत दुःखी था। उसके घर के बाहर, राजमार्ग पर ईंटों का एक विशाल ढेर था। वह वृद्ध उस विशाल ढेर में से एक-एक ईंट उठा कर बाहर से अपने घर में ला कर रख रहा था।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिक्खंधवरगए चेव एगं इट्टगं गिण्हइ, गिण्हित्ता बहियारत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसेइ। तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहियारत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

कठिन शब्दार्थ - **अणुकंपणट्ठाए** - अनुकम्पा के कारण, **हत्थिक्खंधवरगए चेव** - हाथी के हौदे पर बिराजे हुए ही, **अणुप्पवेसेइ** - प्रवेश करा दिया, **अणेगेहिं पुरिससएहिं** - अनेक सैंकड़ों पुरुषों के द्वारा, **महालए** - महान्।

भावार्थ - उस दुःखी वृद्ध को इस प्रकार कार्य करते हुए देख कर कृष्ण-वासुदेव के मन में अनुकम्पा उत्पन्न हुई। उन्होंने हाथी पर बैठे-बैठे ही अपने हाथ से एक ईंट उठा कर उसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घर में रख दी। कृष्ण-वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाये जाने पर, अन्य सभी लोगों ने ईंटें उठा कर सारा ढेर उसके घर में पहुँचा दिया। इस प्रकार श्री कृष्ण के एक ईंट उठाने मात्र से उस वृद्ध पुरुष का बार-बार चक्कर काटने का कष्ट दूर हो गया।

विवेचन - बड़े आदमी जो करवाना चाहते हैं वह कई बार वाणी की अपेक्षा वर्तन द्वारा करवा लेते हैं - यह इस बात का सुंदर उदाहरण है। इसीलिए विनीत के लक्षणों में इंगित और आकार की संपन्नता बताई गई है। यह संपन्नता श्रीकृष्ण के साथ चलने वाले पुरुषों में थी।

गजसुकुमाल अनगार के बारे में पृच्छा

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - कहि णं भंते! से मम सहोयरे भाया गयसुकुमाले अणगारे? जण्णं अहं वंदामि णमंसामि। तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - "साहिए णं कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे।"

कठिन शब्दार्थ - अपासमाणे - नहीं दिखाई देने पर, **साहिए** - साध लिया है, **अप्पणो** - अपना, **अट्ठे** - अर्थ - प्रयोजन।

भावार्थ - इसके बाद कृष्ण-वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य चलते हुए जहाँ भगवान् अरिष्टनेमि विराजते थे, वहाँ पहुँचे और भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया। तत्पश्चात् अपने सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल अनगार को वंदन नमस्कार करने के लिए इधर-उधर देखने लगे। जब उन्होंने गजसुकुमाल अनगार को नहीं देखा, तब भगवान् से पूछा - "हे भगवन्! मेरा सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल अनगार कहां हैं? मैं उनको वंदन-नमस्कार करना चाहता हूँ।" भगवान् ने फरमाया - "हे कृष्ण! गजसुकुमाल अनगार ने जिस आत्म-अर्थ के लिए संयम स्वीकार किया था, उससे वह आत्मार्थ सिद्ध कर लिया है।"

सोमिल द्वारा मोक्ष प्राप्ति में सहायता

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी - कहण्णं भंते! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यह सुनकर कृष्ण-वासुदेव ने आश्चर्ययुक्त हो कर पूछा - "हे भगवन्! गजसुकुमाल अनगार ने किस प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया?"

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - "एवं खलु कण्हा! गयसुकुमाले णं अणगारेणं मम कल्लं पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - इच्छामि णं जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते जाव सिद्धे। तं एवं खलु कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे।"

भावार्थ - कृष्ण-वासुदेव के इस प्रकार पूछने पर भगवान् ने कहा - "हे कृष्ण! कल दीक्षा लेने के बाद, चौथे प्रहर में गजसुकुमाल अनगार ने वन्दन-नमस्कार कर के मेरे सामने इस प्रकार इच्छा प्रकट की - 'हे भगवन्! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर महाकाल श्मशान में एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करना चाहता हूँ।' हे कृष्ण! मैंने कहा - "जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।' इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर गजसुकुमाल अनगार महाकाल श्मशान में गये और वहाँ ध्यान धर कर खड़े रहे।"

"हे कृष्ण! उस समय वहाँ एक पुरुष आया और उसने गजसुकुमाल अनगार को ध्यानस्थ खड़ा देखा। देखते ही उसे वैर-भाव जाग्रत हुआ और वह क्रोध से आतुर हो कर तालाब से गीली मिट्टी लाया और गजसुकुमाल अनगार के सिर पर चारों ओर उस मिट्टी की पाल बांधी। फिर चिता में जलते हुए खेर के अत्यन्त लाल अंगारों को एक फूटे हुए मिट्टी के बरतन में ले कर गजसुकुमाल अनगार के सिर पर डाल दिये, जिससे गजसुकुमाल अनगार को असह्य वेदना हुई, परन्तु फिर भी उनके हृदय में उस घातक पुरुष के प्रति थोड़ा भी द्वेष-भाव नहीं आया। वे समभाव पूर्वक उस भयंकर वेदना को सहन करते रहे और शुभ परिणाम एवं शुभ अध्यवसाय से केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो गए। इसलिए हे कृष्ण! गजसुकुमाल अनगार ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया।"

विवेचन - जैन दर्शन वस्तुतः विचित्र धर्म दर्शन है। यहाँ हर उल्टी बात को सुलटा लिया जाता है, उलझी हुई गुत्थियों को सुगमता से सुलझा लिया जाता है। वीरवर सेनानी गजसुकुमाल जहाँ मन से भी द्वेष नहीं करते, वहीं सेनापति भगवान् अरिष्टनेमि नृशंस क्रूर हत्यारे को 'सहायता दाता' निरूपित करते हैं, वह भी तत्काल घटित का उद्धरण देकर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - तब सोमिल दुर्गति में क्यों जायेगा, जब कि उसने सहायता दी है?

उत्तर - प्रत्येक को अपनी भावना के अनुसार फल मिलता है। यदि सोमिल शुभ-भावना से उत्तम आहार बहराता तथा उसका अशुभ परिणमन हो कर गजसुकुमालजी का प्राणान्त भी हो जाता, तब भी उसको शुभ भावों के कारण उत्तम फल मिलता। नहीं तो आहार बहराने वाला यदि अशुभ परिणामों से खराब आहार देवे और मुनि को उसका शुभ परिणमन हो तब भी दाता को अशुभ फल ही मिलेगा। सोमिल की भावना अपना प्रतिशोध लेने की थी। गजसुकुमालजी ने समता भाव रख लिया तथा मुक्त हो गए। इनके स्थान पर कोई कच्चे मन का साधक होता तथा अंगारों से डर कर भाग खड़ा होता, तो उन्माद दीर्घकालिक रोगातंक या केवली प्ररूपित धर्म से विच्युति होते क्या समय लगता? अतः सोमिल ने अपने क्रूर अध्यवसायों के कारण ही अशुभ फल पाया।

भ्रात मुनि घातक कौन?

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी - "केस णं भंते! से पुरिसे अप्पत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए, जे णं ममं सहोयरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए?" तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - "मा णं कण्हा! तुमं तस्स पुरिसस्स पओसमावज्जाहिं। एवं खलु कण्हा! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे।"

कठिन शब्दार्थ - पओसमावज्जाहिं - क्रोध (द्वेष) मत करो।

भावार्थ - यह सुन कर कृष्ण वासुदेव ने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा - 'हे भगवन्! मृत्यु को चाहने वाला लज्जा आदि से रहित वह पुरुष कौन है, जिसने मेरे सहोदर लघुभ्राता गजसुकुमाल अनगार का अकाल में ही प्राण-हरण कर लिया?' भगवान् ने कहा - 'हे कृष्ण! तुम उस पुरुष पर क्रोध मत करो, क्योंकि उस पुरुष ने गजसुकुमाल अनगार को मोक्ष प्राप्त करने में सहायता दी है।'

"कहण्णं भंते! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स णं साहिज्जे दिण्णे? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - "से णूणं कण्हा! तुमं ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए णयरीए एगं पुरिसं पाससि जाव अणुप्पवेसिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहा णं कण्हा! तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे। एवामेव कण्हा! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सयसहस्स-संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरट्ठं साहिज्जे दिण्णे।''

कठिन शब्दार्थ - अणेगभवसयसहस्ससंचियं - अनेकानेक लाखों भवों के संचित, **उदीरेमाणेणं** - उदीरणा करने में, **बहुकम्मणिज्जरट्ठं** - बहुत कर्मों की निर्जरा के लिये।

भावार्थ - यह सुन कर कृष्ण-वासुदेव ने भगवान् से पूछा - 'हे भगवन्! उस पुरुष ने गजसुकुमाल अनगार को कैसे सहायता दी?' भगवान् ने कहा - 'हे कृष्ण! मेरे चरण-वन्दन करने के लिए आते हुए तुमने द्वारिका नगरी के राजमार्ग पर एक बहुत बड़े ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट उठा कर घर में रखते हुए, एक दीन-दुर्बल वृद्ध पुरुष को देखा। उस पर अनुकम्पा कर के तुमने उस ढेर में से एक ईंट उठा कर उसके घर में रख दी, जिससे तुम्हारे साथ वाले सभी पुरुषों ने क्रम से उन सभी ईंटों को उठा कर उसके घर में रख दिया, जिससे उस वृद्ध पुरुष का दुःख दूर हो गया।'

'हे कृष्ण! जिस प्रकार तुमने उस वृद्ध पुरुष की सहायता की, उसी प्रकार उस पुरुष ने भी गजसुकुमाल के लाखों भवों में संचित किये हुए कर्मों की एकांत उदीरणा कर के उनका सम्पूर्ण क्षय करने में बड़ी सहायता दी है।'

पहचान का उपाय

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी - से णं भंते! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - जे णं कण्हा! तुमं बारवईए णयरीए अणुप्पविसमाणं पासित्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ। तए णं तुमं जाणिज्जासि एस णं से पुरिसे।

कठिन शब्दार्थ - कहं - कैसे, **जाणियव्वे** - जान सकूंगा, **अणुप्पविसमाणं** - प्रवेश करते हुए, **ठियए** - खड़े-खड़े, **ठिइभेएणं** - स्थिति भेद - आयु क्षय से, **कालं** - काल (मृत्यु), **करिस्सइ** - करेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यह सुन कर कृष्ण-वासुदेव ने भगवान् से फिर पूछा - "हे भगवन्! मैं उस पुरुष को किस प्रकार जान सकूँगा?" भगवान् ने कहा - 'हे कृष्ण! द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हुए तुम्हें देखते ही जो पुरुष आयु की स्थिति के क्षय से वहीं पर खड़ा-खड़ा ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय, उसी पुरुष को तुम जान लेना कि यह वही पुरुष है।'

कृष्ण और सोमिल की भेंट

(४१)

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - तदनन्तर कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके जहां अभिषेक योग्य हस्ति रत्न था, वहां पहुंच कर उस हाथी पर आरूढ हुए और द्वारिका नगरी में अपना राजप्रासाद था उस ओर चल पड़े।

तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स कल्लं जाव जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे। एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं पायवंदए णिग्गए, तं णायमेयं अरहया विण्णायमेयं अरहया सुयमेयं अरहया सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स तं ण णज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणवि कुमारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइं णयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खिं सपडिदिसिं हव्वमागए।

कठिन शब्दार्थ - णायमेयं - जानी हुई, **विण्णायमेयं** - विज्ञात - विशेष रूप से जानी **हुई, सुयमेयं** - सुनी हुई, **सिट्ठमेयं** - स्पष्ट रूप से समझी हुई, **केणवि कुमारेणं** - किस **कुमौत से, मारिस्सइ** - मारेंगे, **पुरओ** - सामने से ही, **सपक्खिं** - सपक्ष - समान **पार्श्वतया, सपडिदिसिं** - सप्रतिदिक्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सूर्योदय होते ही सोमिल ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा कि - 'कृष्ण-वासुदेव भगवान् के चरण-वन्दन के लिए गये हैं। भगवान् तो सर्वज्ञ हैं। उनसे कोई बात छिपी नहीं है। भगवान् ने गजसुकुमाल की मृत्यु सम्बन्धी सारी बात जान ली होगी, पूर्ण रूप से जान ली होगी और कृष्ण-वासुदेव से कह दी होगी। इसे जान कर कृष्ण-वासुदेव न जाने मुझे किस कुमौत से मारेंगे? ऐसे विचार से भयभीत हो कर सोमिल ने भाग जाने का विचार किया। फिर उसने सोचा कि कृष्ण-वासुदेव तो राजमार्ग से ही आवेंगे। इसलिए मुझे उचित है कि मैं गली के रास्ते चल कर द्वारिका नगरी से निकल भागूँ।' ऐसा विचार कर वह अपने घर से निकला और गली के रास्ते भागते हुए जाने लगा।

इधर कृष्ण-वासुदेव भी अपने सहोदर लघुभ्राता गजसुकुमाल अनगार की अकाल-मृत्यु के शोक से व्याकुल होने के कारण राजमार्ग छोड़ कर गली के रास्ते से ही आ रहे थे, जिससे संयोगवश वह सोमिल ब्राह्मण, कृष्ण-वासुदेव के सामने ही आ निकला।

सोमिल की मौत

तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासित्ता भीए ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करेइ, करित्ता धरणितलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति सण्णिवडिए।

कठिन शब्दार्थ - **धरणितलंसि** - पृथ्वी तल पर, **सव्वंगेहिं** - सर्वांग, **धसत्ति** - धस शब्द करते हुए, **सण्णिवडिए** - गिर पड़ा।

भावार्थ - उस समय वह सोमिल ब्राह्मण, कृष्ण-वासुदेव को सामने आते हुए देख कर बहुत भयभीत हुआ और जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। आयु-क्षय हो जाने से वह खड़ा-खड़ा ही मृत्यु को प्राप्त हो गया, जिससे उसका मृत शरीर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

सोमिल शव की दुर्दशा

(४२)

तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी - "एस णं भो देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेण ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए'' त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावित्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए सयं गिहं अणुप्पविट्ठे।

कठिन शब्दार्थ - पाणेहिं - चाण्डालों द्वारा, **कड्ढावेइ** - घसीटवाया, **पाणिएणं** - पानी से, **अब्भोक्खावेइ** - धुलवाया।

भावार्थ - जब कृष्ण-वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण को मृत्यु प्राप्त होते देखा, तब वे इस प्रकार बोले - 'हे देवानुप्रियो! यह वही अप्रार्थितप्रार्थक (जिसे कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु को चाहने वाला) निर्लज्ज सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर लघुभ्राता गजसुकुमाल अनगार को अकाल में ही काल का ग्रास बना डाला।' - ऐसा कह कर उस मृत सोमिल के पैरों को रस्सी से बंधवा कर तथा चाण्डालों द्वारा घसीटवा कर नगर के बाहर फिकवा दिया और उस शव द्वारा स्पर्शित भूमि को पानी डलवा कर धुलवाया। फिर वहाँ से चल कर कृष्ण वासुदेव अपने भवन में पहुँचे।

विवेचन - विवेक ज्योति लुप्त होने पर अपराधों का बीज वपन होता है। सोमिल को यदि अंगारे डालने से पूर्व भय एवं उद्वेग हो जाता तथा तीर्थंकरों की सर्वज्ञता ध्यान में आ जाती, तो कितना अच्छा रहता? दिशा-प्रतिलेखन करते समय उसे प्रभु के अनंत चक्षुओं का ध्यान नहीं आया। तेजपुंज कृष्ण के कोप का ध्यान नहीं आया। क्या इस प्रसंग से बहुत सिखे जाने की गुंजाईश नहीं है?

भगवान् तो अनंत क्षमा के पुंज थे, पर कृष्ण महाराज शासक थे। 'भविष्य में यदि कोई संत-सती की कदर्थना करेगा तो उसको कठोरतम दण्ड मिलेगा।' इस बात की शिक्षा देने के लिए तथा अपनी कोप शान्ति के लिए सोमिल के शव की दुर्गति करवाई। जिन-शासन एवं जन-शासन के सिद्धांतों का अंतर समझने के लिए, केवली और छद्मस्थ की भेद-रेखा का अध्ययन करने के लिए, क्षमा एवं क्रोध, प्रतिशोध एवं आत्मशान्ति के परस्पर विरोधी पहलुओं पर विचारणा के लिए प्रकृत अध्ययन अत्यन्त सहायक है। आक्रोश, कुण्ठा, तनाव, बदमिजाजी आदि मानसिक रोगों का परिहार आत्मिक शान्ति एवं समाधि का उत्तरोत्तर विकास कर के यहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक किया जा सकता है कि सिर पर जाज्वल्यमान अंगारे रहते हुए भी मन में परम शान्ति की सरिता बहती रहे। इसके लिए यह स्पष्ट उदाहरण है। हम सब गजसुकुमाल बन कर परम समाधि के पथ पर ऊर्ध्वारोहण करें, यही अभिप्रेत है।

उपसंहार

(४३)

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ अट्ठं अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ - हे जम्बू! सिद्धि-गति को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के उपरोक्त भाव फरमाये हैं।

विवेचन - उपसंहार करते हुए आचार्य देव सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जो नमोत्थुणं में फरमाये गये सभी गुण गणों से सुशोभित यावत् मोक्ष स्थान को प्राप्त हैं। अंतकृतदशा सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के उपरोक्त भाव फरमाये हैं।

जम्बूस्वामी ने विनयपूर्वक गुरु महाराज के श्रीवचनों को 'तहत्ति' कह कर स्वीकार किया।

॥ तीसरे वर्ग का आठवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवमं अज्झयणं - नवम अध्ययन

सुमुखकुमार

(४४)

णवमस्स उक्खेवओ-एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमए जाव विहरइ। तत्थ णं बारवईए णयरीए बलदेवे णामं राया होत्था, वण्णओ। तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था, वण्णओ। तएणं सा धारिणी सीहं सुमिणे जहा गोयमे, णवरं सुमुहे णामं कुमारे, पण्णासं कण्णाओ, पण्णासं दाओ, चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ वीसं वासाइं परियाओ, सेसं तं चेव जाव सेत्तुंजे सिद्धे। णिक्खेवओ।

कठिन शब्दार्थ - उक्खेवओ - उत्क्षेपक - प्रारंभ, **सीहं** - सिंह का, **सुमिणे** - स्वप्न, **पण्णासं** - पचास, **कण्णाओ** - कन्याएं, **दाओ** - दात - दहेज, **चोद्दसपुव्वाइं** - चौदह पूर्वों का, **सेत्तुंजे** - शत्रुंजय पर्वत पर, **णिक्खेवओ** - निक्षेपक - उपसंहार।

भावार्थ - जम्बू स्वामी, सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के जो भाव कहे, वे मैंने आपसे सुने हैं। हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नौवें अध्ययन के क्या भाव कहे हैं?'

जम्बू स्वामी के उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। उस नगरी में भगवान् अरिष्टनेमि, तीर्थंकर-परम्परा से विचरते हुए पधारे। उस द्वारिका नगरी में 'बलदेव' नाम के राजा थे। उनकी रानी का नाम 'धारिणी' था। वह अत्यन्त सुकोमल और सुन्दर थी। एक समय सुकोमल शय्या पर सोयी हुई धारिणी रानी ने स्वप्न में सिंह देखा। स्वप्न देखते ही जाग्रत हो कर अपने पति के समीप आई और स्वप्न का वृत्तान्त सुनाया। गर्भ समय पूर्ण होने पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वप्न के अनुसार उसके यहाँ एक पुण्यशाली पुत्र का जन्म हुआ। इसके जन्म, बाल्यकाल आदि का वर्णन गौतमकुमार के समान है। उसका नाम 'सुमुख' रखा गया। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर उस कुमार का पचास राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ और विवाह में पचास-पचास करोड़ सौनेया आदि का दहेज मिला।

किसी समय भगवान् अरिष्टनेमि वहाँ पधारे। उनकी वाणी सुन कर सुमुख ने उनके पास दीक्षा अंगीकार की। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया और बीस वर्ष पर्यन्त चारित्र पर्याय का पालन किया। अन्त में शत्रुंजय पर्वत पर संथारा कर के सिद्ध हुए।

हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग के नौवें अध्ययन का उपरोक्त भाव कहा है।

॥ तीसरे वर्ग का नववाँ अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०-१३ अज्झयणाणि

शेष (१०-१३) अध्ययन

(४५)

एवं दुम्मुहे वि कूवदारए वि दोण्हं वि बलदेवे पिया, धारिणी माया ॥ १०-११॥ दारुए वि एवं चेव णवरं वसुदेवे पिया, धारिणी माया॥१२॥ एवं अणादिट्ठी वि, वसुदेवे पिया, धारिणी माया॥१३॥

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ इइ तइओ वग्गो ॥

भावार्थ - इसी प्रकार 'दुर्मुख' और 'कूपदारक' - इन दोनों कुमारों का भी वर्णन जानना चाहिए। इन दोनों के पिता का नाम 'बलदेव' और माता का नाम 'धारिणी' था। इनका सारा वर्णन सुमुख अनगार के समान ही है।

'दारुक' कुमार का वर्णन भी सुमुख कुमार के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि इनके पिता का नाम 'वसुदेव' और माता का नाम 'धारिणी' था।

इसी प्रकार 'अनादृष्टि' कुमार का भी वर्णन है। इनके पिता का नाम 'वसुदेव' और माता का नाम 'धारिणी' था। दीक्षा ले कर ये भी मोक्ष गये।

हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययनों का इस प्रकार अर्थ कहा है।

॥ तीसरे वर्ग के १० से १३ अध्ययन समाप्त॥

॥ इति तृतीय वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो वग्गो - चतुर्थ वर्ग

परिचय

(४६)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। चउत्थस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा -

जालि मयालि उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणे य।
पज्जुण्ण संब अणिरुद्धे, सच्चणेमी य दढणेमी॥१॥

भावार्थ - जम्बू स्वामी, सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं - 'हे भगवन्! सिद्धि-गति प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा नामक आठवें अंग के तीसरे वर्ग में जो भाव कहे हैं, वे मैंने श्रवण किये। चौथे वर्ग का भगवान् ने क्या अर्थ कहा है, सो कृपा कर के कहिये।'

उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - १ जालि २ मयालि ३ उवयालि ४ पुरुषसेन ५ वारिसेन ६ प्रद्युम्न ७ शाम्ब ८ अनिरुद्ध ९ सत्यनेमि और १० दृढ़नेमि।

(४७)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था जहा पढमे। कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ।

भावार्थ - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं, तो उनमें से प्रथम अध्ययन का क्या भाव कहा है?'

'हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी। जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है। वहाँ कृष्ण-वासुदेव राज करते थे।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन - जालिकुमार का वर्णन

तत्थ णं बारवईए णयरीए वसुदेवे राया धारिणी देवी। वण्णओ। जहा गोयमो, णवरं जालिकुमारे पण्णासओ दाओ। बारसंगी, सोलस्स वासा परियाओ सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे।

कठिन शब्दार्थ - बारसंगी - बारह अंगों का।

भावार्थ - उस द्वारिका नगरी में वसुदेव राजा निवास करते थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। वह अत्यन्त सुकुमाल सुन्दर एवं सुशीला थी। एक समय सुकोमल शय्या पर सोती हुई उस धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा और स्वप्न का वृत्तान्त अपने पतिदेव को सुनाया। उसके बाद गौतमकुमार के समान एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम 'जालि कुमार' रखा गया। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसका विवाह पचास कन्याओं के साथ किया गया और उन्हें पचास-पचास करोड़ सोनैया आदि दहेज मिला।

एक समय भगवान् अरिष्टनेमि वहाँ पधारे। उनकी वाणी सुन कर जालिकुमार को वैराग्य उत्पन्न हो गया। माता-पिता की आज्ञा ले कर उन्होंने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। उन्होंने बारह अंगों का अध्ययन किया और सोलह वर्ष पर्यन्त दीक्षा-पर्याय पाली। फिर गौतम अनगार के समान इन्होंने भी शत्रुंजय पर्वत पर एक मास का संथारा किया और सर्व कर्मों से मुक्त हो कर सिद्ध हुए।

॥ चौथे वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त॥

शेष नौ अध्ययन

(४८)

एवं मयालि उवयालि पुरिससेणे वारिसेणे य। एवं पज्जुण्णे वि णवरं कण्हे पिया रुप्पिणी माया। एवं संबे वि णवरं जंबवई माया। एवं अणिरुद्धे वि णवरं पज्जुण्णे पिया, वेदब्भी माया। एवं सच्चणेमी, णवरं समुद्दविजए पिया, सिवा माया। एवं दढणेमी वि। सव्वे एगगमा।

॥ चउत्थस्स वग्गस्स णिक्खेवओ॥

॥ इइ चउत्थो वग्गो॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **बारसंगी** - बारह अंगों का, **पिया** - पिता, **माया** - माता, **एगगमा**- एक गम-एक समान।

भावार्थ - इसी प्रकार मयालि, उवयालि, पुरुषसेन और वारिसेन का चरित्र भी जानना चाहिए। ये सभी वसुदेव के पुत्र और धारिणी के अंगजात थे।

इसी प्रकार प्रद्युम्न का चरित्र भी जानना चाहिए। इनके पिता का नाम 'कृष्ण' और माता का नाम 'रुक्मिणी' था।

इसी प्रकार 'शाम्बकुमार' का वर्णन भी जानना चाहिए। इनके पिता का नाम 'कृष्ण' और माता का नाम 'जाम्बवती' था।

इसी प्रकार 'अनिरुद्ध कुमार' का वर्णन भी जानना चाहिए। इनके पिता का नाम 'प्रद्युम्न' और माता का नाम 'वैदर्भी' था।

इसी प्रकार 'सत्यनेमि' और 'दृढ़नेमि' इन दोनों कुमारों का वर्णन जानना चाहिए। इन दोनों के पिता का नाम 'समुद्रविजय' और माता नाम 'शिवादेवी' था।

सभी अध्ययनों का वर्णन एक समान है।

हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चतुर्थ वर्ग के भाव इस प्रकार कहे हैं।

विवेचन - इस वर्ग में वर्णित 'जालिकुमार' आदि दसों अध्ययनों के वर्णन में दीक्षा लेने के बाद उनके द्वादशांगी का ज्ञान सीखना बताया है। यहाँ पर 'द्वादशांगी' शब्द से 'सम्पूर्ण द्वादशांगी' (नन्दी एवं समवायांग सूत्र में वर्णित - दृष्टिवाद के परिकर्म आदि पाँचों भेदों से युक्त) का अध्ययन करना समझना चाहिए।

तृतीय वर्ग में 'अनीकसेन' आदि कुमारों के वर्णन में दीक्षा लेने के बाद १४ पूर्वों को सीखना बताया है। '१४ पूर्वों के ज्ञान में 'दृष्टिवाद' नाम के बारहवें अंग सूत्र के 'परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत एवं चूलिका' रूप चार भेदों का अध्ययन समझना चाहिए। चौथे भेद-'अनुयोग' (मूल प्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग) का पूर्ण ज्ञान नहीं करने की संभावना लगती है। '१४ पूर्वी' शब्द से भिन्न द्वादशांगी व 'द्वादशांगी शब्द' से अभिन्न द्वादशांगी (सम्पूर्ण दृष्टिवाद) को समझना चाहिए।

॥ चौथे वर्ग के २ से १० अध्ययन समाप्त॥

॥ इति चतुर्थ वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो वग्गो - पंचम वर्ग

परिचय

(४९)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा -

पउमावई य गोरी, गंधारी लक्खणा सुसीमा य।
जंबुवई सच्चभामा, रुप्पिणी मूलसिरी मूलदत्ता य॥

भावार्थ - जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगड सूत्र के चतुर्थ वर्ग का जो अर्थ कहा, वह मैंने सुना। हे भगवन्! इसके बाद पांचवें वर्ग में क्या भाव कहे हैं?'

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं - 'हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पांचवें वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. पद्मावती २ गौरी ३ गान्धारी ४ लक्ष्मणा ५ सुसीमा ६ जाम्बवती ७ सत्यभामा ८ रुक्मिणी ९ मूलश्री और १० मूलदत्ता।'

प्रथम अध्ययन

(५०)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - श्री जम्बू स्वामी पूछते हैं - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पांचवें वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं, तो उनमें से पहले अध्ययन का क्या भाव है?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्मावती

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था, जहा पढमे, जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई णामं देवी होत्था, वण्णओ।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी से कहते हैं - "हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी। वहाँ कृष्ण-वासुदेव राज करते थे। उनकी रानी का नाम 'पद्मावती' था। वह अत्यन्त सुकुमार और सुरूप थी।"

भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण

(५१)

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे जाव विहरइ। कण्हे णिग्गए जाव पज्जुवासइ। तएणं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठे जहा देवई जाव पज्जुवासइ। तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई देवीए जाव धम्मकहा। परिसा पडिगया।

भावार्थ - उस काल उस समय में भगवान् अरिष्टनेमि, तीर्थंकर परंपरा से विचरते हुए वहाँ पधारे। भगवान् का आगमन सुन कर कृष्ण-वासुदेव उनके दर्शन के लिए गये यावत् पर्युपासना करने लगे। भगवान् का आगमन सुन कर पद्मावती रानी भी अत्यन्त हृष्ट-तुष्ट-प्रसन्न हुई। वह भी देवकी के समान धर्म-रथ पर चढ कर भगवान् के दर्शन करने के लिए गई। भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण-वासुदेव, पद्मावती रानी और परिषद् को धर्मकथा कही। धर्म-कथा सुन कर परिषद् अपने-अपने घर लौट गई।

द्वारिका विनाश का कारण

तए णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - इमीसे णं भंते! बारवईए णयरीए दुवालसजोयण-आयामाए णवजोयण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विच्छिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए किंमूलए विणासे भविस्सइ? कण्हाइ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हवासुदेवं एवं वयासी - एवं खलु कण्हा! इमीसे बारवईए णयरीए दुवालसजोयण-आयामाए णवजोयण-विच्छिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलए विणासे भविस्सइ।

कठिन शब्दार्थ - किंमूलए - किस मूल (कारण) से, **विणासे** - विनाश, **सुरग्गिदीवायणमूलए** - सुरा (मदिरा), अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कारण।

भावार्थ - इसके बाद कृष्ण-वासुदेव ने भगवान् अरिष्टनेमि को वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार पूछा - 'हे भगवन्! बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश किस कारण से होगा?'

भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा - 'हे कृष्ण! बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा - मदिरा, अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कारण होगा।'

विवेचन - अर्द्ध भरत के तीन खण्डों में इतने दिन अमन-चैन की बंशी बज रही थी, पर आज अचानक कृष्ण महाराज को द्वारिका के विनाश का मूल जानने की क्या आवश्यकता हुई? कृष्ण महाराज गजसुकुमाल अनगार की अकाल हत्या से बहुत विचार में पड़ गये थे। वे सोचते रहते -

'जब मेरी चढ़ती पुण्यवानी थी तो जरासंध को पराजित कर मैं त्रिखण्डाधिपति बन गया। देवों ने मेरी सहायता की। धनपति कुबेर ने द्वारिका का निर्माण किया। आज तक कोई अप्रिय घटना नहीं घटी, पर यह क्या हो गया? मेरे सगे भाई गजसुकुमाल को, सिर पर धधकते अंगारे डालकर मार डाला गया। वह भी कहीं दूर नहीं राजधानी द्वारिका में - मेरे रहते हुए ही। मेरा भाई ही होता तो बात वहीं तक थी, पर भगवान् अरिष्टनेमिनाथ का अंतेवासी नवदीक्षित संत! उसकी यह प्राणान्त प्रक्रिया!! बस, द्वारिका का विनाश होने वाला हैं। मेरे पुण्यपुंज का अब जोर नहीं है।'

इसीलिए तो बुद्धिमान् कृष्ण ने यह नहीं पूछा कि विनाश होगा या नहीं? उन्होंने सीधा यही पूछा कि विनाश कैसे होगा?

सुना जाता है कि मदिरा को द्वारिका-विनाश का कारण जान कर कृष्ण महाराज ने मद्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निषेध कर दिया तथा बची-खुची मदिरा बाहर फिकवा दी। एक बार कुछ यादव कुमार घोड़े लेकर घूमने गए। प्यास लगी तो गड्ढे में रही शराब पी ली। वहीं द्वेपायन ऋषि तपयुक्त ध्यान कर रहे थे। मदिरा के नशे में उनके ऊपर घोड़े कुदाने लगे तथा कहीं एक मरा सर्प पड़ा था, उसे ऋषि के गले में डाल दिया और उसे मारा। इस अभद्र चेष्टा से ऋषि कुपित हुए। उन्होंने द्वारिका विनाश करने का निदान कर लिया। मालूम पड़ने पर कृष्ण बलदेव ने उन्हें निदान त्यागने की प्रार्थना की पर ऋषि ने कहा - 'तुम दोनों बच सकोगे।'

कृष्ण का पश्चात्ताप

(५२)

तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अयमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पण्णे - धण्णा णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पज्जुण्ण-संब-अणिरुद्ध-दढणेमि-सच्चणेमिप्पभिइओ कुमारा, जे णं चिच्चा हिरण्णं जाव परिभाइत्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स, अंतियं मुंडा जाव पव्वइया, अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए णो संचाएमि अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए।

कठिन शब्दार्थ - धण्णा - धन्य हैं, **चिच्चा** - छोड़ कर, **परिभाइत्ता** - 'दाणं च दाइयाणं' - सम्पत्ति का दान दे कर एवं परिजनों में विभाग (बांट) कर के, **अकयपुण्णे** - अकृतपुण्य, **रज्जे** - राज्य, **अंतेउरे** - अंतःपुर में, **कामभोगेसु मुच्छिए** - कामभोगों में मूर्च्छित।

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि के मुख से द्वारिका नगरी के विनाश का कारण जान कर कृष्ण-वासुदेव के हृदय में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढनेमि और सत्यनेमि आदि धन्य हैं कि जिन्होंने अपनी सम्पत्ति, स्वजन और याचकों को दे कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित हो कर प्रव्रजित हो गये। मैं अधन्य हूँ, अकृत-पुण्य हूँ, जिससे मैं राज्य में, अन्तःपुर में और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में ही फंसा हुआ हूँ। इनसे विमुक्त हो कर मैं भगवान् अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा नहीं ले सकता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"कण्हाइ!" अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेव एवं वयासी - से णूणं कण्हा! तव अयं अज्झत्थिए समुप्पण्णे धण्णा णं ते जालि जाव पव्वइत्तए? से णूणं कण्हा! अयमट्ठे? हंता अत्थि।

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने ज्ञान से कृष्ण-वासुदेव के हृदय में आये हुए विचारों को जान कर आर्त्तध्यान करते कृष्ण-वासुदेव से इस प्रकार कहा - 'हे कृष्ण! तुम्हारे मन में इस प्रकार भावना हो रही है कि वे जालि, मयालि आदि कुमार धन्य हैं, जिन्होंने अपना धन-वैभव, स्वजन और याचकों को दे कर अनगार हो गये हैं। मैं अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ, जो राज्य, अन्तःपुर और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में ही गृद्ध हूँ। मैं भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या नहीं ले सकता।'

'हे कृष्ण! क्या यह बात सत्य है?'

कृष्ण ने उत्तर दिया - 'हाँ भगवन्! आपने जो कहा, वह सभी सत्य है। आप सर्वज्ञ हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है।'

विवेचन - शंका - 'कण्हाइ!', 'कण्हा!' इस प्रकार भगवान् द्वारा श्रीकृष्ण को दो बार संबोधित करने का क्या कारण है?

समाधान - भगवान् अरिष्टनेमि द्वारा दो बार श्रीकृष्ण का नाम लेने में पहला तो अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए सम्बोधन है। दूसरे संबोधन से बात शुरू की जा रही है। भगवान् महावीर स्वामी द्वारा गौतमस्वामी को दो बार संबोधन करने का वर्णन स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान में 'प्रमाद-वर्जना' पद में मिलता है।

'कृष्ण!' ऐसा अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रथम बार संबोधन देकर उनका ध्यान अपनी ओर लग गया है तब दूसरी बार संबोधन देकर प्रभु ने फरमाया - "हे कृष्ण! क्या अभी अभी तुम्हारे मन में ये विचार आये कि धन्य हैं वे जालि आदि कुमार और अधन्य, अपुण्य, अकृतपुण्य हूं मैं - जो दीक्षा ग्रहण नहीं कर पाता। यह बात सही है क्या?"

कृष्ण ने गद्‌गद् हो कर कहा - मेरे जीवनधन! जिनवाणी रश्मियों के ज्योतिर्धर! यादव कुलकलाधर!!! घट घट के अंतर्यामी स्वामिन्! आप तो त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों के ज्ञाता द्रष्टा हैं, भला आपसे क्या कोई बात प्रच्छन्न हैं? आप सत्य महाव्रत के परम धारक हैं, आपका ज्ञान अवितथ है, सत्य है, सद्‌भूत है, तथ्य है। आपने फरमाया वह सत्य ही है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेव निदानकृत होते हैं

(५३)

"तं णो खलु कण्हा! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइस्संति।"

"से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ - ण एवं भूयं वा जाव पव्वइस्संति?"

"कण्हाइ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - एवं खलु कण्हा! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे णियाणकडा, से एएणट्ठेणं कण्हा एवं वुच्चइ- ण एवं भूयं जाव पव्वइस्संति।"

कठिन शब्दार्थ - णो एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा - ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं, **पव्वइस्संति** - दीक्षित होंगे, **पुव्वभवे** - पूर्वभव में, **णियाणकडा**- निदानकृत - नियाणा करने वाले।

भावार्थ - 'हे कृष्ण! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव अपने भव में संपत्ति छोड़ कर प्रव्रजित हो जाय। नहीं, वासुदेव दीक्षा लेते ही नहीं, कभी ली नहीं और भविष्य में लेंगे भी नहीं।

यह सुन कर कृष्ण-वासुदेव ने पूछा - 'हे भगवन्! इसका क्या कारण है?'

भगवान् ने कहा - 'हे कृष्ण! सभी वासुदेव पूर्व-भव में निदानकृत (नियाणा करने वाले) होते हैं। इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ कि ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव अपनी संपत्ति को छोड़ कर दीक्षा लें।'

विवेचन - सभी वासुदेव पूर्व के मनुष्य भव में संयम ग्रहण किए हुए होते हैं। प्रतिवासुदेव के जीव के साथ किसी न किसी कारण से उनका वैरानुबंध हो जाता है। यहां तो वे संयमी होने के कारण अनिष्ट नहीं कर पाते पर आगामी भव में उसका वैर वसूलने का संकल्प ही वह निदान है जो सभी वासुदेव करते ही हैं और इसी कारण वे वासुदेव के भव में संयम लेने में असमर्थ रहते हैं।

श्री स्थानांग सूत्र में निदान भूमियां व निदान के कारण बताये हैं। तीर्थंकर चरित्र में कथानक भी उपलब्ध है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम धारण करने से स्वर्ग-अपवर्ग की प्राप्ति होती है। मैंने पूरे जीवन भर अनेकों युद्ध किए, भोगो में डूबा रहा, फिर मेरा अगला जन्म कैसा होगा? यह जानने के लिए कृष्ण महाराज पूछते हैं -

भविष्य पृच्छा

(५४)

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी - अहं णं भंते! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि? कहिं उववज्जिस्सामि?

कठिन शब्दार्थ - कालमासे - काल के समय, **कालं किच्चा** - काल करके, **कहिं**- कहां, **गमिस्सामि** - जाऊंगा, **उववज्जिस्सामि** - उत्पन्न होऊँगा।

भावार्थ - यह सुन कर कृष्ण-वासुदेव ने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा - 'हे भगवन्! मैं यहाँ से काल के समय काल कर के कहाँ जाऊँगा, कहाँ उत्पन्न होऊँगा?'

भगवान् द्वारा भविष्य कथन

तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - "एवं खलु कण्हा! तुमं बारवईए णयरीए सुरग्गिदीवायण-कोव-णिद्दड्ढाए अम्मापिइणियगविप्पहूणे रामेण-बलदेवेण सद्धिं दाहिण-वेयालिं अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे णग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइयसरीरे जराकुमारेणं तिक्खेणं कोदंड-विप्पमुक्केणं इसुणा वामे पाए विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए जाव उववज्जिहिसि।"

कठिन शब्दार्थ - सुरग्गिदीवायण-कोव-णिद्दड्ढाए - सुरा, अग्नि और द्वेपायन ऋषि के कोप के कारण नष्ट हो जाने पर, **अम्मापिइणियगविप्पहूणे** - माता-पिता एवं स्वजनों का वियोग हो जाने पर, **रामेण-बलदेवेण** - राम बलदेव के, **सद्धिं** - साथ, **दाहिण-वेयालिं अभिमुहे** - दक्षिणी समुद्र के तट की ओर, **जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं** - युधिष्ठिर प्रमुख, **पंचण्हं पंडवाणं** - पांच पांडवों के, **पंडुरायपुत्ताणं** - पाण्डु राजा के पुत्र, **पंडुमहुरं** - पाण्डु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मथुरा, **संपत्थिए** - जाओगे, **कोसंबवणकाणणे** - कौशाम्ब वन उद्यान में, **णग्गोहवरपायवस्स अहे**- अत्यंत विशाल वट वृक्ष के नीचे, **पुढवीसिलापट्टए** - पृथ्वी शिला पट्ट पर, **पीयवत्थपच्छाइय-सरीरे** - पीताम्बर से शरीर को ढक कर, **जराकुमारेणं** - जरा कुमार के, **तिक्खेणं** - तीखे (तीक्ष्ण), **कोदंडविप्पमुक्केणं** - धनुष से छूटे हुए, **इसुणा** - तीर से, **वामे पाए** - बायां पैर, **विद्धे** - विंध जायेगा, **तच्चाए** - तीसरी, **वालुयप्पभाए पुढवीए** - बालुकाप्रभा पृथ्वी में।

भावार्थ - भगवान् ने कहा - 'हे कृष्ण! सुरा, अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कोप के कारण इस द्वारिका नगरी का नाश हो जाने पर और अपने माता-पिता तथा स्वजनों से विहीन हो जाने पर तुम राम-बलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे पाण्डु राजा के पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पांचों पाण्डव के समीप पाण्डु-मथुरा की ओर जाओगे। उधर जाते हुए विश्राम लेने के लिए कौशाम्ब वृक्ष के वन में एक अत्यन्त विशाल वट-वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर पीतांबर से अपनी देह को ढ़क कर सो जाओगे। उस समय मृग की आशंका से जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण बाण तुम्हारे बाएँ पैर में लगेगा। इस प्रकार बाण से बिद्ध हो कर तुम काल के समय काल कर के वालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी में उत्पन्न होओगे।

तए णं कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म ओहय जाव झियाइ।

भावार्थ - भगवान् के मुख से अपने आगामी भव की बात सुन कर कृष्ण-वासुदेव आर्त्तध्यान करने लगे।

आगामी भव में तीर्थंकर और मुक्ति

"कण्हाइ!" अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - मा णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहय जाव झियाहि। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे णयरे बारसमे अममे णामं अरहा भविस्ससि। तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलपरियायं पाउणित्ता सिज्झिहिसि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **झियाहि** - आर्त्तध्यान मत करो, **उज्जलियाओ** - निकल कर, **अणंतरं** - अनन्तर - बिना कोई दूसरा भव किये, **आगमिस्साए** - आगामी, **उस्सप्पिणीए** - उत्सर्पिणी, **पुंडेसु** - पुण्ड्र, **जणवएसु** - जनपद में, **सयदुवारे** - शतद्वार, **अरहा** - अर्हंत-तीर्थंकर, **भविस्ससि** - बनोगे (होओगे), **बहूइं वासाइं** - बहुत वर्षों तक, **केवलपरियायं** - केवली पर्याय का, **पाउणित्ता** - पालन कर, **सिज्झिहिसि** - सिद्ध हो जाओगे।

भावार्थ - तब भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा - "हे कृष्ण! तुम इस प्रकार आर्त्तध्यान मत करो। तुम तीसरी पृथ्वी से निकल कर आगामी उत्सर्पिणी काल में इसी जम्बूद्वीप में भरत-क्षेत्र के पुंड्रजनपद के शतद्वार नगर में 'अमम' नाम के बारहवें तीर्थंकर बनोगे। वहाँ बहुत वर्षों तक केवल-पर्याय का पालन कर सिद्ध पद प्राप्त करोगे।"

हर्षावेश और सिंहनाद

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे अप्फोडेइ, अप्फोडित्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवलिं छिंदइ, छिंदित्ता सीहणायं करेइ, करित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। अभिसेय हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ, णिसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी -

कठिन शब्दार्थ - **अप्फोडेइ** - जंघा पर फटकार लगाई, **वग्गइ** - उछल कूद की, **तिवलिं छिंदइ** - त्रिपदी छेदन - एक कदम आगे और दो कदम पीछे हटना, **सीहणायं** - सिंहनाद।

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि के मुखारविन्द से अपने भविष्य का वृत्तान्त सुन कर कृष्ण-वासुदेव हृष्ट-तुष्ट हृदय से अपनी भुजा ठोकने लगे और हर्षावेश में जोर-जोर से शब्द करने लगे। उन्होंने तीन चरण पीछे हट कर सिंहनाद किया। फिर भगवान् को वन्दन-नमस्कार कर के अभिषेक हस्ति-रत्न पर चढ़े और द्वारिका नगरी के मध्य होते हुए अपने भवन में पहुँचे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हाथी से उतर कर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी और जहाँ अपना सिंहासन था, वहाँ गये। वे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बैठे और कौटुम्बिक पुरुषों (राजसेवकों) को बुला कर इस प्रकार बोले-

विवेचन - श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से अपना भविष्य - तीर्थंकर बन कर मुक्ति पाने का - सुन कर बहुत प्रसन्नता का अनुभव किया। मैं अनंतकाल तक भवभ्रमण में अटका, भटका, कर्मों ने मुझे प्रत्येक लोकाकाश प्रदेश पर पटका, जन्म-मरण, संयोग-वियोग, रोग, बुढ़ापा सबका मुझे खूब लगा झटका। अब मैं संसार से मुक्त होऊंगा। मैं अभव्य नहीं भव्य हूँ। अनंत संसारी नहीं, चालू भव सहित तीसरा भव बस! फिर छुट्टी। ऐसे विचारों से जयनाद करके सिंहनाद किया - जैसे शेर दहाड़ता है वैसे ही वे दहाड़े। ऐसा सिंहनाद उन्होंने जब द्रोपदी को लेने पद्मनाभ की अपरकंका गये थे तब भी किया था। संसार में संसरण खत्म, यह जीव के लिए सबसे भारी खुशी है। श्रीकृष्ण ने हार्दिक हर्षावेश में ही यह सब कुछ भगवान् के सामने किया। केवली भगवान् ने अपने ज्ञान में यह सब किया जाना देखा था, वह तो अन्यथा होना ही नहीं था।

द्वारिका में उद्घोषणा और कृष्ण की धर्मदलाली

(५५)

गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवईए णयरीए सिंघाडग जाव उग्घोसेमाणा एवं वयह - "एवं खलु देवाणुप्पिया! बारवईए णयरीए दुवालसजोयण-आयामाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूले विणासे भविस्सइ तं जो णं देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवईए णयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे तलवरे माडंबिए कोडुंबिए इब्भे सेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जइ पच्छाउरस्स वि य से अहापवित्तं वित्तिं अणुजाणइ, महया इड्ढिसक्कारसमुदएण य से णिक्खमणं करेइ, दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह घोसित्ता मम एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह।" तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - सिंघाडग - श्रृंगाटक, **उग्घोसेमाणा** - उद्घोषणा करते हुए, **जुवराया**- युवराज, **ईसरे** - ईश्वर - स्वामी या मंत्री, **तलवरे** - तलवर - राजा का प्रिय या राजा के समान, **माडंबिए** - माडम्बिक - छोटे गांव का स्वामी, **कोडुंबिए** - कौटुम्बिक - दो तीन कुटुम्बों का स्वामी, **इब्भे** - इभ्य - कोटि ध्वज सेठ, **सेट्ठी** - सेठ, **देवी** - राजरानी, **कुमारो** - कुमार - अविवाहित बालक, **कुमारी** - अविवाहित बालिका, **विसज्जइ** - आज्ञा प्रदान करते हैं, **पच्छाउरस्स** - पीछे उनके आश्रित - सेवा योग्य, **अहापवित्तं वित्तिं** - यथायोग्य व्यवस्था, **महया इड्ढिसक्कारसमुदएणं** - महान् ऋद्धि सत्कार के साथ, **णिक्खमणं** - निष्क्रमण - प्रव्रज्या, **घोसणयं** - घोषणा, **आणत्तियं** - आज्ञा को, **पच्चप्पिणह** - प्रत्यर्पित करो।

भावार्थ - हे देवानुप्रियो! इस द्वारिका नगरी के चतुष्पथ आदि सभी स्थानों पर मेरी इस आज्ञा को उद्घोषित करो कि - 'हे देवानुप्रियो! बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश, मदिरा अग्नि और द्वीपायन ऋषि के द्वारा होगा। इसलिए द्वारिका नगरी का कोई भी व्यक्ति, चाहे वह राजा हो, युवराज हो, ईश्वर (स्वामी या मंत्री) हो, तलवर (राजा का प्रिय अथवा राजा के समान) हो, माडम्बिक (छोटे गांव का स्वामी) हो, कौटुम्बिक (दो-तीन कुटुम्बों का स्वामी) हो, इभ्य - सेठ हो, रानी हो, कुमार हो, कुमारी हो और कोई भी हो, जो भगवान् अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा लेना चाहें, उन्हें कृष्ण-वासुदेव दीक्षा लेने की आज्ञा देते हैं। दीक्षा लेने वाले के पीछे जो कोई बाल, वृद्ध व रोगी होंगे, उनका पालन-पोषण कृष्ण-वासुदेव करेंगे और दीक्षा लेने वालों का दीक्षा-महोत्सव भी बड़े समारोह के साथ कृष्ण-वासुदेव अपनी ओर से ही करेंगे।' इस प्रकार दो-तीन बार घोषणा कर के मुझे सूचित करो।

कृष्ण वासुदेव की आज्ञानुसार कौटुम्बिक (राजसेवक) पुरुषों ने उद्घोषणा कर के कृष्ण-वासुदेव के पास आ कर निवेदन किया।

विवेचन - श्री कृष्ण महाराज की धर्म-दलाली की प्रशंसा जितनी की जाय थोड़ी है। इस ऐतिहासिक उद्घोषणा को सुन कर अनेक भव्य आत्माओं ने अपना कल्याण किया।

श्री कृष्ण महाराज ने तो द्वारिका से जितने जीवों का उद्धार हो सकता था-किया एवं पूर्ण सहायता दी, पर हमें अपनी द्वारिका के विषय में भी विचार करना है -

हमारा शरीर भी द्वारिका है। नव द्वारों वाली इस द्वारिका का हमने निर्माण किया तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सार-संभाल भी की। नव द्वारों से सदा ही अपवित्र रस झराने वाली यह द्वारिका भी शाश्वत रहने वाली नहीं है। यह भी नष्ट होगी। अग्नि की भेंट चढ़ेगी। इस देह-द्वारिका का भी विनाश होगा। हमें गंभीरता पूर्वक विचार कर लेना चाहिए कि द्वारिका नाश के पहले हमें क्या-क्या करना है?

पद्मावती को वैराग्य

(५६)

तए णं सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी -

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि से धर्म सुन कर और हृदय में धारण कर के पद्मावती रानी हृष्ट-तुष्ट हुई, यावत् भावपूर्ण हृदय से भगवान् को नमस्कार कर इस प्रकार बोली -

सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं से जहेयं तुब्भे वयह। जं णवरं देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।

कठिन शब्दार्थ - सद्दहामि - श्रद्धा करती हूं, **णिग्गंथं पावयणं** - निर्ग्रंथ प्रवचन को, **जहेयं** - जैसा, **आपुच्छामि** - पूछ कर, **मा पडिबंधं करेह** - प्रमाद (विलम्ब) मत करो।

भावार्थ - 'हे भगवन्! आपका उपदेश यथार्थ है। जैसा आप कहते हैं, वह तत्त्व वैसा ही है। निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर मेरी श्रद्धा है। मैं कृष्ण-वासुदेव से पूछ कर आपके समीप दीक्षा लेना चाहती हूँ।' भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो। धर्म-कार्य में प्रमाद मत करो।'

दीक्षा की आज्ञा

तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करयल जाव कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी - इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिए!

भावार्थ - इसके बाद पद्मावती रानी धार्मिक रथ पर चढ़ कर द्वारिका नगरी की ओर लौटी और अपने भवन के पास आ कर धार्मिक रथ से नीचे उतरी, फिर जहाँ कृष्ण-वासुदेव थे, वहाँ गई। उनके सामने हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली - "हे देवानुप्रिय! मैं भगवान् अरिष्टनेमि से दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ। इसलिए आप मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करें।"

पद्मावती रानी की उपर्युक्त बात सुन कर कृष्ण-वासुदेव ने कहा - 'हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा कार्य करो।'

पद्मावती का दीक्षा-महोत्सव

(५७)

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! पउमावई देवीए महत्थं णिक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एवं आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।

कठिन शब्दार्थ - **महत्थं** - विशाल, **णिक्खमणाभिसेयं** - निष्क्रमणाभिषेक, **उवट्ठवेह**- तैयारी करो।

भावार्थ - इसके बाद कृष्ण-वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा - 'हे देवानुप्रियो! पद्मावती देवी के लिए शीघ्र ही दीक्षा-महोत्सव की विशाल तैयारी करो और तैयारी हो जाने पर मुझे सूचना दो।'

कृष्ण वासुदेव की उपर्युक्त आज्ञा पा कर सेवक पुरुषों ने दीक्षा-महोत्सव सम्बन्धी व्यवस्था कर के उसकी सूचना कृष्ण-वासुदेव को दी।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरूहइ, दुरूहित्ता अट्ठसएणं सोवण्णकलसेणं जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकार विभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणीं सिवियं दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता बारवईए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णयरीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ, पउमावई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ।

कठिन शब्दार्थ - **पट्टयं** - पाट पर, **अट्ठसएणं** - एक सौ आठ, **सोवण्णकलसेणं** - स्वर्णकलशों से, **अभिसिंचइ** - अभिषिक्त किया, **सव्वालंकार विभूसियं** - सर्व अलंकारों से विभूषित, **पुरिससहस्सवाहिणीं** - हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली, **सिवियं** - शिविका (पालकी), **रेवयए** - रैवतक, **पव्वए** - पर्वत, **ठवेइ** - नीचे रखी, **सिवियाओ** - शिविका से, **पच्चोरुहइ** - नीचे उतरी।

भावार्थ - कृष्ण-वासुदेव ने पद्मावती देवी को पाट पर बिठा कर एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से स्नान करवाया यावत् दीक्षा का अभिषेक किया और सभी अलकारों से अलंकृत कर के हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली शिविका (पालकी) पर उसे बिठाया और द्वारिका नगरी के मध्य होते हुए रैवतक पर्वत के सहस्राम्र वन में आये और पालकी नीचे रखी। पद्मावती देवी शिविका से नीचे उतरी।

विवेचन - उस समय राजमार्ग चौड़े होते थे, सौ आदमी एक साथ निकल सके - वैसे मार्गों से ऐसी पालकियाँ निकलती थी।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पुरओ कट्टु जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - "एस णं भंते! मम अग्गमहिसी पउमावई णामं देवी, इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा अभिरामा जीवियऊसासा हिययाणंदजणिया उंबरपुप्फंविव दुल्लहा सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? तण्णं अहं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणीभिक्खं दलयामि। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणी भिक्खं।" अहासुहं।

कठिन शब्दार्थ - **पुरओ कट्टु** - आगे करके, **अग्गमहिसी** - अग्रमहिषी - पटरानी, **इट्ठा**- इष्ट, **कंता** - कान्त, **पिया** - प्रिय, **मणुण्णा** - मनोज्ञ, **मणामा** - मनाम - मन के अनुकूल चलने वाली, **अभिरामा** - अभिराम - सुंदर, **जीवियऊसासा** - जीवन में श्वासोच्छ्वास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के समान, **हिययाणंदजणिया** - हृदय को आनंद देने वाली, **उंबरपुप्फंविव** - उदुम्बर (गूलर) के पुष्प के समान, **दुल्लहा** - दुर्लभ, **सवणयाए** - सुनने के लिए, **किमंग पुण पासणयाए** - देखने की तो बात ही क्या, **सिस्सिणीभिक्खं** - शिष्यणी भिक्षा के रूप में, **दलयामि** - देता हूं, **पडिच्छंतु** - स्वीकार करें, **अहासुहं** - जैसा सुख हो।

भावार्थ - कृष्ण-वासुदेव, पद्मावती देवी को आगे कर के भगवान् अरिष्टनेमि के समीप आये और तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिण कर के वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार बोले - 'हे भगवन्! यह पद्मावती देवी मेरी पटरानी है। यह मेरे लिए इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनाम (मन के अनुकूल कार्य करने वाली) है, अभिराम (सुन्दर) है। हे भगवन्! यह मेरे जीवन में श्वासोच्छ्वास के समान प्रिय है और मेरे हृदय को आनन्दित करने वाली है। इस प्रकार का स्त्री-रत्न उदुम्बर (गूलर) के फूल के समान सुनने के लिए भी दुर्लभ है, तब देखने की तो बात ही क्या है? हे भगवन्! ऐसी पद्मावती देवी को मैं आपको शिष्या रूप भिक्षा देता हूँ। आप कृपा कर इस शिष्या रूप भिक्षा को स्वीकार करें।' कृष्ण वासुदेव की प्रार्थना सुन कर भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार सुख हो, वैसा करो।'

विवेचन - दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में मुनि तीसरे महाव्रत में प्रतिज्ञा करता है कि मैं सचित्त या अचित्त बिना दिए नहीं लूंगा। सचित्त शिष्य शिष्याएं ग्रहण की जाती है पर बिना आज्ञा के नहीं। क्योंकि अर्हन्तों और मुनियों के महाव्रत तो सरीखे ही होते हैं।

तए णं सा पउमावई देवी उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - आलित्ते णं भंते! जाव धम्ममाइक्खियं।

कठिन शब्दार्थ - **उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं** - उत्तरपूर्व दिशा भाग - ईशान कोण में, **अवक्कमित्ता** - जाकर, **सयमेव** - स्वयमेव, **पंचमुट्ठियं** - पंचमौष्टिक, **लोयं** - लोच, **आलित्ते** - जल रहा है, **धम्ममाइक्खियं** - धर्म की शिक्षा प्रदान कीजिये।

भावार्थ - इसके बाद पद्मावती देवी ने ईशान-कोण में जा कर अपने हाथों से अपने शरीर पर के सभी आभूषण उतार दिये और अपने केशों का स्वयमेव पंचमुष्टिक लुंचन कर के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् अरिष्टनेमि के समीप आई और उन्हें वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोली - 'हे भगवन्! यह संसार जन्म, जरा और मरण आदि दुःख रूपी अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। अतः इस दुःख-समूह से छुटकारा पाने के लिए आपसे दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ। अतः आप कृपा कर के मुझे प्रव्रजित कीजिये यावत् चारित्र धर्म सुनाइये।'

विवेचन - शंका - पंचमौष्टिक लोच से 'क्या पांच बार में ही सारे बालों का लोच हो' ऐसा समझना चाहिये?

समाधान - मस्तक के बीच की एक मुट्ठी तथा चारों ओर की चार मुट्ठी इस प्रकार मस्तक का माप पंचमौष्टिक - पांच मुट्ठी माना गया है। मस्तक के बालों को हाथ से उखाड़ उखाड़ कर दूर करना लोच कहलाता है। 'पांच बार में ही सारे बालों का लोच हो' ऐसा नहीं समझना चाहिये।

पद्मावती आर्या की साधना और मुक्ति

(५८)

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मुंडावेइ, सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणीं दलयइ। तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देविं सयं पव्वावेइ जाव संजमियव्वं। तए णं सा पउमावई जाव संजमइ। तए णं सा पउमावई देवी अज्जा जाया, ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी।

कठिन शब्दार्थ - पव्वावेइ - प्रव्रजित किया, **मुंडावेइ** - मुण्डित किया, **जक्खिणीए अज्जाए** - यक्षिणी आर्या, **सिस्सिणीं** - शिष्या के रूप में, **दलयइ** - दे दिया, **ईरियासमिया**- ईर्या समिति आदि से युक्त, **गुत्तबंभयारिणी** - गुप्त ब्रह्मचारिणी।

भावार्थ - भगवान् अरिष्टनेमि ने पद्मावती देवी को स्वयमेव प्रव्रजित और मुण्डित कर के यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप में दे दी। यक्षिणी आर्या ने पद्मावती देवी को प्रव्रजित किया और संयम-क्रिया में सावधान रहने की शिक्षा देते हुए कहा - 'हे पद्मावती! तुम संयम में सदा सावधान रहना।' पद्मावती भी यक्षिणी आर्या के कथनानुसार संयम में यत्न करने लगी और ईर्या समिति आदि पांचों समिति से युक्त हो कर ब्रह्मचारिणी बन गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - दीक्षाभिलाषिनी पद्मावती को अरहा अरिष्टनेमि प्रभु ने **'करेमि भंते'** के पाठ द्वारा सर्व विरति चारित्र रूप प्रव्रज्या देकर प्रव्रजित किया। प्रतिज्ञा का इतना ऊंचा महत्त्व है कि गहने के खाली डिब्बे में मानों चक्रवर्ती की नौ निधियों से भी बेशकीमती आभूषण रख दिए गए हों। शरीर तो पद्मावती रानी का जैसा पहले था वही है पर अब महाव्रत रूपी गहने इसमें रख दिए गए। प्रभु ने पांचों इन्द्रियों और चार कषायों का निग्रह कैसे करना, इसकी विधि समझाई और साध्वी प्रमुखा यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप में दे दी।

सतियों का जीवन निर्माण सहचर्या सतियों के जिम्मे ही रहता है सो उपदेश रूप दीक्षा तो तीर्थंकर भगवान् देते हैं तथा उसे कार्य रूप में कैसे परिणत करना, यह गुरुणीजी सिखाते हैं। यक्षिणी आर्या ने पद्मावती आर्या को स्वयं प्रव्रजित किया। सारे गूढ सूत्र सिखाये। चार हाथ प्रमाण भूमि देखकर उपयोगपूर्वक चलने रूप ईर्या समिति सिखाई, परिमित निरवद्य भाषा बोलने रूप भाषा समिति सिखाई, गोचरी के दोषों को टालने रूप एषणा समिति का ज्ञान दिया। किसी भी वस्तु को यतनापूर्वक उठाने धरने का विवेक सिखाया। परिष्ठापन में भी कितनी विचक्षणता चाहिये, इसका भान कराया। सजगता, सावधानी से प्रमाद शत्रु को जीतने की विधि सिखाई। मन, वचन, काया के योग संयममय ही रहें, इसकी गुप्ति यानी रक्षा कैसे होगी - यह ज्ञान दिया।

पद्मावती आर्या ने तीर्थंकर भगवान् के एवं गुरुणी भगवती के सारे निर्देशों को समर्पणता पूर्वक स्वीकार कर जीवन को संयम से ओतप्रोत कर दिया।

पहले जो फूलों के समान सुकुमार थी वही पद्मावती आज परीषह की शूलों पर चलने को राजी राजी तैयार थी। गृहस्थ अवस्था का मरण हुआ और संयमी जीवन की प्राप्ति हुई। यहां पद्मावती रानी मर गयी और पद्मावती आर्या का जन्म हुआ। 'मैं पहले हजारों पर हुकम चलाती थी, मेरा रूतबा चलना चाहिये, मैं राजरानी हूं' ऐसी भावनाएं उनके मन में भी नहीं आई। सारी रत्नाधिक आर्यायें मेरी पूज्या हैं, मैं तो इनकी चरणरज हूं। विनय और विवेक इन दो गुणों ने पद्मावती आर्या को पांच समिति तीन गुप्ति रूप प्रवचन माता की गोद में बैठी पुत्री बना दिया। क्षमा से लगा कर ब्रह्मचर्य तक के श्रमण धर्मों में वह जी-जान से लग गयी।

तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं - उपवास, बेले, तेले, चोले, पचोले की, **मासद्धमासखमणेहिं** - अर्द्धमासखमण, मासखमण, **विविहेहिं** - विविध प्रकार के, **तवोकम्मेहिं** - तप कर्म से, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **भावेमाणा** - भावित करती हुई।

भावार्थ - पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और साथ ही साथ उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला, पन्द्रह-पन्द्रह दिन और महीने-महीने तक की विविध प्रकार की तपस्या करती हुई विचरने लगी।

तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेइ झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाइं छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरई णग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेइ चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं सिद्धा।

कठिन शब्दार्थ - बहुपडिपुण्णाइं - पूरे, **वीसं वासाइं** - बीस वर्षों की, **सामण्णपरियागं**- श्रमण पर्याय का, **पाउणित्ता** - पालन करके, **मासियाए संलेहणाए** - एक मास की संलेखना से, **झोसित्ता** - झूसित करके, **सट्ठिं भत्ताइं** - साठ भक्त, **अणसणाइं** - अनशन का, **छेदित्ता**- छेदन करके, **जस्सट्ठाए** - जिस अर्थ के लिए, **णग्गभावे** - नग्नभाव - नंगे पैर चलना आदि, **तमट्ठं** - उस अर्थ के लिये, **चरमेहिं** - चरम, **उस्सासणिस्सासेहिं** - श्वासोच्छ्वास के बाद।

भावार्थ - पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्रपर्याय का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना की और साठ भक्त अनशन कर के जिस कार्य (मोक्ष प्राप्ति) के लिए संयम लिया था, उसकी आराधना कर के अन्तिम श्वास के बाद सिद्ध पद को प्राप्त किया।

विवेचन - कृष्ण महाराज ने पद्मावती रानी के लिए युद्ध किया था। पद्मावती रानी कृष्ण महाराज के लिए अत्यन्त प्रीतिपात्र थी, परन्तु पत्थर का कलेजा कर के पद्मावती को संयम स्वीकार करने की तत्क्षण अनुज्ञा दे दी। यदि उन्हें द्वारिका विनाश एवं अपने भविष्य की विस्तृत जानकारी नहीं होती तो शायद वे पद्मावती रानी की मान-मनुहार करते तथा आज्ञा देने में ननुनच भी करते, पर आज आज्ञा मांगते ही मना नहीं किया। उनकी उद्घोषणा **'हाथी के दाँत दिखाने के ओर व खाने के ओर'** की तरह नहीं थी कि नागरिक प्रव्रज्या लें तो सहर्ष आज्ञा एवं अपने परिजन लेवें तो तरह-तरह की अन्तराय व बाधाएं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवनभर कृष्ण महाराज ने पद्मावती की सुरक्षा की। उनकी सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखा, पर यह तो लौकिक कर्त्तव्य है। ऐसा बहुत से करते हैं। लोकोत्तर कर्त्तव्य तो यह है कि व्यक्ति अपने परिजनों को धर्म में सहायता देकर आगे बढ़ाये। आगे न बढ़ा सके तो टांग पकड़ कर पीछे तो नहीं खींचे।

धर्म-प्रेम की उत्कटता के कारण उन्होंने पद्मावती रानी को हाथों से स्नान करवाया, विभूषित किया एवं प्रभु के पावन पद-पंकजों में ले गए। पद्मावती रानी के लिए हृदयोद्गारों में किंचित् मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है। कर्त्तव्य निभा कर आदर्श पति का रूप प्रकट करने में कृष्ण महाराज ने कोई कसर नहीं रखी।

"मैं तो चक्की में पिस रहा हूँ। सारा संसार पिस रहा है। कोई भाग्यवान् दाना चक्की से उछल कर बाहर निकले तो उसे सहायता दी जाय", इसी महान् अनुकम्पा से प्रेरित उनकी उद्घोषणा उनके ज्योर्तिमय जीवन की स्वर्णिम आभा है।

पद्मावती रानी ने संयम स्वीकार करके राजरानी पद को एक दम भूला दिया। 'मैं सुकुमारी हूँ, मुझसे तपस्या नहीं की जाती, मैं रूक्ष संयम का, परीषहों एवं उपसर्गों का पालन नहीं कर सकती।' यह भावना उनके नजदीक भी नहीं आई। संयम स्वीकारते ही गुरुणी की सेवा में अपने को अर्पित कर दिया। स्वाध्याय एवं तपस्या की भट्टी में अपने को होम दिया। इंगित एवं आकारों पर जीवन न्यौच्छावर कर देने वाले विरले साधकों में पद्मावती आर्या का नाम अग्रगण्य है।

घड़ा कितना ही सुन्दर एवं सुघड़ क्यों न हो, यदि उसने आंच नहीं सही, अग्नि की लाल लपटों में वह पका नहीं तो उसकी कोड़ी कीमत भी नहीं है। यदि भूलचूक से उस कच्चे घड़े में जल डाल भी दिया गया तो जल के साथ वह भी नष्ट हो जायेगा। साध्वी पद्मावती जी ने तप एवं आज्ञा की आंच में जीवन-घट को पकाया एवं इष्टितार्थ की सिद्धी कर ली।

जब कुसुमकोमल राजरानियाँ भी संयम की शूलसंकुल वीथियाँ पार कर सकती हैं तो वे वर्तमान साधकों के थके हारे, भूले, भटके जीवन के लिए करारी चुनौती क्यों न हो?

॥ पांचवें वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२-८ अज्झयणाणि

पांचवें वर्ग के २-८ अध्ययन

(५६)

२ उक्खेवओ य अज्झयणस्स । तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णयरी, रेवयए पव्वए, उज्जाणे णंदणवणे तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी वण्णओ, अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे, कण्हे णिग्गए, गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया, धम्मकहा, परिसा पडिगया, कण्हे वि पडिगए। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खंता जाव सिद्धा।

भावार्थ - श्री जम्बू स्वामी, श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं - "हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन में जो भाव कहे, वे मैंने आपके मुखारविन्द से सुने। इसके बाद भगवान् ने दूसरे अध्ययन में क्या भाव कहे हैं, सो कृपा कर कहिये।" श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी। उस नगरी के समीप रैवतक नामक पर्वत था। उस पर्वत पर नन्दन वन नामक एक मनोहर तथा विशाल उद्यान था। द्वारिका नगरी में कृष्ण-वासुदेव राज करते थे। उनके 'गौरी' नाम की रानी थी।

एक समय उस नन्दन वन उद्यान में भगवान् अरिष्टनेमि पधारे। कृष्ण-वासुदेव भगवान् के दर्शन करने के लिए गये। परिषद् भी गई और गौरी रानी भी पद्मावती रानी के समान भगवान् के दर्शन करने के लिए गई। भगवान् ने धर्म-कथा कही। धर्म-कथा सुन कर परिषद् अपने-अपने घर लौट गई और कृष्ण-वासुदेव भी अपने भवन में लौट गए। इनके बाद गौरीदेवी, पद्मावती रानी के समान प्रव्रजित हुई यावत् सिद्ध हो गई।'

एवं ३ गंधारी ४ लक्खणा ५ सुसीमा ६ जम्बुवई ७ सच्चभामा ८ रुप्पिणी। अट्ठ वि पउमावई सरिसयाओ। अट्ठ अज्झयणा।

भावार्थ - इसी प्रकार गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी का वर्णन समान रूप से जानना चाहिए। पद्मावती आदि आठों रानियाँ एक समान प्रव्रजित हो कर सिद्ध हो गई। ये आठों कृष्ण-वासुदेव की पटरानियाँ थीं।

॥ पांचवें वर्ग के २ से ८ अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९-१० अज्झयणाणि

मूलश्री और मूलदत्ता

(६०)

उक्खेवओ य णवमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए, रेवयए पव्वए, णंदणवणे उज्जाणे, कण्हे राया। तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्तए जंबवईए देवीए अत्तए संबे णामं कुमारे होत्था अहीण०।

भावार्थ - श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें अध्ययन के जो भाव कहे, वे मैंने आपके मुखारविन्द से सुने। इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नौवें अध्ययन के क्या भाव कहे हैं, सो कृपा कर के कहिये।' श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी, उस नगरी के समीप रैवतक पर्वत था। वहाँ पर नंदन वन उद्यान था। उस नगरी में कृष्ण-वासुदेव राज करते थे। कृष्ण-वासुदेव के पुत्र एवं जाम्बवती देवी के आत्मज 'शाम्ब' नामक पुत्र थे। जो सर्वांग सुन्दर थे। शाम्बकुमार की रानी का नाम 'मूलश्री' था, जो अत्यन्त सुन्दरी एवं कोमलांगी थी।

तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरि णामं भारिया होत्था, वण्णओ। अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए। मूलसिरि वि णिग्गया, जहा पउमावई। णवरं देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि जाव सिद्धा। एवं मूलदत्ता वि।

॥ पंचमो वग्गो समत्तो॥

भावार्थ - एक समय भगवान् अरिष्टनेमि वहाँ पधारे। कृष्ण-वासुदेव उनके दर्शन करने गये। मूलश्री पद्मावती के समान दर्शन करने गई। भगवान् ने धर्म-कथा कही। धर्म-कथा सुन कर परिषद् अपने-अपने घर लौट गई। कृष्ण-वासुदेव भी भगवान् को वन्दन-नमस्कार कर लौट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गये। इसके बाद मूलश्री ने भगवान् से कहा कि - 'हे भगवन्! मैं* कृष्ण-वासुदेव की आज्ञा ले कर आपके पास दीक्षा लेना चाहती हूँ। भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो।'

इसके बाद मूलश्री ने पद्मावती के समान दीक्षा ले कर तप-संयम की आराधना कर के सिद्ध पद को प्राप्त किया।

मूलश्री के समान 'मूलदत्ता' का भी सारा वृत्तान्त जानना चाहिए। यह शाम्बकुमार की दूसरी रानी थी।

विवेचन - पाँच वर्गों में केवल एक परिवार के ५१ महान् पुरुषों के जीवन चरित्रों का परिचय पढ़ने में आया। इस अवसर्पिणी काल में यादव वंश अपने आप में एक गौरवशाली वंश रहा है, जिसकी समानता नहीं मिलती। इस पर सोने में सुगंध यह है कि इन एकावन महान् आत्माओं की नैया के खिवैया भी यदुकुलतिलक भगवान् अरिष्टनेमि हैं जो समुद्रविजय एवं शिवानंदा के लाड़ले हैं। अन्तकृतदशा के पाँचों वर्गों के अतिरिक्त भी आगमों में यत्र तत्र यादव वंश के महान आत्म-सुभटों का विपुल परिचय भी उपलब्ध है। इनके गौरवमय जीवन से जितना कुछ सीखा जाय, कम ही है।

॥ पांचवें वर्ग के ९ से १० अध्ययन समाप्त ॥

॥ इति पांचवां वर्ग समाप्त ॥

---

* शाम्बकुमार ने पहले ही दीक्षा ले ली थी। इसलिए मूलश्री ने अपने श्वशुर कृष्ण-वासुदेव की आज्ञा ले कर दीक्षा ली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो वग्गो - छठा वर्ग

अध्ययन - परिचय

(६१)

जइ णं भंते! छट्ठमस्स उक्खेवओ। णवरं सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा -

मकाई किंकमे चेव, मोग्गरपाणी य कासवे।
खेमए धितिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे॥१॥
वारत्त-सुदंसण-पुण्णभद्द, सुमणभद्द-सुपइट्ठे मेहे।
अइमुत्ते य अलक्खे, अज्झयणाणं तु सोलसयं॥२॥

भावार्थ - श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी ने पांचवें वर्ग के जो भाव कहे, वे मैंने आपसे सुने। इसके बाद श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी ने छठे वर्ग के क्या भाव कहे हैं, सो कृपा कर कहिये।' श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी ने छठे वर्ग में सोलह अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. मकाई २. किंकम ३. मुद्गरपाणि ४. काश्यप ५. क्षेमक ६. धृतिधर ७. कैलाश ८. हरिचन्दन ९. वारत्त १०. सुदर्शन ११ पूर्णभद्र १२. सुमनोभद्र १३. सुप्रतिष्ठ १४. मेघ १५. अतिमुक्त और १६. अलक्ष्य। ये सोलह अध्ययन हैं।

पढमं अज्झयणं - प्रथम अध्ययन

जइ णं भंते! सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इन सोलह अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन में क्या भाव कहे हैं?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा -

मकाई गाथापति

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया। तत्थ णं मकाई * णामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए।

भावार्थ - हे जम्बू! उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहाँ गुणशीलक नामक चैत्य (उद्यान) था। उस नगर में श्रेणिक राजा राज करते थे। उस नगर में मकाई (मंकाई) नाम का एक गाथापति रहता था, जो अत्यन्त समृद्ध और दूसरों से अपराभूत था।

मकाई अनगार बने

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव गुणसिलए जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। तए णं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए, गंगदत्ते तहेव, इमोवि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवित्ता, पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए णिक्खंते जाव अणगारे जाए ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

भावार्थ - उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गुणशीलक उद्यान में पधारे। भगवान् का आगमन सुन कर परिषद् दर्शन करने के लिए निकली। मंकाई गाथापति भी भगवती सूत्र में वर्णित गंगदत्त के समान भगवान् के दर्शनार्थ निकला। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया, जिसे सुन कर मकाई गाथापति के हृदय में वैराग्य-भाव उत्पन्न हो गया। उसने घर आ कर अपने ज्येष्ठ-पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपा और हजार मनुष्यों से उठाई जाने वाली शिविका पर बैठ कर दीक्षा लेने के लिए भगवान् के पास आये, यावत् वे अनगार हो गये।

विवेचन - 'जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते' - भगवती सूत्र शतक १६ उद्देशक ५ में वर्णित गंगदत्त श्रावक के समान मकाई गाथापति शरीर को अलंकृत करके पैदल ही भगवान् महावीर स्वामी के दर्शनार्थ गये। भगवान् को वंदन नमस्कार कर पर्युपासना करने लगे। धर्मकथा

---

* पाठान्तर - मंकाई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रवण कर उन्होंने भगवान् से वंदन नमस्कार कर निवेदन किया - 'हे भगवन्! मैं निर्ग्रंथ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं और अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर-कुटुम्ब का भार सौंप कर आपके पास दीक्षित होना चाहता हूं।' तदनन्तर घर लौट कर अपने मित्र ज्ञाति, गोत्र बंधुओं को आमंत्रित कर भोजन पानादि से उनका सत्कार सम्मान कर अपने दीक्षित होने का भाव उनके समक्ष प्रकट किया तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का मुखिया बना कर स्वयं दीक्षित हो गये।

संयम पालन और मोक्ष

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। सेसं जहा खंदयस्स, गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ, तहेव विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसके बाद मकाई अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरों के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कन्दकजी के समान गुणरत्न संवत्सर तप का आराधन किया। सोलह वर्ष की दीक्षा-पर्याय का पालन कर के अन्त में स्कन्दकजी के समान विपुलगिरि पर संथारा कर के सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त॥

बिइयं अज्झयणं - द्वितीय अध्ययन

किंकम गाथापति

(६२)

दोच्चस्स उक्खेवओ। किंकमे वि एवं चेव जाव विपुले सिद्धे।

भावार्थ - दूसरे अध्ययन में 'किंकम' गाथापति का वर्णन है। वे भी मकाई के समान ही प्रव्रजित हो कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का द्वितीय अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तइयं अज्झयणं - तृतीय अध्ययन

मुद्गरपाणि (अर्जुन मालाकार)

(६३)

तच्चस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सेणिए राया चेल्लणा देवी। तत्थ णं रायगिहे णयरे अज्जुणए णामं मालागारे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स बंधुमई णामं भारिया होत्था, सुकुमालपाणिपाया।

कठिन शब्दार्थ - मालागारे - मालाकार, **परिवसइ** - रहता था, **अड्ढे** - आढ्य - धनवान्, **अपरिभूए** - अपराभूत - किसी से नहीं दबने वाला, **भारिया** - भार्या, **सुकुमालपाणिपाया** - सुंदर सुकोमल।

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडदशा सूत्र के छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन के जो भाव कहे, वे मैंने आपसे सुने। किन्तु श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तीसरे अध्ययन के क्या भाव कहे हैं, सो कृपा कर के कहिये।' श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा -

'हे जम्बू! उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहाँ गुणशीलक नामक उद्यान था। उस नगर में राजा श्रेणिक राज करता था। उसकी रानी का नाम 'चेलना' था। उस राजगृह में अर्जुन नाम का माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम बन्धुमती था, जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुकुमार थी।'

तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स रायगिहस्स णयरस्स बहिया एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था, किण्हे जाव णिकुरंबभूए दसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

कठिन शब्दार्थ - **पुप्फारामे** - पुष्पाराम - बगीचा, **किण्हे** - कृष्ण (श्याम), **णिकुरंबभूए** - सघन, घनघोर घटाओं से युक्त, **दसद्धवण्ण** - दस के आधे पांच वर्ण के, **कुसुमकुसुमिए** - पुष्प पुष्पित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - राजगृह नगर के बाहर अर्जुन माली का एक विशाल पुष्पाराम (बगीचा) था। वह बगीचा नीले पत्तों से आच्छादित होने के कारण आकाश में चढ़े हुए घनघोर घटा के समान श्याम कांति से युक्त दिखाई देता था। उसमें पांचों वर्ण के फूल खिले हुए थे। वह हृदय को प्रसन्न एवं प्रफुल्ल करने वाला एवं दर्शनीय था।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जय-पज्जय-पिइपज्जयागए अणेगकुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सं णिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

कठिन शब्दार्थ - **अज्जय** - पिता, **पज्जय** - दादा, **पिइपज्जयागए** - प्रपितामह-परदादा, **अणेगकुलपुरिस-परंपरागए** - अनेक कुलों-पीढ़ियों के पुरुषों द्वारा परंपरागत रूप से, **मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स** - मुद्गरपाणि यक्ष का, **जक्खाययणे** - यक्षायतन, **पोराणे** - प्राचीन, **दिव्वे** - दिव्य, **सच्चे** - सत्य, **पडिमा** - प्रतिमा, **पलसहस्सं णिप्फण्णं** - एक हजार पल परिमाण भार वाला, **अयोमयं** - लोहे का, **मोग्गरं** - मुद्गर।

भावार्थ - उस पुष्पाराम के समीप ही मुद्गरपाणि नाम के यक्ष का यक्षायतन था, जो अर्जुन माली के पिता, पितामह (दादा), प्रपितामह (परदादा) आदि कुल-परम्परा से सम्बन्धित था। वह पूर्णभद्र के समान पुराना, दिव्य एवं सत्य था। उसमें मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा थी। उसके हाथ में एक हजार पल परिमाण भार वाला लोहे का मुद्गर था।

विवेचन - पाणि का अर्थ है हाथ और मुद्गर का अर्थ है गदा। जिसके हाथ में गदा (मुद्गर) है उसका नाम मुद्गरपाणि है। उस मुद्गरपाणि के हाथ में जो लोहे की गदा थी उसका वजन एक हजार पल अर्थात् वर्तमान तोल के अनुसार साढ़े बासठ सेर तदनुसार लगभग ५६ किलो था।

अर्जुनमाली की यक्ष भक्ति

(६४)

तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिजक्खस्स भत्ते यावि होत्था। कल्लाकल्लिं पच्छिपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता रायगिहाओ णयराओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाइ, गहित्ता जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चयणं करेइ, करित्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, करित्ता तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - बालप्पभिइं - बचपन से ही, **भत्ते** - भक्त - अनन्य उपासक, **कल्लाकल्लिं** - प्रतिदिन (नित्य), **पच्छिपिडगाइं** - बांस की पिटारियाँ - छाबडियाँ, **अग्गाइं**- अग्र - सबसे बड़े, श्रेष्ठ जाति के, **वराइं** - सबसे श्रेष्ठ, **पुप्फाइं** - फूलों को, **पुप्फच्चयणं**- पुष्पार्चन, **जाणुपायपडिए** - दोनों घुटने नमा कर, **रायमग्गंसि** - राजमार्ग पर, **वित्तिं** - वृत्ति - आजीविका।

भावार्थ - वह अर्जुनमाली बाल्य-काल से ही उस मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था और प्रतिदिन बेंत की बनी हुई चंगेरी ले कर राजगृह नगर से बाहर अपने बगीचे में जाता था और फूलों को चुन-चुन कर इकट्ठा करता था। फिर उन फूलों में से अच्छे-अच्छे बढ़िया - श्रेष्ठ फूल ले कर मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा के आगे चढ़ाता था। इस प्रकार वह उसकी पूजा करता था और भूमि पर दोनों घुटने टेक कर प्रणाम करता था। इसके बाद राजमार्ग के किनारे बैठ कर फूल बेचता था। इस प्रकार आजीविका करता हुआ वह सुख पूर्वक जीवन बिताता था।

ललित गोष्ठी की स्वच्छंदता

तत्थ णं रायगिहे णयरे ललिया णामं गोट्ठी परिवसइ अड्ढा जाव अपरिभूया जं कयसुकया यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - ललिया - ललिता (ललित), **गोट्ठी** - गोष्ठी - मित्र मण्डली, **जं कयसुकया**- यत्कृत सुकृता - जो करते उसे अच्छा किया माना जाता।

भावार्थ - उस राजगृह नगर में 'ललित' (ललिता) नाम की एक गोष्ठी (मित्र-मंडली) रहती थी, जो अत्यन्त समृद्ध और अन्यकृत पराभवों से रहित थी। किसी समय राजा का कोई कार्य सम्पादित करने के कारण राजा ने उन पर प्रसन्न हो कर यह वचन दिया था कि - 'वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनी इच्छानुसार कार्य करने में स्वतंत्र हैं। राज्य की ओर से उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया जायगा।' अतः वह मित्र-मंडली मनमाने कार्य करने में स्वच्छन्द थी।

पति-पत्नी द्वारा पुष्प-चयन

तए णं रायगिहे णयरे अण्णया कयाइं पमोए घुट्ठे यावि होत्था। तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतरएहिं पुप्फेहिं कज्जमिति कट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमईए भारियाए सद्धिं पच्छिपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णयरं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ।

कठिन शब्दार्थ - **पमोए घुट्ठे** - उत्सव की घोषणा, **पभूयतरएहिं** - प्रभूततर - ज्यादा, **पच्चूसकालसमयंसि** - प्रातःकाल - सूर्योदय के पूर्व समय में, **पुप्फुच्चयं करेइ** - फूल चुने।

भावार्थ - एक दिन राजगृह नगर में एक उत्सव की घोषणा हुई। अर्जुन माली ने विचार किया कि कल उत्सव में अधिक फूलों की आवश्यकता होगी। इसलिए वह प्रातः काल उठा और बांस की चंगेरी (डलिया) ले कर अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ घर से निकला तथा नगर में होता हुआ बगीचे में पहुँचा और अपनी पत्नी के साथ फूलों को चुन कर एकत्रित करने लगा।

ललित गोष्ठी का दुष्ट चिंतन

(६५)

तए णं तीसे ललियाए गोट्ठिए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति। तएणं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ।

कठिन शब्दार्थ - **उवागया** - आकर, **अभिरममाणा** - क्रीड़ा करते हुए।

भावार्थ - उस समय पूर्वोक्त ललित-गोष्ठी के छह गोष्ठिक पुरुष, मुद्गरपाणि यक्ष के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यक्षायतन में आ कर क्रीड़ा कर रहे थे। उधर अर्जुन माली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ फूल संग्रह कर के उनमें से कुछ उत्तम फूल ले कर मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा के लिए यक्षायतन की ओर जा रहा था।

तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी-'एस खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडय-बंधणयं करित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए' त्ति कट्टु एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता कवाडंतरेसु णिलुक्कंति णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति।

कठिन शब्दार्थ - अण्णमण्णं - परस्पर, **अवओडय-बंधणयं** - अवओटक बंधन - औंधी मुश्कियों से बांध कर, **भुंजमाणाणं** - भोगते हुए, **कवाडंतरेसु** - किवाडों के पीछे, **णिलुक्कंति** - छिप जाते हैं, **णिच्चला** - निश्चल - हलनचलन रोक कर, **णिप्फंदा** - निस्पंद - सांस की आवाज में मंदता लाते हुए, **तुसिणीया** - मौन रख कर, **पच्छण्णा** - प्रच्छन्न - गुप्त रूप से।

भावार्थ - बन्धुमती भार्या के साथ आते हुए अर्जुन माली को देख कर उन छहों गोष्ठिक पुरुषों ने परस्पर विचार किया - 'हे मित्रो! यह अर्जुन माली अपनी पत्नी बंधुमती के साथ यहाँ आ रहा है। हम लोगों को उचित है कि इस अर्जुन माली को औंधी-मुश्कियों (दोनों हाथों को पीछ पीछे) से बलपूर्वक बाँध कर लुढ़का दें और फिर बन्धुमती के साथ खूब भोग भोगें।' इस प्रकार परस्पर विचार कर के वे छहों किवाड़ के पीछे छिप गये और सांस रोक कर निश्चल खड़े हो गये।

बंधुमती के साथ भोगोपभोग

तए णं अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गर-पाणिजक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करित्ता महरिहं पुप्फच्चणियं करेइ, करित्ता जाणुपायवडिए पणामं करेइ। तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गिण्हंति, गिण्हित्ता अवओडय-बंधणं करेंति, करित्ता बंधुमईए मालागारीए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

कठिन शब्दार्थ - **दवदवस्स** - शीघ्रतापूर्वक, **कवाडंतरेहिंतो** - किवाडों की ओट से।

भावार्थ - अर्जुन माली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में आया और भक्तिपूर्वक प्रफुल्लित नेत्रों से मुद्गरपाणि यक्ष की ओर देखा तथा प्रणाम किया। फिर फूल चढ़ा कर और दोनों घुटने टेक कर प्रणाम करने लगा। उसी समय उन छहों गोष्ठिक पुरुषों ने शीघ्र ही किवाड़ों के पीछे से निकल कर अर्जुन माली को पकड़ लिया और औंधी मुश्कें बांध कर उसे एक ओर लुढ़का दिया और उसके सामने ही उसकी पत्नी बन्धुमती के साथ विविध प्रकार से भोग भोगने लगे।

अर्जुनमाली का चिंतन

तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे - 'एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लिं जाव वित्तिं कप्पेमाणे विहरामि। तं जइ णं मोग्गरपाणिजक्खे इह सण्णिहिए होंति से णं किं ममं एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते? तं णत्थि णं मोग्गरपाणिजक्खे इह सण्णिहिए सुव्वत्तं तं एस कट्ठे।'

कठिन शब्दार्थ - **सण्णिहिए** - सन्निधि - यहां होते, **आवइं** - आपत्ति में, **पावेज्जमाणं**- पड़े हुए को, **पासंते** - देखते रहते, **सुव्वत्तं** - सुव्यक्त - सुस्पष्ट, **कट्ठे** - काष्ठ।

भावार्थ - यह देख कर अर्जुन माली के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ - 'मैं बाल्य-काल से ही अपने इष्टदेव मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिदिन पूजा करता आ रहा हूँ। पूजा करने के बाद ही आजीविका के लिए फूल बेच कर निर्वाह करता हूँ। यदि मुद्गरपाणि यक्ष यहाँ होता, तो क्या वह इस प्रकार की महा विपत्ति में पड़े हुए मुझे देख सकता था? इसलिए यह निश्चय होता है कि यहाँ मुद्गरपाणि यक्ष उपस्थित नहीं है। यह केवल काठ ही है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यक्षाविष्ट अर्जुनमाली का कोप

(६६)

तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गिण्हइ, गिण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ।

कठिन शब्दार्थ - तडतडस्स - तडतड, **बंधाइं** - बंधनों को, **छिंदइ** - तोड़ता है, **इत्थिसत्तमे** - सातवीं स्त्री, **घाएइ** - मार डालता है।

भावार्थ - तब मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन माली के मन में आये हुए विचार जान कर उसके शरीर में प्रवेश किया और उसके बन्धनों को तड़तड़ तोड़ डाला। उसके बाद मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट वह अर्जुन माली, एक हजार पल परिणाम (वर्तमान के तोल के साढ़े बासठ सेर अर्थात् एक मन साढ़े बाईस सेर) लोह के मुद्गर को ले कर बन्धुमती सहित उन छहों गोष्ठिक पुरुषों को मार डाला।

प्रतिदिन सात प्राणियों की हत्या

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स णयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं छ इत्थिसत्तमे पुरिसे (पाठान्तरे- इत्थिसत्तमे छ पुरिसे*)घाएमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - जक्खेणं - यक्ष से, **अण्णाइट्ठे** - आविष्ट (वशीभूत), **परिपेरंतेणं**- चारों ओर।

भावार्थ - इस प्रकार इन सातों को मार कर मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट वह अर्जुन माली, राजगृह नगर के बाहर प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री, इस प्रकार सात मनुष्यों को मारता हुआ घूमने लगा।

---

* यह पाठ सोलहवीं शताब्दी की एक हस्तलिखित प्रति में है। यह प्रति जैनाचार्य पू० श्री हस्तीमलजी म. सा. के पास देखी गयी थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रेणिक की उद्घोषणा

(६७)

तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ - एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे बहिया छ इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ।

भावार्थ - उस समय राजगृह नगर के राजमार्ग आदि सभी स्थलों में बहुत-से व्यक्ति एक-दूसरे से इस प्रकार कहने लगे, विशेष रूप से चर्चा करने लगे, व्याख्या करने लगे, समझाने लगे कि - 'हे देवानुप्रिय! मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट हो कर अर्जुन माली राजगृह नगर के बाहर एक स्त्री और छह पुरुष, इस प्रकार सात व्यक्तियों को प्रतिदिन मारता है।'

विवेचन - शंका - अर्जुनमाली के विरुद्ध राजा ने सैन्य बल का प्रयोग किया या मात्र घोषणा ही करवाई?

इसका तर्कसंगत समाधान - आगमों के अक्षर तो सीमित 'सूत्र' रूप होते हैं। किंतु उनके अर्थ (गम) अनन्त होते हैं। उदाहरण के लिए - मात्र पांच पदों का सूत्र 'नमस्कार मंत्र' में संपूर्ण चौदह पूर्वों का ज्ञान गर्भित है। कहा भी है -

'अनंतर भाव भेद थी भरीली भली,
अनन्त, अनन्त नय निक्षेप व्याख्यानी है'।

तथा **'सव्व णईणं जा होज्जा बालुया, सव्व उदहीण जा होज्जं सलिलं। एत्तो वि अणंतगुणो, अण्यो एगस्स सुत्तस्स'** इत्यादि

इसलिए अर्जुनमाली के विषय में जो वर्णन आता है कि 'राजा ने नगर से बाहर न जाने की घोषणा करवा दी', उससे यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि - जब सैन्य बल, बुद्धि बल तथा साम, दाम, दण्ड भेद की नीति आदि से किये गये सारे प्रयत्न भी विफल हो गये तब राजा ने अन्य कोई उपाय न देख ऐसी घोषणा प्रजा की रक्षार्थ विवशता से करवा दी।

यह आगमशैली रही है कि - 'आगमकार एक-एक परिस्थिति का पूरा ऊहापोह वहीं गुंथित कर जो सार रूप अंतिम निष्कर्ष होता है, उसे ही उल्लेखित करते हैं, जिससे आगम 'सूत्र' रूप रहे, उसका कलेवर अनावश्यक न बढ़े।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैसे वर्तमान में उपलब्ध अंतगड सूत्र बहुत संक्षिप्त रह गया है। इस सूत्र में अनेक पद विलुप्त हो गए हैं। अंतगड सूत्र में कुल २३०४००० पद होने का उल्लेख मिलता है। (देखें- नन्दी सूत्र - पूज्य घासीलालजी म. सा. द्वारा संपादित) जबकि अभी उपलब्ध अंतगडसूत्र में मात्र ९०० पद ही हैं। इससे यह भी संभावित है कि - सैन्य बल प्रयोग आदि का संबंधित वर्णन विलुप्त सूत्रों में रहा हो - जो बाद में काल आदि प्रभाव से विच्छेद हो गए।

तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी - 'एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ। तं माणं तुब्भे केइ तणस्स वा कट्ठस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइं णिगच्छउ। मा णं तस्स सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ' त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह, घोसित्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

कठिन शब्दार्थ - **तणस्स** - तृण के, **कट्ठस्स** - काठ के, **पाणियस्स** - पानी के, **पुप्फफलाणं** - फल-फूल के, **वावत्ती** - विनाश।

भावार्थ - यह समाचार सुन कर राजा श्रेणिक ने अपने सेवक-पुरुषों को बुलाया और इस प्रकार कहा - "हे देवानुप्रिय! राजगृह नगर के बाहर अर्जुन माली प्रतिदिन एक स्त्री और छह पुरुष - इस प्रकार सात व्यक्तियों को मारता है। इसलिए तुम सारे नगर में मेरी आज्ञा इस प्रकार घोषित करो कि - 'यदि तुम लोगों को इच्छा जीवित रहने की हो, तो तुम लोग घास के लिए, लकड़ी के लिए, पानी के लिए और फल-फूल के लिए राजगृह नगर के बाहर मत निकलो। यदि तुम लोग कहीं बाहर निकले, तो ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय।' हे देवानुप्रियो! इस प्रकार दो-तीन बार घोषणा कर के मुझे सूचित करो।"

इस प्रकार राजा की आज्ञा पा कर सेवक-पुरुषों ने राजगृह नगर में घूम-घूम कर उपरोक्त घोषणा की। घोषणा कर के राजा को सूचित कर दिया।

विवेचन - सामाजिक जीवन में अनुचित व्यवहार के लिए कतई अवकाश नहीं है। जब भी भावुकता में आ कर श्रेणिक सरीखे विवेकी राजा भी ललिता-गोष्ठी को मनमाने व्यवहार की छूट देते हैं, तो उसके परम्पर परिणाम कहाँ तक पहुँचते हैं, यह उपरोक्त कथानक में आया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री दशाश्रुतस्कन्ध दसवीं दशा में साध्वियों द्वारा पुरुषपना पाने के लिए निदान किए जाने का वर्णन मिलता है। वे निदान करती है -

'दुक्खं खलु इत्थित्तणए, दुस्संचराइं गामंतराइं जाव सन्निवेसंतराइं, से जहा नामए - अंबपेसियाइ वा माउलुंगपेसियाइ वा अंबाडगपेसियाइं वा मंसपेसियाइ वा उच्छुखंडियाइ वा संबलिफलियाइ वा बहुजणस्स आसायणिज्जा पत्थणिज्जा पीहणिज्जा अभिलसणिज्जा एवामेव इत्थियावि बहुजणस्स आसायणिज्जा जाव अभिलसणिज्जा, तं दुक्खं खलु इत्थित्तं पुमत्तणयं साहु।'

अर्थ - स्त्रीपने में तो दुःख ही है, वे कहीं भी अकेली दूसरे गांव आदि नहीं जा पाती हैं। आम की फांक, तरबूजें की फांक, अंबाडग की फांक, सांठे की गंडेरी और सिंबलि की फली आदि स्वादिष्ट वस्तुएं जैसे देखते ही बहुत-से लोगों द्वारा स्वाद लेने योग्य, चाहने योग्य, प्राप्त करने योग्य व अभिलाषा योग्य होती है, वैसे ही स्त्रियाँ भी बहुत लोगों द्वारा चाहने योग्य यावत् अभिलाषा योग्य होती है। अतः स्त्रीपने में दुःख है, सुख तो पुरुषपने में है।

बंधुमती यदि अर्जुन के साथ पुष्प संचयन के लिए नहीं जाती, तो गोठीले पुरुषों को वैसे चिन्तन का निमित्त नहीं मिलता। बंधुमती को देख कर मित्र-मंडली के सदस्यों की नीयत बुरी हो गई।

गोठीले पुरुष आढ्य यावत् अपराभूत थे। राजा श्रेणिक की उन पर मेहरबानी थी। उनके अन्तःपुर में सुन्दर पत्नियाँ नहीं होने का कोई कारण नहीं है। वे चाहते तो और भी विवाह कर सकते थे। उन्होंने बंधुमती पर नीयत बिगाड़ी वह भी एक धार्मिक स्थान पर तथा पति के सामने, यह जघन्य काण्ड कितना बीभत्स हुआ?

अपराधी अपने कृत्यों को अपराध नहीं मानता। वे छहों पुरुष ऐसा करने को उचित एवं श्रेयस्कर मानते हैं, एक दूसरे की सलाह पूर्वक षड्यंत्र रचते हैं।

'परायी थाली में घी ज्यादा दिखता है।' परस्त्रीगमन के मूल में यह लोकोक्ति रही हुई है। पर इसका परिणाम क्या हुआ? मुद्गर के द्वारा किस निर्दयता से उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया? संभावित परिणामों से अपराध करने वाला अनजान नहीं होता है, उसकी अन्तरात्मा उसे बार-बार रोकती है - टोकती है, आवाज देती है, पर सुना अनसुना करके अपराधी अपराध करता रहता है।

चूंकि अपराधी समाज में रहता है, अतः उसके वैयक्तिक व्यवहार से समाज भी अप्रभावित नहीं रह पाता। गोठीले पुरुष तो मारे ही गए, पर इस निमित्त से सैकड़ों निरपराध स्त्री-पुरुषों की हत्याएं हो गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा श्रेणिक उन दैविक-शक्ति का कुछ भी प्रतिकार नहीं कर सके। घोषणा करवाने से ज्यादा वे कुछ करने की स्थिति में नहीं रहे थे।

दूसरे स्थानों से राजगृह आने वाले, राजगृह से भूले-भटके जाने वाले सात मनुष्य मुद्गरपाणि को मिल ही जाते थे।

मान प्रशंसा के भूखे मुद्गरपाणि यक्ष को अर्जुन ने आह्वान् किया, तो वह उन सात जीवों को मार कर ही तृप्त नहीं हुआ। मेरी धाक जम जानी चाहिए, आइंदा कोई मेरी प्रतिमा को केवल काष्ट समझ कर निर्भक्ति नहीं हो जाय, अतः मुझे अपना सिक्का जमाना है, ऐसे ही कुछ मनोभावों से यक्ष अर्जुन की देह में जमा रहा एवं राजगृह को उद्वेलित करता रहा।

'इस विशाल नर-वध के लिए कौन कितने पाप का भागी बना?' यह प्रश्न बड़ा ही जटिल एवं सूक्ष्म है। मनमाने व्यवहार की छूट राजा ने भले ही दे दी थी, पर जनता ने गोठीले पुरुषों का निग्रह नहीं किया, अतः अमुक अंशों में राजगृह की जनता भी इस क्रिया में भागीदार बनती है। अर्जुन एवं यक्ष दोनों में से अधिक पाप का बन्ध किसने किया? इसका निश्चय करने के वास्तविक साधन तो हमारे पास नहीं हैं।

अर्जुन ने देव को आह्वान् करके बुलाया था, देव अर्जुन के शरीर से सारे पाप कर रहा था, पर साथ ही बुलाने के बाद अर्जुन स्वतंत्र नहीं था। पूजा, भक्ति का भूखा देव व्यर्थ ही मनुष्यों को मार-मार कर अपना आतंक जमाने की चेष्टा कर रहा था।

कुछ भी हो, पर-स्त्री के रसिकों की यह दुर्गति बड़ी दयनीय एवं शिक्षाप्रद है। लोग रास्ते चलते पराई स्त्रियों की ताक-झांक करते हैं, उसके रूप-सौन्दर्य को देख कर मन में दुर्भाव भी लाते हैं, पर उनका यह चिन्तन व्यर्थ है, क्योंकि उन्हें वह प्राप्त नहीं होगी। अगले कुछ क्षणों में आँखों से ओझल हो जायेगी, जिसे शायद ही कभी वापिस देखने का काम पड़े। यह अनर्थदण्ड कितना भयंकर है? पूज्य श्री जयमलजी म. सा. फरमा गए हैं -

'कुलवंती जाय चली, कोई करे ज माठी चाय रे।
विगर मिल्यां बिन भोगव्यां, मरने दुर्गति जाय रे॥
जीवड़ला दुलहो मानव भव कांई हारे॥'

ठोकर लगने वाले को दर्द होता है, समझदार अपने को उस ठोकर के स्थान पर संभाल लेते हैं। पराई पूनियों से कातना सीखने को मिल जाय तो भी गनीमत है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुदर्शन श्रमणोपासक

(६८)

तत्थ णं रायगिहे णयरे सुदंसणे णामं सेट्ठी परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए। तएणं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था। अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - अभिगयजीवाजीवे - जीवादि तत्त्वों का ज्ञाता।

भावार्थ - उस राजगृह नगर में सुदर्शन नाम के एक सेठ रहते थे। वे ऋद्धि सम्पन्न और अपराभूत थे। वे श्रमणोपासक थे तथा जीवाजीवादि नव तत्त्वों के ज्ञाता थे।

विवेचन - 'अभिगय जीवाजीवे जाव विहरइ' में संकुचित पूरा पाठ श्री भगवती सूत्र श० २ उ० ५ में इस प्रकार है -

उवलद्धपुण्णपावा

- पुण्य किसमें होता है और पाप किसमें होता है, इसका उन्हें ज्ञान था।

आसव-संवर-णिज्जर-किरियाहिकरण-बंधमोक्ख-कुसला

- आस्रव - कर्मों के आने के कारण, संवर - आस्रवों का निरोध, निर्जरा - कर्म का देशतः क्षय, क्रिया - कार्य करने की पद्धति, अधिकरण - अशुभ मन, वचन, काया आदि बंध - आत्मा के साथ कर्म संबंध होना, मोक्ष - कर्मों का सम्पूर्ण क्षय आदि विविध तत्त्वों के ज्ञाता थे।

असहेज्जदेवासुर-णाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरूल-गंधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं णिग्गंथाओ पावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा

- देव, असुर, नाग, सुवर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरूड़, गंधर्व, महोरग आदि विविध देवों से वे सहायता नहीं चाहते थे अथवा ये सभी देव गण उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते थे।

णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया णिव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ता

- निर्ग्रन्थ-प्रवचन में उन्हें किंचित् मात्र भी कोई शंका नहीं थी, प्रतिपूर्ण - अनुत्तर धर्म पा कर अब वे किसी अन्य धर्म की आकांक्षा वाले नहीं थे। करणी के फल में लेश मात्र भी संदेह नहीं था, धर्म को उन्होंने उपलब्ध कर अर्थ जाना था, धर्मतत्त्व का ग्रहण किया था, पृच्छा करके,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विनिश्चय करके धारणाओं को संशय रहित कर लिया था, उनकी अस्थि एवं अस्थि की मिंजा तक धर्म का प्रशस्त प्रेम - अनुराग रंजित था, उनकी नस-नस में जैन धर्म रमा हुआ था।

अयमाउसो! णिग्गंथे पावयणे अयं अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे

- आपस में मिलने पर उनकी अभिवादन विधि निम्न शब्दों से होती थी - 'हे देवानुप्रियो! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही अर्थ है, यही परमार्थ है, शेष अनर्थ है।'

उस्सियफलिहा अवंगुयदुवारा चियत्तंतेउरघरप्पवेसा

- दान देने के लिए उनके दरवाजे हमेशा खुले रहते थे, किसी के अन्तःपुर में जाने पर भी उनके प्रति अविश्वास नहीं था, ऐसे दृढ़ धर्मी थे।

बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे णिग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं पीढफलगसेज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणा अहापडिग्गहएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

- बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा आदि तिथियों को प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् पालन आदि धार्मिक अनुष्ठान करते थे। साधु-साध्वियों को अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, पीढ़, फलक शय्या, संस्तारक, औषध, भेषज आदि का दान करते हुए अपनी शक्ति मुजब यथागृहीत तप कर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

सुदर्शन श्रमणोपासक भी उपरोक्त गुणों वाले श्रावक-रत्न थे।

भगवान् महावीर स्वामी का राजगृह पदार्पण

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव विहरइ। तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए?

कठिन शब्दार्थ - **महापहेसु** - महापथों पर, **एवं** - इस प्रकार, **आइक्खइ** - कहने लगे, **किमंग** - क्या कहना, **विउलस्स** - विपुल, **अट्ठस्स** - अर्थ के, **गहणयाए** - ग्रहण करने से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। उनके पधारने का समाचार जान कर राजगृह नगर के राज-मार्ग आदि स्थानों में बहुत-से मनुष्य एक-दूसरे से कहने लगे - 'हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहाँ पधारे हैं, जिनके नाम-गोत्र श्रवण से भी महाफल होता है, तो दर्शन करने, वाणी सुनने तथा उनके द्वारा प्ररूपित विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता है, उसका तो कहना ही क्या? अर्थात् वह तो अवर्णनीय है।'

सुदर्शन सेठ की शुभ भावना

तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयं अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे - एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसण्हं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी - "एवं खलु अम्मयाओ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि जाव पज्जुवासामि।"

भावार्थ - बहुत से मनुष्यों के मुख से भगवान् के पधारने का समाचार सुन कर सुदर्शन सेठ के हृदय में इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ - 'श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशीलक उद्यान में पधारे हैं। इसलिए मुझे उचित है कि मैं भगवान् को वन्दन करने जाऊँ।' इस प्रकार विचार कर अपने माता-पिता के पास आये और हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोले - 'हे माता-पिता! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहाँ पधारे हैं। इसलिए मैं उन्हें वन्दन नमस्कार करने के लिए जाना चाहता हूँ।'

सुदर्शन और माता-पिता का संवाद

तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी - "एवं खलु पुत्ता! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ, तं माणं तुमं पुत्ता! समणं भगवं महावीरं वंदए णिग्गच्छाहि। मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ। तुमं णं इह गए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सुदर्शन सेठ के निवेदन पर माता-पिता ने कहा - 'हे पुत्र! अर्जुन माली राजगृह नगर के बाहर मनुष्यों को मारता हुआ घूम रहा है। इसलिए हे पुत्र! तुम भगवान् को वन्दना करने के लिए नगर से बाहर मत जाओ। वहाँ जाने से न-जाने तुम्हारे शरीर पर कोई विपत्ति आ जाय। इसलिए तुम यहीं से भगवान् को वन्दन-नमस्कार कर लो।'

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी - "किण्णं अहं अम्मयाओ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं इह-पत्तं इह-समोसढं इह-गए चेव वंदिस्सामि णमंसिस्सामि? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि।"

कठिन शब्दार्थ - **इहं** - यहा, **आगयं** - पधारे हैं, **पत्तं** - प्राप्त - उपलब्ध, **समोसढं**- समवसृत, **तुब्भेहिं** - आप की, **अब्भणुण्णाए** - आज्ञा मिलने पर।

भावार्थ - माता-पिता के वचन सुन कर सुदर्शन सेठ इस प्रकार बोले - 'हे माता-पिता! जब श्रमण-भगवान् यहां पधारे हैं, विराजित हैं और यहाँ समवसृत हैं, तो भी मैं उनको यहीं से वंदन-नमस्कार करूँ और उनकी सेवा में उपस्थित न होऊँ, यह कैसे हो सकता है? मैं भगवान् के दर्शन करने के लिए जाना चाहता हूँ। इसलिए आप मुझे आज्ञा दीजिये जिससे मैं वहाँ जा कर भगवान् को वन्दन-नमस्कार यावत् पर्युपासना करूँ।'

विवेचन - जब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अपने माता पिता से गुणशील उद्यान में जाकर भगवान् की पर्युपासना करने हेतु आज्ञा चाही तो माता पिता ने कहा - 'हे पुत्र! तुम जानते ही हो कि मार्ग में मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट अर्जुनमाली रोज छह पुरुष और एक स्त्री - इस प्रकार सात जीवों की घात करता हुआ रह रहा है। अतः तुम भगवान् महावीर स्वामी की चरण वंदना करने के लिये मत जाओ। इसमें जीवन की जोखिम है, नहीं जाने से शरीर को विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ेगा। प्रभुजी तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं वे यहीं से तुम्हारा प्रणिपात स्वीकार कर लेंगे। अतः तुम यहीं से वंदना-नमस्कार कर लो।'

माता पिता की बात सुनकर सुदर्शन सेठ ने कहा - 'भगवान् यहां पधारे हैं और मैं कायर बन कर यहीं से वंदना-नमस्कार कर लूं, यह नहीं हो सकता? मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि भगवान् केवली हैं वे सब कुछ जानते देखते हैं अतः मेरा वंदन वे स्वीकार करेंगे परन्तु मैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो केवली नहीं हूँ। अतः जब मैं उन्हें नहीं देख रहा हूं और गुणशील उद्यान जाकर मैं प्रभु को देखने की स्थिति में हूं तो क्यों न वहां जा कर वंदना नमस्कार करूं? रही बात जीवन और मरण की, सो ज्ञानियों ने अपने धवल विमल ज्ञान में जितना आयुष्य देखा है, उसे तो अन्यथा करने की शक्ति किसी में है ही नहीं। आप तो निर्भय हो कर अनुमति प्रदान कीजिये।'

बिना आज्ञा जाने में विनय धर्म का उल्लंघन होता है अतः आपकी आज्ञा होने पर ही मैं जाऊंगा। भगवान् को भावपूर्वक वंदना नमस्कार करूंगा। मन को एकाग्र करके, वचनों से संयत रह कर, काया को साधकर मानसिक, वाचिक, कायिक त्रिविध पर्युपासना करूंगा।

माता-पिता की स्वीकृति

तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे णो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं जाव परूवेत्तए। तए णं से अम्मापियरो ताहे अकामया चेव सुदंसणं सेट्ठिं एवं वयासी - "अहासुहं देवाणुप्पिया!" तएणं से सुदंसणे सेट्ठिं अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहारचारेणं रायगिहं णयरं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

कठिन शब्दार्थ - अकामया - नहीं चाहते हुए, **पायविहारचारेणं** - पैदल चल कर ही, **सुद्धप्पावेसाइं** - शुद्ध वस्त्र पहने।

भावार्थ - सुदर्शन सेठ को उसके माता-पिता अनेक प्रकार की युक्तियों से भी नहीं समझा सके, तो उन्होंने अनिच्छा पूर्वक इस प्रकार कहा - 'हे पुत्र! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो।' माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर सुदर्शन सेठ ने स्नान किया और शुद्ध वस्त्र धारण किये। इसके बाद वे भगवान् के दर्शन करने के लिए अपने घर से निकले और पैदल ही राजगृह नगर के मध्य होते हुए मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के न अति दूर न अति निकट हो कर गुणशीलक उद्यान में जाने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुदर्शन की निर्भीकता

(६९)

तएणं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - सुदर्शन श्रमणोंपासक को जाते हुए देख कर मुद्गरपाणि यक्ष कुपित हुआ और एक हजार पल का लोहमय मुद्गर घुमाता हुआ सुदर्शन सेठ की ओर जाने लगा।

सागारी अनशन ग्रहण

तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयल एवं वयासी - "णमोत्थुणं अरहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स पुव्विं च णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए मुसावाए, थूलए अदिण्णादाणए, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए सव्वं मुसावायं सव्वं अदिण्णादाणं सव्वं मेहुणं सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए। अहणं एत्तो उवसग्गाओ ण मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अभीए** - भयभीत नहीं हुए, **अतत्थे** - त्रास को प्राप्त नहीं हुए, **अणुव्विग्गे** - उद्विग्न नहीं हुए, **अक्खुभिए** - क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए, **अचलिए** - अचलित - मन चलायमान नहीं हुआ, **असंभंते** - संभ्रान्त नहीं हुआ - पूर्व निर्णय पर पश्चात्ताप नहीं किया, योगों को नियंत्रण में रखा, **वत्थंतेणं** - कपड़े के छोर से, **भूमिं** - भूमि को, **पमज्जइ** - प्रमार्जित किया, **थूलए** - स्थूल, **सव्वं** - समस्त, **एत्तो** - इस, **उवसग्गाओ**- उपसर्ग से, **मुच्चिस्सामि** - मुक्त हो जाऊंगा, **कप्पइ** - कल्पता है, **पारेत्तए** - पारना, **सागारं** - सागार - आगार सहित।

भावार्थ - मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आता हुआ देख कर सुदर्शन सेठ जरा भी भय, त्रास, उद्वेग और क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए। उनका हृदय जरा भी विचलित और संभ्रान्त नहीं हुआ। उन्होंने निर्भय हो कर अपने वस्त्र के अंचल से भूमि का प्रमार्जन किया और मुंह पर उत्तरासंग धारण किया, फिर पूर्व दिशा की ओर मुँह कर के बाँए घुटने को ऊँचा किया और दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि पुट रखा। इसके बाद इस प्रकार बोले - 'नमस्कार हो उन अरहन्तों को जो मोक्ष में पधार गये हैं और नमस्कार हो श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी को जो मोक्ष में पधारने वाले हैं। मैंने पहले भगवान् महावीर स्वामी से स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद और स्थूल अदत्तादान का त्याग किया। स्वदार-संतोष और इच्छा परिमाण (स्थूल परिग्रह त्याग) अणुव्रतों को धारण किया था। अब इस समय उन्हीं भगवान् महावीर स्वामी की साक्षी से यावज्जीवन प्राणातिपात का सर्वथा त्याग करता हूँ। इसी प्रकार मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह का यावज्जीवन के लिए त्याग करता हूँ और क्रोध, मान, माया तथा लोभ यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पापों का यावज्जीवन के लिए सर्वथा त्याग करता हूँ। अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का भी यावज्जीवन त्याग करता हूँ।'

'यदि मैं इस उपसर्ग से बच जाऊँ, तो त्याग पार लूँगा, अन्यथा उपरोक्त त्याग यावज्जीवन के लिए है' - ऐसा निश्चय कर के सुदर्शन सेठ ने सागारी अनशन धारण कर लिया।

तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासं तेयसा समभिपडित्तए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - तेयसा - तेज से, **समभिपडित्तए** - अभिभूत नहीं कर सका अर्थात् उसे कष्ट नहीं पहुंचा सका।

भावार्थ - वह मुद्गरपाणि यक्ष एक हजार पल के बने हुए उस लोह के मुद्गर को घुमाता हुआ सुदर्शन श्रमणोपासक के निकट आया। किन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से अभिभूत नहीं कर सका अर्थात् उसे किसी प्रकार से कष्ट नहीं पहुँचा सका।

विवेचन - चार तोले का एक पल होता है। ऐसे १००० पल का एक मुद्गर था उसे धारण करने वाले यक्ष की शक्ति निर्भिक सुदर्शन श्रावक के तेज से फीकी पड़ गई। यथा - 'जोधपुर के किले को नष्ट करने के लिए जयपुर नरेश ने धूलि का ढिंग कर उस पर तोपे रखी दाग छोड़ने वाली थी कि एक अन्धे-गोलन्दाज ने पूर्वबद्ध निशाने के अनुसार गोला फेंका व तोपें नष्ट हो गई तथा सारी सेना नष्ट हो गई।'

यक्ष की हार

तए णं से मोग्गरपाणी-जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे णो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए ताहे सुदंसणस्स समणोवासयं पुरओ सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं णिरिक्खिइ, णिरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

कठिन शब्दार्थ - सव्वओ समंताओ - सब तरफ से चारों ओर, **परिघोलेमाणे** - घूमते हुए, **पुरओ** - सामने, **सपक्खिं सपडिदिसिं** - बिल्कुल सीध में - सामने, **ठिच्चा** - खड़े रहकर, **अणिमिसाए दिट्ठीए** - अनिमेष दृष्टि से, **सुचिरं** - बहुत देर तक, **णिरिक्खिइ**- देखता रहा, **विप्पजहइ** - छोड़ देता है।

भावार्थ - वह मुद्गरपाणि यक्ष, सुदर्शन श्रमणोपासक के चारों ओर घूमता हुआ जब किसी भी प्रकार से उनके ऊपर अपना बल नहीं चला सका, तो सुदर्शन श्रमणोपासक के सामने आ कर खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि से उन्हें बहुत देर तक देखता रहा। इसके बाद यक्ष ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्जुन माली का शरीर छोड़ दिया और हजार पल के लोहमय मुद्गर को ले कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सेठ सुदर्शन की धर्मश्रद्धा एवं दृढ़ता का फल दर्शाया गया है। सेठ सुदर्शन को देख कर अर्जुन माली ने अपना मुद्गर उछाला तो सही पर वह आकाश में अधर ही रह गया। सुदर्शन की आत्म शक्ति की तेजस्विता के कारण वह किसी भी प्रकार से प्रत्याघात नहीं कर पाया। सूत्रकार ने इस हेतु **'तेयसा समभिपडित्तए'** पद का प्रयोग किया है। सुदर्शन श्रमणोपासक की आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण मुद्गरपाणि यक्ष उस पर आघात नहीं कर पाया और वह स्वयं तेजोविहीन हो गया। सुदर्शन के असाधारण तेज से पराभूत मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में से भाग गया।

उपसर्ग मुक्त

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे धसत्ति धरणियलंसि सव्वंगेहिं णिवडिए।

तए णं से सुदंसणे समणोवासए णिरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ।

कठिन शब्दार्थ - **विप्पमुक्के** - मुक्त होने पर, **धरणियलंसि** - पृथ्वी तल पर, **सव्वंगेहिं** - सर्वांग, **णिवडिए** - गिर पड़ा, **णिरुवसग्गमिति कट्टु** - उपसर्ग रहित हुआ जान कर, **पडिमं** - प्रतिज्ञा को, **पारेइ** - पाला।

भावार्थ - अर्जुन माली उस मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही 'धस' इस प्रकार के शब्द के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सुदर्शन सेठ ने अपने आपको उपसर्ग-रहित जान कर अपनी प्रतिज्ञा को पारी (और उस पड़े हुए अर्जुन माली को सचेष्ट करने के लिए प्रयत्न करने लगे)।

विवेचन - लोकमत हमेशा विभाजित रहा है। सुदर्शन श्रावक को इस परिस्थिति में प्रभु दर्शन के लिए जाते देख कर दो मुँही दुनियाँ दो प्रकार से बोल रही थी। धर्मी लोग कह रहे थे- 'धन्य है सुदर्शन श्रावक के धर्म-प्रेम को! इस जानलेवा उपसर्ग से भी इसे डर नहीं है। यह अवश्य ही हमारे लिए भी प्रभु दर्शन के मंगलमय द्वार खोलेगा।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मद्वेषी अपना राग अलग ही आलाप रहे थे - 'देखोजी! यह धर्म के धोरी अकेले ही हैं जो अभी मुद्गरपाणि के हाथ की चटनी बन जाएंगे। भगवान् की भक्ति तो जैसे ये ही करते हैं।'

अस्तु! सुदर्शन रास्ते-रास्ते निर्भय होकर चल रहे थे। भय से रास्ता छोड़ना या पलायन करना ठीक नहीं है। वैसे ही 'काट कुत्ते! मैं दवा जानता हूँ।' या 'आ बैल! मुझे मार' वाली बात भी उनमें नहीं थी कि मुद्गरपाणि को अपनी ओर से चलाकर ललकारते कि मैं भगवान् महावीर का भक्त हूँ, तू मेरे सामने तो आ! मैं देखता हूँ तेरे मुद्गर में कितनी ताकत है?

सुदर्शन को देख कर मुद्गरपाणि यक्ष को क्रोध आया, वह इसलिए कि आगे तो जो भी उसके चंगुल में आये थे वे बेचारे रोते-कलपते, चीखते-चिल्लाते, प्राणों की भीख मांगते थे और वह यक्ष उन्हें बेरहमी से परलोक पहुँचा देता था, पर आज यह कोई अलग ही फरिश्ता सामने आया है। न तो डर है, न मरने की छाया ही।

'मैं अभी देख लेता हूँ।' इस भावना से वह मुद्गर उठाता है पर उठे हुए हाथ नीचे नहीं आ पाते। इधर से जोर नहीं चलता तो पीछे से जमाऊँ? पर यह क्या? मुद्गर का वार ही नहीं हो पाता। सुदर्शन के शांत सौम्य मुख पर मुद्गरपाणि की दृष्टि केन्द्रित हो गई। उसने जीवन में पहली बार ऐसा निर्भय व्यक्ति देखा था, जो मौत से भी नहीं डरता। अप्रमत्त सुदर्शन में ऐसी दिव्य शक्ति का आविर्भाव हो गया था कि यक्ष का बल नाकाम हो गया।

गजसुकुमाल जगजगते खीरे सिर पर डाले जाते हुए देख कर भी भयभीत नहीं बने, सुदर्शन ने मुद्गरपाणि यक्ष का भय नहीं माना। जैनों में ऐसे-ऐसे जुझारों का जमघट रहा है। अतः जैन इतिहास से अनभिज्ञ ही जैनधर्म को कायरों का धर्म कह सकता है।

सुदर्शनजी ने अपनी शक्ति तोल कर ही माता-पिता से आज्ञा मांगी थी। वे जानते थे कि मुद्गरपाणि यक्ष का उपसर्ग अवश्यंभावी है। उपसर्ग आते देख कर उन्होंने व्रत प्रतिलेखन किया। उन्होंने आर्त्त होकर चीख पुकार नहीं मचाई कि -

'हे भगवन्! मैं आपके दर्शन को आ रहा था कि बीच में क्या मुसीबत आ गई? आपकी सेवा में तो अनेक देव आते रहते हैं, किसी न किसी को जल्दी भेजिये। मैं मारा जाऊँगा, तो आपकी भी बदनामी होगी। हाय! माता-पिता ने पहले ही मना किया था, मैंने उनकी बात नहीं मानी। अब तो मारे गए, कैसे बचेंगे?'

सुदर्शन श्रमणोपासक की निर्भयता जैन इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्जुनमाली की भावना

(७०)

तए णं से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठित्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी - "तुब्भे णं देवाणुप्पिया! के? कहिं वा संपत्थिया?"

कठिन शब्दार्थ - मुहुत्तंतरेणं - मुहूर्त्तभर (कुछ समय) बाद, **आसत्थे** - आश्वस्त, **संपत्थिया** - जा रहे हो।

भावार्थ - वह अर्जुन माली कुछ समय के बाद स्वस्थ हो कर खड़ा हुआ और सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला - 'हे देवानुप्रिय! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं।'

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी - "एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सुदंसणे णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदिउं संपत्थिए।"

कठिन शब्दार्थ - **अभिगयजीवाजीवे** - जीवाजीवादि का ज्ञाता, **वंदिउं** - वंदना करने, **संपत्थिए** - जा रहा हूं।

भावार्थ - यह सुन कर सुदर्शन श्रमणोपासक ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! मैं जीवाजीवादि नौ तत्त्वों का ज्ञाता सुदर्शन नामक श्रमणोपासक हूँ और गुणशीलक उद्यान में पधारे हुए श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करने जा रहा हूँ।'

विवेचन - पांच महीने तेरह दिन तक देव प्रभाव से काया चल रही थी, आहार पानी का काम ही नहीं था। देव मुक्ति के बाद बेहोशी की अवस्था थोड़ी देर रही फिर चेतना का संचार हुआ तब अर्जुनमाली ने सुदर्शन श्रमणोपासक से परिचय और प्रयोजन की जानकारी चाही।

भगवान् की पर्युपासना और दीक्षा

(७१)

तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी - "तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इच्छामि णं देवाणुप्पिया! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए।'' ''अहासुहं देवाणुप्पिया!॥''

भावार्थ - यह सुन कर अर्जुन माली, सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला - 'हे देवानुप्रिय! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करने यावत् पर्युपासना करने के लिए चलना चाहता हूँ।' सुदर्शन श्रमणोपासक ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो।'

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तएणं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य धम्मकहा सुदंसणे पडिगए।

भावार्थ - इसके बाद सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुन माली के साथ गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिण पूर्वक वन्दन-नमस्कार कर सेवा करने लगे। भगवान् महावीर स्वामी ने उन दोनों को धर्म-कथा सुनाई। धर्म-कथा सुन कर सुदर्शन श्रमणोपासक अपने घर चले गये।

तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ एवं वयासी - ''सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि।'' अहासुहं देवाणुप्पिया! तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जाव अणगारे जाए जाव विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - णिसम्म - धारण कर, **सद्दहामि** - श्रद्धा करता हूं, **णिग्गंथं पावयणं**- निर्ग्रंथ प्रवचन, **अवक्कमइ** - जाता है, **पंचमुट्ठियं** - पंचमौष्टिक, **लोयं** - लोच।

भावार्थ - इसके बाद अर्जुन माली श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी से धर्म-कथा सुन कर और हृदय में धारण कर के हृष्ट-तुष्ट-हृदय से इस प्रकार बोला - 'हे भगवन्! आप द्वारा कही हुई धर्म-कथा सुन कर मुझे उस पर श्रद्धा हुई है। मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचनों पर श्रद्धा करता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए हे भगवन्! मैं आपसे दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ।' भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो।' भगवान् के ये वचन सुन कर अर्जुन माली ईशान कोण में गये और स्वयमेव पंचमुष्ठि लोच कर के अनगार बन गये।

विवेचन - अर्जुन को यक्ष-निष्कासन से बहुत पीड़ा का अनुभव हुआ। इतने दिन तो शरीर देव-प्रभाव के कारण चल रहा था, पर भोजन किए महीनों हो गए थे, अतः कमजोरी भी विशेष अनुभव होने लगी। अर्जुन ने सुदर्शन से जो संवाद किया, उससे सुदर्शनजी का निरभिमानता का गुण उजागर होता है। दूसरा कोई होता तो कह बैठता - 'नालायक कहीं का! मुझे मारने आया और अब मेरा परिचय पूछता है? सैकड़ों पुरुषों और स्त्रियों को मौत के घाट उतारते तुझे शर्म नहीं आई? तू भगवान् के दरबार में मुंह दिखाने लायक नहीं है। तुझे साथ ले जाना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है।'

सुदर्शन का राजगृह से निष्क्रमण लोग अपनी छतों पर चढ़े हुए देख रहे थे। जब जनता ने (अदृश्य देव के हाथों) मुद्गर को यक्षायतन की ओर जाते देखा, तो राजगृह में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। फिर तो लोगों के समूह के समूह भगवद्पर्युपासना के लिए पहुँच गए।

धर्म द्वार में आकर पापी के पापों का प्रक्षालन हो जाता है। वीतराग के दरबार में धर्म-देशना की वर्षा सब पर समान होती है।

अर्जुन अधर्मी से धर्मी बन गया था। सुदर्शन से प्रभावित अर्जुन पर प्रभु की देशना का अमोघ प्रभाव हुआ। वह वहीं दीक्षित हो गया। पापपंक में फंसा हुआ अर्जुन परमेष्ठी का अंग बन गया।

सुदर्शन भगवान् के दर्शन करने रवाना हुए तब स्नानादि कर वस्त्र-विभूषा आदि की। यह उनका लौकिक आचार था। धर्म के साथ स्नान का कोई संबंध नहीं है। अर्जुन द्वारा सैकड़ों जीवों की हत्या हुई थी तथा वे सीधे प्रभु की सेवा में आये थे। दीक्षा के पूर्व उन्होंने स्नान भी नहीं किया था।

मस्तक की चारों दिशा में तथा ऊपर की तरफ से बालों का लुंचन 'पंचमुष्टी लोच' कहा जाता है। 'केवल पांच बार में ही सिर के सारे बालों का लोच हो जाना' यह कोई प्रामाणिक अर्थ नहीं है। श्री सूयगडांग सूत्र अ० ७ गाथा १० में जन्म के केश नहीं काटे हुए बालक के लिए **'पंचसिहा कुमारा**-पांच शिखाओं वाला कुमार' शब्दों का व्यवहार हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्जुन अनगार की प्रतिज्ञा

(७२)

तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव पव्वइए तं चेव दिवसं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ- "कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए" त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ, उग्गिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - **मुंडे** - मुण्डित, **पव्वइए** - प्रव्रजित, **एयारूवं** - इस प्रकार, **अभिग्गहं**- अभिग्रह, **उग्गिण्हइ** - धारण किया, **छट्ठं छट्ठेणं** - बेले-बेले, **तवोकम्मेणं** - तप कर्म से।

भावार्थ - अर्जुन अनगार जिस दिन प्रव्रजित हुए, उसी दिन श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार कर के ऐसा अभिग्रह धारण किया - 'मैं यावज्जीवन अन्तर-रहित बेले-बेले पारणा करता हुआ और तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरूँगा' - ऐसा अभिग्रह ले कर अर्जुन अनगार विचरने लगे।

विवेचन - भगवान् के मुखारविंद से धर्मकथा सुन कर अत्यंत आनंदित आह्लादित अर्जुनमाली ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से निवेदन किया - 'हे भगवन्! गांठ को ग्रंथि कहते हैं। आपके वचनों में माया, मिथ्यात्व, मृषा आदि की कोई गांठ - ग्रंथि नहीं होने से ये निर्ग्रंथ प्रवचन हैं। मैं आपके इन शुभ वचनों पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि करता हूं। ये मुझे अच्छे लगे। बहुत अच्छे लगे। मेरी आत्मा संयम स्वीकार करने को तैयार है। मैं श्री चरणों में प्रव्रज्या की याचना करता हूं। आपकी छत्र छाया में कर्म चकचूर करने को मैं पूरी तरह तैयार हूं।'

भगवान् ने कृपा की - 'हे देवानुप्रिय! जैसा सुख हो वैसा करो।' अब देरी किस बात की? पत्नी कालधर्म को पहले ही प्राप्त कर चुकी थी। वे अपने प्रभु या अधिष्ठाता स्वयं थे, संघ की साक्षी वहां थी ही। भगवान् से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त होने पर वे अर्जुनमाली गुणशील उद्यान के ईशान कोण में गए। अपने हाथ से मस्तक के सभी केशों का दीक्षा प्रायोग्य छोड़ कर लुंचन किया। दीक्षार्थी का वेश, पात्र, रजोहरण आदि धारण किये। मुनि के रूप में उनका जन्म हो गया। वे पांचों समिति समित, तीनों गुप्ति गुप्त हो गए। निर्ग्रंथ प्रवचन को आगे रख कर प्रत्येक प्रवृत्ति में सावधान एवं सजग बन गये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राणीवध के निमित्त से कर्मदलिक बहुत बांध लिये हैं, यह बात स्वयं से अज्ञात नहीं थी अतः कर्म कर्ज से मुक्त होने के लिए अर्जुन अनगार ने जिस दिन दीक्षा ली, उसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के चरणों में वंदना नमस्कार करके प्रभु की साक्षी से इस प्रकार अभिग्रह धारण किया -

"मुझे जीवन पर्यन्त तक बिना बीच में छोड़े बेले-बेले का तप कर्म करना और आत्मा को तप संयम से भावित करना कल्पता है। मैंने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं अशुभ योगों से जिन कर्मों का बंधन किया है, उन्हें अब मैं तप की अग्नि में संवर की वायु से प्रज्वलित करके भस्मीभूत कर दूंगा।"

शरीर कृश है, उठने बैठने की शक्ति नहीं है लगभग साढ़े पांच महीने से आहार पानी नहीं मिला है पहले कुछ दिन खा पी लूं - ऐसा विचार तक नहीं करके आत्म-समर के कुरुक्षेत्र में अर्जुन महाराज कर्म सैन्य को नष्ट करने का विचार करने लगे और ऐसा महान् सिंह संकल्प ग्रहण करके जीवन भर तक बेले-बेले पारणे करने में जुट गए।

अर्जुन अनगार को उपसर्ग

(७३)

तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमपोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ।

भावार्थ - उसके बाद अर्जुन अनगार ने बेले के पारणे के दिन पहले प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया और तीसरे प्रहर में गौतम स्वामी के समान गोचरी गये।

तए णं तं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे णयरे उच्चणीय जाव अडमाणं बहवे इत्थिओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी - "इमेणं मे पिया मारिए, इमेणं मे माया मारिया, भाया मारिए, भगिणी मारिया, भज्जा मारिया, पुत्ते मारिए, धूया मारिया, सुण्हा मारिया, इमेणं मे अण्णयरे सयणसंबंधिपरियणे मारिए" त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइया हीलंति, णिंदंति, खिंसंति, गरिहंति, तज्जेंति, तालेंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अडमाणं** - घूमते हुए, **इत्थिओ** - स्त्रियों, **पुरिसा** - पुरुषों, **डहरा**- बच्चे, **महल्ला** - वृद्ध, **जुवाणा** - जवान, **पिया** - पिता, **मारिए** - मारा, **माया** - माता, **भाया** - भाई, **भगिणी** - बहिन, **भज्जा** - भार्या (पत्नी), **पुत्ते** - पुत्र, **धूया** - पुत्री, **सुण्हा** - पुत्रवधू, **सयण** - स्वजन, **संबंधि** - संबंधी, **परियणे** - परिजन को, **अक्कोसंति** - आक्रोश करते हैं, **हीलंति** - हीलना करते हैं, **णिंदंति** - निंदा करते हैं, **खिंसंति** - खिजाते हैं, **गरिहंति** - गर्हा करते हैं, **तज्जेंति** - तर्जना करते हैं, **तालेंति** - ताड़ना करते हैं।

भावार्थ - राजगृह नगर में ऊंच-नीच, मध्यम कुलों में गृह-सामुदायिक भिक्षा के लिए फिरते हुए अर्जुन अनगार को देखा, तो स्त्री, पुरुष, बच्चे, वृद्ध और युवक सभी लोगों में से कोई इस प्रकार कहने लगे - 'इसने मेरे पिता को मारा। इसने मेरी माता मारी। इसने मेरा भाई मारा। इसने मेरी बहन मारी। इसने मेरी पत्नी मारी। इसने मेरा पुत्र मारा। इसने मेरी पुत्री मारी। इसने मेरी पुत्रवधू मारी। इसने मेरे अमुक स्वजन सम्बन्धी को मारा' - ऐसा कह कर कई कटु वचनों से उनका तिरस्कार करने लगे, कई निन्दा करने लगे, कई उनको खिझाने लगे, कई उनके दोषों को प्रकट करने लगे, कोई उन्हें तर्जना करने लगे और कोई उन्हें थप्पड़, लाठी, ईंट आदि से मारने लगे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त **अक्कोसंति** आदि शब्दों का विशेष अर्थ इस प्रकार हैं-

अक्कोसंति - कटु वचनों से भर्त्सना करते हैं। भर्त्सना का अर्थ है - लानत, मलामत, फटकार, बुराभला कहना।

हीलंति - अनादर - अपमान करते हैं।

णिंदंति - निंदा करते हैं, निंदा का अर्थ है - किसी के दोषों का वर्णन करना।

खिंसंति - खीजते हैं, झुंझलाते हैं, कुढते हैं, दुर्वचन कह कर क्रोधावेश में लाने का प्रयत्न करते हैं।

गरिहंति - दोषों को प्रकट करते हैं।

तज्जेंति - तर्जना करते हैं डांटते हैं, डपटते हैं, तर्जनी आदि अंगुलियों से भयोत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं।

तालेंति - लाठियों और पत्थरों आदि से मारते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्जुन अनगार की सहनशीलता

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ, सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ, सम्मं अहियासेइ, सम्मं सहमाणे, खममाणे, तितिक्खमाणे, अहियासमाणे, रायगिहे णयरे उच्चणीय-मज्झिमकुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं ण लभइ, जइ पाणं लभइ तो भत्तं ण लभइ।

कठिन शब्दार्थ - **आओसेज्जमाणे** - आक्रोश करते हुए, **तालेज्जमाणे** - ताडित करते हुए, **मणसा वि** - मन से भी, **अप्पउस्समाणे** - द्वेष नहीं करते हुए, **सम्मं** - सम्यक् प्रकार से, **सहइ** - सहन किया, **खमइ** - क्षमा किया, **तितिक्खइ** - तितिक्षा की, **अहियासेइ** - काया से सहन किया, **भत्तं** - आहार, **लभइ** - मिलता है, **पाणं** - पानी।

भावार्थ - बहुत-सी स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों, वृद्धों और तरुणों से तिरस्कृत यावत् ताड़ित से अर्जुन अनगार, उन लोगों पर मन से भी द्वेष नहीं करते और उनके दिये हुए आक्रोश आदि परीषहों को समभाव से सहन करने लगे। वे क्षमाभाव धारण कर एवं दीन-भाव से रहित, मध्यस्थ भावना में विचरने लगे तथा निर्जरा की भावना से सभी परीषह-उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करने लगे। इस प्रकार सभी परीषह उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करते हुए ऊँच-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा के लिए विचरते हुए उन अर्जुन अनगार को कहीं आहार मिलता था, तो पानी नहीं मिलता और यदि पानी मिलता था, तो आहार नहीं मिलता था।

विवेचन - **'सम्मं सहइ, सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ, सम्मं अहियासेइ'**- ये चारों पद एकार्थक लगते हैं किन्तु टीकाकार अभयदेवसूरि ने इनकी व्याख्या इस प्रकार की है -

सहइ - सहते - बिना किसी भय से संकट सहन करते हैं।

खमइ - क्षमते - क्रोध से दूर रह कर शांत रहते हैं।

तितिक्खइ - तितिक्षते - किसी प्रकार की दीनता दिखाये बिना परीषहों को सहन करते हैं।

अहियासेइ - अधिसहते - खूब सहन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन पदों से ध्वनित होता है कि अर्जुन अनगार की सहनशीलता आदर्श थी। जो सहनशीलता भय के कारण होती है, वह वास्तविक सहनशीलता नहीं है। जिस क्षमा में क्रोध का अंश विद्यमान है, हृदय में छिपा हुआ है, उसे क्षमा नहीं कहा जा सकता और दीनता पूर्वक की गयी तितिक्षा वास्तविक तितिक्षा नहीं कही जा सकती।

तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसाई अपरितंतजोगी अडइ, अडित्ता रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेइ पडिदंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ।

कठिन शब्दार्थ - **अदीणे** - अदीन, **अविमणे** - अविमन, **अकलुसे** - अकलुष, **अणाइले** - अक्षोभित, **अविसाई** - विषाद रहित, **अपरितंतजोगी** - अपरितांत योगी - तनतनाट रहित, **अमुच्छिए**- अमूर्च्छित, **बिलमिव पण्णगभूएणं** - बिल में सांप के प्रवेश के समान।

भावार्थ - इस प्रकार रूखा-सूखा जैसा भी आहार मिल जाता, उसे अदीन, अविमन, अकलुष, अक्षोभित तथा विषाद एवं तनतनाट आदि विक्षेप भावों से सर्वथा दूर रह कर ग्रहण करते और गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आते। भगवान् को आहार-पानी दिखाते और आज्ञा प्राप्त कर के गृद्धिपन से रहित, जिस प्रकार सांप बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार राग-द्वेष से रहित हो, उस आहार-पानी का सेवन करते हुए संयम का निर्वाह करते थे।

विवेचन - भीषण परीषहों को सहन करते हुए भी अर्जुन अनगार की क्षमा अपूर्व थी क्योंकि आक्रोश आदि परीषहों के सहन करने में यदि अंतःकरण में अंशतया भी कषायों का उदय हो जाता है तो आत्मा विकास के स्थान पर पतन की ओर प्रवृत्त हो जाती है। इसकी विशेष प्रतीति हेतु सूत्रकार ने **अदीणे, अविमणे, अकलुसे, अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी** विशेषण दिये हैं। जिसकी व्याख्या टीकाकार अभयदेव सूरि ने इस प्रकार की है -

अदीन - मन में किसी प्रकार का शोक न होने से अर्जुन मुनि अदीन - दीनता से रहित थे।

अविमन - समाहित चित्त होने से वे अविमन थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अकलुष - द्वेष रहित होने से मन में किसी प्रकार की कलुषता - मलिनता नहीं थी।

अनाविल - आकुलता व्याकुलता से रहित थे।

अविषाद - क्षोभ शून्य होने से मन में किसी प्रकार का विषाद-दुःख नहीं था।

अपरितांतयोगी - 'मेरा इस प्रकार तिरस्कृत जीवन से क्या प्रयोजन है' - ऐसी ग्लानि उनके मन में नहीं थी। अतएव वे निरंतर समाधि में लीन थे। समाधि में सतत लगे रहने के कारण अर्जुन अनगार को 'अपरितांतयोगी' कहा गया है।

'बिलमिव पण्णगभूएणं' - पन्नग सर्प को कहा जाता है। लोगों द्वारा लाठी, पत्थरों से पीछा किया जाता हुआ सर्प जिस प्रकार जीवन रक्षा के लिए झटपट बिल में घुस जाता है, वैसे ही पेट रूपी बिल में आहार पानी रख दिया। सर्प का शरीर सुकोमल होता है, कांटों की बाड़ में जीवन रक्षा के लिए नहीं घुसे तो लोग लाठी पत्थरों से मार डालते हैं। तीखे तीखे नुकीले कांटों का ध्यान न रखे तो शरीर लहुलुहान हो जाए। फिर किस डाक्टर के पास इलाज करावें? अतः जैसे सर्प सावधानी से प्राण रक्षा करता है वैसे ही मुनि के लिए भी सुस्वाद-कुस्वाद का विचार किए बिना काया को भाड़ा देने के लिए ही परिमित भोजन का विधान है।

अर्जुन माली द्वारा (ग्रंथकारों के मतानुसार छह महीने लगभग) प्रतिदिन सात प्राणियों का अनवरत संहार हुआ था। साधारण समझ वाली जनता इस दुःख को इतनी जल्दी कैसे भूल जाती? 'अब ये हत्यारे नहीं रहे हैं, अब तो ये प्राणी मात्र के परम रक्षक हैं। हम जिस छह काय के घातक हैं, ये उनमें से एक भी जीव की घात नहीं करते।' यह बात कौन समझाता तथा समझाने पर भी कौन समझता?

फलतः वही हुआ जो होना था। अर्जुन अनगार को कहीं गालियाँ सुननी पड़ती, कहीं कोई-कोई पीट भी देता। केवल भूख और प्यास का ही परीषह दुर्जय नहीं है। कईयों के लिए भूख-प्यास सहना सहज है पर अपमान जनक वचनों को वे सह नहीं पाते। अर्जुन अनगार के सामने आक्रोश व वध परीषह का प्रकृष्ट रूप विद्यमान था।

उन्होंने जन आक्रोश को सीधे सहज रूप में स्वीकार किया - 'ये तो बेचारे केवल मुँह से कह रहे हैं, लाठी पत्थर या ईंट से ही मार रहे हैं, पर मैंने तो इनके प्रिय आत्मीयजनों को मृत्यु मुख में डाल दिया था। इनका दोष ही क्या है? मुझे अपने पूर्वकृत कर्मों की निर्जरा करनी ही होगी। यदि मैं मन में भी ऊंचे-नीचे परिणाम लाऊँगा तो मेरा मुनिपना सार्थक कैसे होगा? मेरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्माचार्यजी ने महती अनुकम्पा कर मुझे चतुर्विध संघ में सम्मिलित किया। हत्यारे को वंदनीय-पूजनीय बनाया। अब यदि मैं इस परीषह को नहीं जीत पाऊंगा तो प्रभु मुझे सपूत नहीं गिनेंगे।' ज्ञानी फरमाते हैं - 'यदि कोई मुनि को कठोर वचन कहे तो मुनि सोचे कि इसने पीटा तो नहीं है, पीटे तो सोचे - मेरे प्राण तो नहीं लिये हैं, कोई प्राण भी ले ले तो यह सोचे कि मेरा धर्म-धन तो नहीं लूटा, समकित् रत्न तो नहीं खसोटा। यह मेरा उपकारी ही है -

"कटु बोला पीटा नहीं, लिए न मेरे प्राण।
धर्म-धन लूटा नहीं, यह है बंधु महान्॥"

क्षमाश्रमण अर्जुन अनगार ने तन्मयता से भिक्षाचर्या की। लोगों के आक्रोश से घबरा कर एक दो घर जाकर ही लौट आते, तो वे परीषहजयी नहीं कहलाते। लोगों द्वारा कुछ भी कहा जाय या मारा-पीटा जाय, मेरी आत्मा मेरे पास है, उनकी सुरक्षा व्यवस्था मुझे करनी है। बहुधा व्यक्ति दूसरों के व्यवहार से शीघ्र प्रभावित हो जाता है। प्रेम करने वाले से प्रेम, द्वेषी के साथ द्वेष, प्रशंसक पर अनुराग, निंदक पर अशुभभाव एवं क्रोधी पर क्रोध, यह जन-जीवन की सामान्य पद्धति है, इसी कारण असमाधि एवं अशांति के अंधड़ उठते रहते हैं। यदि कोई दूसरों के व्यवहार से सर्वथा अप्रभावित रह सके तो वह निश्चय ही अर्जुन अनगार की भांति अपनी आत्म-शांति कायम रख सकता है। दूसरे के पांव में चुभा हुआ कांटा हमें पीड़ा नहीं पहुँचा सकता है। अर्जुन अनगार ने दो दिन की प्रव्रज्या-पर्याय में ही काया-कल्प कर दिया। उनकी ईर्यासमिति एवं आचार-विधि की तुलना आगमकार गौतमस्वामी के साथ की है। उनकी आहार में अमूर्च्छा की उपमा सर्प के बिल प्रवेश से दी जाती है। सर्प बिल में घुसते हुए बहुत सावधान व सीधा रहता है। कांटों की बाड़ में उनकी कोमल काया किस कौशल से निकलती है, यह प्रशंसा का विषय है।

अर्जुन अनगार की मुक्ति

(७४)

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिं जणवयविहारं विहरइ। तए णं से अज्जुणए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्ण-परियागं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाएणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव सिद्धे।

कठिन शब्दार्थ - **ओरालेणं** - उदार, **विउलेणं** - विपुल, प्रचुर मात्रा में, **पयत्तेणं** - प्रदत्त - गुरु द्वारा अनुज्ञा प्राप्त, दिया हुआ, प्रयत्न पूर्वक पालन किया जाता हुआ, **पग्गहिएणं**- प्रगृहीत - अच्छी तरह ग्रहण किया हुआ, छुड़ाए छूटे नहीं, **महाणुभागेणं** - महान् अनुभाग यानी महान् फल वाले, **बहुपडिपुण्णे** - बहुप्रतिपूर्ण, **सामण्ण-परियागं** - श्रामण्य पर्याय का, **अद्धमासियाए संलेहणाए** - अर्द्धमास की संलेखना कर, **जस्सट्ठाए** - जिस अर्थ के लिए- जिस परम पद मुक्ति के लिए, **कीरइ** - कठोर समाचारी को स्वीकार किया।

भावार्थ - किसी समय श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशीलक उद्यान से निकल कर बाहर जनपद में विचरने लगे।

उन महाभाग अर्जुन अनगार ने भगवान् के दिये हुए तथा स्वयं की उत्कृष्ट भावना से स्वीकार किए हुए, अत्यन्त प्रभावशाली उदार, विपुल एवं प्रधान तपःकर्म से आत्मा को भावित करते हुए छह महीने तक चारित्र पर्याय का पालन किया। अर्द्ध मास की संलेखना कर, तीस भक्त अनशन छेदित कर, जिस कार्य के लिए संयम अंगीकार किया था, उसे सिद्ध कर लिया अर्थात् अव्याबाध सुख-सम्पन्न मोक्ष प्राप्त कर लिया।

विवेचन - अर्जुन अनगार ने जो तप आराधन किया, उस तप की महत्ता को बताने के लिए सूत्रकार ने **'तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं'** विशेषण दिये हैं। उनकी टीका और विशेष अर्थ इस प्रकार है -

"तेन पूर्वभणितेन उदारेण-प्रधानेन, विपुलेन-विशालेन, भगवता दत्तेन, प्रगृहीतेन, उत्कृष्टभावतः स्वीकृतेन, महानुभागेन-महान् अनुभागः प्रभावो यस्य, तेन तपःकर्मणा।" यहाँ पर अर्जुन मुनि ने जो तप आराधन किया है उस तप की महत्ता को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत पाठ में तप-कर्म विशेष्य है और उदार आदि उसके विशेषण हैं। इनकी अर्थविचारणा इस प्रकार है -

तेणं - यह शब्द पूर्व प्रतिपादित तप की ओर संकेत करता है। अर्जुन मुनि के साधना-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण में बताया गया कि अर्जुन मुनि जब नगर में भिक्षार्थ जाते थे तब उनको लोगों की ओर से बहुत बुरा भला कहा जाता था, उसका अपमान किया जाता था, मार-पीट की जाती थी, तथापि ये सब यातनाएं शांतिपूर्वक सहन करते थे। इसके अतिरिक्त उनको अन्न मिल जाता तो पानी नहीं मिलता था, कहीं पानी मिल गया तो अन्न नहीं मिलता था। यह सब कुछ होने पर भी अर्जुन मुनि कभी अशान्त नहीं हुए, दो दिनों के उपवास के पारणे में भी सन्तोषजनक भोजन न पाकर उन्होंने कभी ग्लानि अनुभव नहीं की। इस प्रकार के तप को सूत्रकार ने **'तेणं'** इस पद से ध्वनित किया है।

'उदार' - शब्द का अर्थ है - प्रधान। प्रधान सब से बड़े को कहते हैं। भूखा रहना आसान है, रसनेन्द्रिय पर नियंत्रण भी किया जा सकता है, भिक्षा द्वारा जीवन का निर्वाह करना भी संभव है पर लोगों से अपमानित होकर तथा मार-पीट सहन कर तपस्या की आराधना करते चले जाना बच्चों का खेल नहीं है। यह बड़ा कठिन कार्य है, बड़ी कठोर साधना है, इसी कारण सूत्रकार ने अर्जुनमुनि के तप को उदार अर्थात् सब से बड़ा कहा है।

'विपुल' - विशाल को कहते हैं। एक बार कष्ट सहन किया जा सकता है, दो या तीन बार कष्ट का सामना किया जा सकता है, परन्तु लगातार छह महीनों तक कष्टों की छाया तले रहना कितना कठिन कार्य है? यह समझना कठिन नहीं है। जिधर जाओ उधर अपमान, जिस घर में प्रवेश करो वहाँ अनादर की वर्षा, सम्मान का कहीं चिह्न भी नहीं। ऐसी दशा में मन को शान्त रखना, क्रोध को निकट न आने देना, बड़ा ही विलक्षण साहस है और बड़ी विकट तपस्या है, अपूर्व सहिष्णुता है। संभव है इसीलिए सूत्रकार ने अर्जुनमुनि की तपःसाधना को विपुल - विशाल बड़ी कहा है।

'प्रदत्त' - का अर्थ है - दिया हुआ। अर्जुनमुनि जिस तप की साधना कर रहे थे, यह तप उन्होंने बिना किसी से पूछे अपने आप ही आरम्भ नहीं किया, प्रत्युत भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके आरम्भ किया था। अतएव सूत्रकार ने इस तप को प्रदत्त कहा है।

'प्रगृहीत' का अर्थ है - ग्रहण किया हुआ। किसी भी व्रत ग्रहण करने वाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति एक जैसी नहीं रहती। किसी समय मन में श्रद्धा का अतिरेक होता है और किसी समय श्रद्धा कमजोर पड़ जाती है और किसी समय लोकलज्जा के कारण बिना श्रद्धा के ही व्रत का परिपालन किया जाता है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर सूत्रकार ने मुनि द्वारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृत तप को प्रगृहीत विशेषण से विशेषित किया है, जो उत्कृष्ट भावना से ग्रहण किया हुआ, इस अर्थ का बोधक है। अर्जुन मुनि की आस्था संकट काल में शिथिल नहीं हुई, वे सुदृढ़ साधक बन कर साधना-जगत् में आए थे और अन्त तक सुदृढ़ साधक ही रहे। उन्होंने अपने मन को कभी डांवाडोल नहीं होने दिया।

यदि 'पयत्तेणं' का संस्कृत रूप 'प्रयत्नेन' किया जाय तो उदार और विपुल ये दोनों प्रयत्न के विशेषण बन जाते हैं, तब इन शब्दों का अर्थ होगा - 'प्रधान विशाल प्रयत्न से ग्रहण किया गया।' तप करना साधारण बात नहीं है, इसके लिए बड़े पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इसी महान् पुरुषार्थ को प्रधान विशाल प्रयत्न कहा गया है।

'महानुभाग' शब्द प्रभावशाली अर्थ का बोधक है। जिस तप के प्रताप से अर्जुनमुनि ने जन्म-जन्मान्तर के कर्मों को नष्ट कर दिया, परम साध्य निर्वाण प्राप्त कर लिया, उसकी प्रभावगत महत्ता में क्या आशंका हो सकती है?

घास के ठट्ट लगे हुए हो और एक चिनगारी लग जाए तो सारा घास भस्मीभूत हो जाता है, वैसे ही **'भवकोडिसंचियं कम्मं तवसा णिज्जरिज्जइ'** - करोड़ों भवों के कर्म तपस्या के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। अर्जुन अनगार ने सिर्फ छह महीने तक दीक्षा पाल कर ही अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया।

अस्तु, अर्जुन अनगार ने अपनी आत्मा को अनंत अव्याबाध सुख प्रदान किया। पापी-महापापी भी धर्म की चरण-शरण में पाकर किस प्रकार शरण्य बन सकता है, गटर का पानी गंगाजल बनकर लोक-पूज्य बन जाता है, यह बात सिद्ध करने के लिए यह अध्ययन पर्याप्त है।

परम्परा से श्रुत है कि अर्जुन ने ५ महीने १३ दिन में ११४१ जीवों की हत्या की यानी कुछ कम ६ महीने में हिंसा कर नवीन कर्म बांधे, किंतु ६ महीने की अल्पावधि में ही वे समस्त कर्मों को तोड़ कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए।

॥ छठे वर्ग का तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थं अज्झयणं – चतुर्थ अध्ययन

काश्यप गाथापति

(७५)

उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसिलए चेइए। तत्थ णं सेणिए राया। कासवे णामं गाहावई पडिवसइ, जहा मकाई, सोलस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी ने छठे वर्ग के तीसरे अध्ययन में जो भाव फरमाये, वे मैंने सुने। अब चौथे अध्ययन में क्या भाव फरमाये हैं, सो कृपा कर के कहिये।'

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! उस काल उस समय राजगृह नामक नगर था। राजगृह नगर के बाहर गुणशीलक उद्यान था। श्रेणिक राजा राज करते थे। उस नगर में 'काश्यप' नाम के एक गाथापति रहते थे। उन्होंने मकाई गाथापति के समान भगवान् महावीर स्वामी से दीक्षा अंगीकार की। सोलह वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का चौथा अध्ययन समाप्त॥

पंचमं अज्झयणं – पंचम अध्ययन

क्षेमक गाथापति

एवं खेमए वि गाहावई, णवरं काकंदी णयरी, सोलस वासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का भी चरित्र है। ये काकन्दी नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा ले कर सोलह वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुल-गिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का पांचवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठं अज्झयणं – छठा अध्ययन

धृतिधर गाथापति

एवं धितिहरे वि गाहावई, काकंदी णयरी सोलस वासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार धृतिधर गाथापति का भी वर्णन है। ये काकन्दी नगरी के रहने वाले थे। भगवान् के पास दीक्षा ले कर सोलह वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुल-गिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का छठा अध्ययन समाप्त॥

सत्तमं अज्झयणं – सप्तम अध्ययन

कैलाश गाथापति

एवं केलासे वि गाहावई णवरं सागेए णयरे बारस वासाइं परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार कैलाश गाथापति का चरित्र है। ये साकेत नगरी के थे। दीक्षा ले कर बारह वर्ष तक चारित्र का पालन किया और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का सातवाँ अध्ययन समाप्त॥

❀ ❀ ❀ ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं अज्झयणं – अष्टम अध्ययन

हरिचंदन गाथापति

एवं हरिचंदणे वि गाहावई सागेए णयरे बारसवासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार हरिचन्दन गाथापति का वर्णन है। ये साकेत नगरी के थे। दीक्षा ले कर बारह वर्ष तक चारित्र का पालन किया और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का आठवाँ अध्ययन समाप्त॥

णवमं अज्झयणं – नौवां अध्ययन

वारत्तक गाथापति

एवं वारेत्तए वि गाहावई, णवरं रायगिहे णयरे बारस-वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार वारत्त (वारत्तक) गाथापति का वर्णन है। ये राजगृह नगर के थे। दीक्षा लें कर बारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का नववाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दसमं अज्झयणं – दसवां अध्ययन

सुदर्शन गाथापति

एवं सुदंसणे वि गाहावई णवरं वाणियगामे णयरे दुइपलासए चेइए, पंच वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति का वर्णन है। ये वाणिज्य ग्राम के थे। ग्राम के बाहर द्युतिपलाश उद्यान था। भगवान् के पास दीक्षा ले कर पांच वर्ष तक श्रमण-धर्म का पालन किया और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का दसवाँ अध्ययन समाप्त॥

एगारसमं अज्झयणं – ग्यारहवां अध्ययन

पूर्णभद्र गाथापति

एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई वाणियगामे णयरे, पंच वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार पूर्णभद्र गाथापति का वर्णन है। ये वाणिज्य ग्राम के थे। भगवान् के पास दीक्षा ले कर पांच वर्ष तक संयम पालन किया और विपुलगिरि प्र सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का ग्यारहवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारसमं अज्झयणं – बारहवां अध्ययन

सुमनभद्र गाथापति

एवं सुमणभद्दे वि गाहावई सावत्थी णयरी। बहुवासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार सुमनभद्र गाथापति का वर्णन है। ये श्रावस्ती नगरी के थे। दीक्षा ले कर बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का बारहवाँ अध्ययन समाप्त॥

तेरसमं अज्झयणं – तेरहवां अध्ययन

सुप्रतिष्ठ गाथापति

एवं सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थी णयरी सत्तावीसं वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार सुप्रतिष्ठ गाथापति का वर्णन है। ये श्रावस्ती नगरी के थे। दीक्षा ले कर सत्ताईस वर्ष तक संयम का पालन किया और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

॥ छठे वर्ग का तेरहवाँ अध्ययन समाप्त॥

* * * *

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउद्दसमं अज्झयणं – चौदहवां अध्ययन

मेघ गाथापति

एवं मेहे वि गाहावई रायगिहे णयरे, बहूहिं वासाइं परियाओ। विपुले सिद्धे।

भावार्थ - इसी प्रकार मेघ गाथापति का वर्णन है। ये राजगृह नगर के थे। दीक्षा ले कर बहुत वर्षों तक संयम का पालन किया और विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

विवेचन - शंका - अनेक मुनि शत्रुञ्जय, विपुलगिरि, गिरनार, अष्टापद आदि पर्वतों से मुक्त हुए हैं। फिर उन स्थानों को पवित्र तीर्थस्थान मानने में क्या बाधा है?

समाधान - इस छट्ठे वर्ग के चौथे से चौदहवें तक के ग्यारह अध्ययनों के चरित्र नायक विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए, यह तो प्राकृत पाठ से स्पष्ट ही है। इस पर भी यदि किसी स्थान विशेष की महत्ता वहाँ से मुक्त होने वाले महापुरुषों की अपेक्षा से हो तब तो पूरा का पूरा 'समय क्षेत्र' पवित्र तीर्थस्थान है, क्योंकि यहाँ का कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ से कोई मुक्त न हुए हो।

शंका - फिर शत्रुञ्जय विपुलगिरि आदि पर्वतों पर जाने की क्या आवश्यकता थी?

समाधान - संथारा करने वाले निर्जन शांत स्थानों की गवेषणा करते हैं। तीर्थंकर देवों के सान्निध्य में नर-अमर की विपुल आगति रहा करती है। कोलाहल पूर्ण स्थान की अपेक्षा पर्वत पर आत्मशांति के निमित्त विशेष रहते हैं। जीवन-संध्या में सारे जीवन की प्रतिलेखना एवं आराधना आवश्यक होती है। बस यही कारण है कि वन-पर्वत आदि सुविधाजनक स्थान देख लिए जाते थे। साध्वियाँ तो अपने उपाश्रयों से ही काल-धर्म प्राप्त करती है। यदि स्थान का एकांत महत्त्व व आग्रह होता तो तत्संबंधी विधि-विधान होता पर आगमों में ऐसा कुछ भी संकेत तक नहीं हैं। विशेष बहुश्रुत फरमावें, वही प्रमाण है।

॥ छठे वर्ग का चौदहवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णरसमं अज्झयणं - पन्द्रहवां अध्ययन

अतिमुक्तक अनगार

(७६)

उक्खेवओ पण्णरसमस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे णयरे, सिरीवणे उज्जाणे तत्थ णं पोलासपुरे णयरे विजए णामं राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी णामं देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते णामं कुमारे होत्था, सुकुमाले।

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! चौदहवें अध्ययन का भाव मैंने आपसे सुना। अब कृपा कर पन्द्रहवें अध्ययन के भाव कहिए।' श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! उस काल उस समय में पोलासपुर नामक नगर था। वहाँ श्रीवन नामक उद्यान था। विजय नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। वह सर्वांगसुन्दर थी। विजय राजा का पुत्र तथा श्रीदेवी रानी का आत्मज 'अतिमुक्तक' नामक कुमार था। वह अत्यन्त सुकुमार था।

भगवान् का पदार्पण

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे णयरे उच्चणीय जाव अडइ।।

कठिन शब्दार्थ - **जेट्ठे** - ज्येष्ठ, **अंतेवासी** - अंतेवासी (शिष्य), **जहा पण्णत्तीए** - व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के अनुसार, **अडइ** - भ्रमण करने लगे।

भावार्थ - उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरते हुए श्रीवन उद्यान में पधारे। भगवान् के ज्येष्ठ अंतेवासी इन्द्रभूति भगवान् को पूछ कर व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के वर्णन के अनुसार पोलासपुर नगर में ऊँच-नीच-मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - गौतम स्वामी के सैकड़ों अंतेवासी शिष्य थे। वे प्रकृति के भद्र, विनीत एवं गुरु चरणों में निश्चल अर्पणा वाले थे। फिर भी गौतम स्वामी गोचरी के लिए क्यों पधारते थे? क्या शिष्य आहार लाकर देने में तत्पर नहीं थे? अपना कार्य आप करने की वृत्ति वाले वे गौतमस्वामी स्वयं गोचरी पधारने में किसी प्रकार की हेठी नहीं समझते थे। श्री ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के सोलहवें अध्ययन से यह जानने को मिलता है कि मासखमण का पारणा होने पर भी धर्मरुचि अनगार स्वयं पारणा लेने गए। इतना ही नहीं, कडुआ तुम्बा परठने के लिए भी स्वयं पधारे। उस जमाने में मुनियों की यह दशा थी और आज स्थिति यह है कि अधिकांश में पराधीनता एवं बड़प्पन की आंधी में धूल-धूसर की गर्दिश इस कदर छा गई है कि आचार्यों के व्याख्यान स्थल पर पधारने के समय उनका आसन अन्य उठाते हैं, पाद-प्रोंछन अन्य करते हैं, पाट पर बाजोट अन्य लगाते हैं, विहार में पात्र एवं उपकरण अन्य उठाते हैं। शिष्य तो विनय भाव से सब कुछ करेंगे ही, पर करवाने वालों को गौतम स्वामी एवं धर्मरुचि महाराज की ओर झांकना लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

अतिमुक्तक इन्द्रस्थान में

(७७)

इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव विभूसिए बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए। तेहिं बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरममाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - **विभूसिए** - विभूषित होकर, **बहुहिं** - बहुत से, **दारएहि** - दारक - सामान्य बालक (अच्छी आयु वाला), **दारियाहि**- दारिका - सामान्य बालिका (अच्छी आयु वाली), **डिंभएहि** - डिंभक - छोटी आयु वाला बालक, **डिंभियाहि** - डिम्भिका - छोटी आयु वाली बालिका, **कुमारएहि** - कुमार (अविवाहित), **कुमारियाहि** - कुमारिका (अविवाहित लड़की), **सद्धिं** - साथ में, **संपरिवुडे** - संपरिवृत्त - घिरे हुए, **इंदट्ठाणे** - इन्द्रस्थान-बालकों का खेलने का स्थान, **अभिरममाणे** - खेलते हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उसी समय अतिमुक्तक कुमार स्नान कर के अलंकारों से अलंकृत हुए और बहुत-से लड़के-लड़कियों, बालक-बालिकाओं और कुमार-कुमारिकाओं के साथ अपने घर से निकल कर इन्द्रस्थान (बालकों के खेलने के स्थान) पर आये और उन सभी के साथ खेलने लगे।

अतिमुक्तक - गौतमस्वामी संवाद

(७८)

तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे णयरे उच्चणीय जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ। तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए। भगवं गोयमं एवं वयासी - "के णं भंते! तुब्भे, किं वा अडह?"

कठिन शब्दार्थ - **अदूरसामंतेणं** - ज्यादा दूर नहीं - समीप से, **वीइवयमाणं** - जाते हुए, **उवागए** - पहुँचे।

भावार्थ - उसी समय भगवान् गौतम स्वामी, पोलासपुर नगर के ऊंच-नीच-मध्यम कुलों में गृहसामुदानिक भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए उस इन्द्रस्थान के समीप हो कर निकले। भगवान् गौतम स्वामी को आते हुए देख कर अतिमुक्तक कुमार उनके समीप गये और इस प्रकार बोले - 'हे भगवन्! आप कौन हैं और क्यों घूम रहे हैं?'

विवेचन - टीकाकार श्री अभयदेव सूरि आदि पूर्वज महापुरुषों के मतानुसार बालक अतिमुक्तक की उम्र उस समय छह वर्ष लगभग थी तथा यही समय बालकों के साथ खेलने कूदने के उपर्युक्त वर्णन को पुष्ट करता है। अतिमुक्तक का ध्यान गौतम स्वामी की ओर आकृष्ट हुआ, यह एक उल्लेखनीय तथ्य है। बहुधा देखा जाता है कि बालक खेल में मस्त होकर भोजन करने के बुलावे की भी उपेक्षा कर बैठता है। खेल के सिवाय उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता, फिर किस अदृश्य प्रेरणा से अतिमुक्तक लौह-कण के समान गौतम स्वामी रूप चुम्बक के पास खिंचे आये। छोटे से बालक को क्या पता कि ये कौन हैं तथा कहाँ जा रहे हैं, पर बालक पूछ ही बैठा। रवीन्द्र बाबू का कथन है - **'दिया शाम को जलाया जाता है, पर तेल पहले ही डाल दिया जाता है।'**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी - "अम्हे णं देवाणुप्पिया! समणा णिग्गंथा इरियासमिया जाव बंभयारी, उच्चणीय जाव अडामो।"

तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी - "एह णं भंते! तुब्भे जण्णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि" त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलिए गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए।

कठिन शब्दार्थ - समणा - श्रमण, **णिग्गंथा** - निर्ग्रंथ, **इरियासमिया** - ईर्या समिति के धारक, **भिक्खं** - भिक्षा, **दवावेमि** - दिलाता हूं, **अंगुलिए** - अंगुली, **गिण्हइ** - ग्रहण की।

भावार्थ - अतिमुक्तक कुमार का प्रश्न सुन कर गौतम स्वामी ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! हम श्रमण-निर्ग्रन्थ हैं। हम ईर्या समिति आदि पाँच समितियों से युक्त यावत् पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं तथा ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए गोचरी करते हैं।' यह सुन कर अतिमुक्तक कुमार ने गौतम स्वामी से कहा - 'हे भगवन्! आप मेरे साथ पधारें। मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ।' ऐसा कह कर गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और उन्हें अपने घर ले गया।

विवेचन - गौतम स्वामी ने बाल-सुलभ जिज्ञासा की उपेक्षा नहीं की, बालक को प्रश्न का उत्तर दिया। बड़े वे ही होते हैं जो छोटों का अनादर नहीं करते। महानता का अंकन छोटों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार से होता है। यदि बालक विवेकशील नहीं होता, तो गौतमस्वामी की बात सुनकर खेल में मग्न हो जाता, पर अतिमुक्तक अपने भोजन-गृह में साथ ले जाते हैं। 'ये बड़े हैं, कहीं आगे नहीं निकल जायें, मैं पीछे नहीं रह जाऊँ' - इस भावना से बालक ने अंगुली पकड़ ली तथा साथ में ले गये।

श्रीदेवी द्वारा आहार दान

तए णं सा सिरिदेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्टित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया। भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ।

कठिन शब्दार्थ - एज्जमाणं - आते हुए को, **आसणाओ** - आसन से, **अब्भुट्ठेइ** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उठती है, **विउलेणं** - विपुल (उत्तम), **पडिलाभेइ** - प्रतिलाभित करती है, **पडिविसज्जेइ** - विसर्जित करती है।

भावार्थ - भगवान् गौतम स्वामी को आते देख कर रानी श्रीदेवी अत्यन्त प्रसन्न हुई। आसन से उठ कर वह सात-आठ चरण सामने गई और भगवान् गौतम स्वामी को तीन बार विधि सहित वंदन-नमस्कार किया। फिर उच्च भावों से आदर सहित अशन, पान, खादिम और स्वादिम - चारों ही प्रकार का आहार बहराया और उन्हें विसर्जित किया अर्थात् भवन-द्वार तक उन्हें पहुँचाने गई।

विवेचन - कोमल मन के बालक सिखाने से कम सिखते हैं, देख-देख कर सहज रूप से उनकी शिक्षा बराबर चलती रहती है। वे अपने आस-पास जो कुछ भी भला-बुरा देखते हैं, आत्मसात् करते जाते हैं। अतिमुक्तक कुमार का गौतम स्वामी की ओर खिंचाव एकदम आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। माता श्रीदेवी की धर्म-प्रीति के बीज अतिमुक्तक की मनोभूमि पर बराबर पड़ते जाते थे। आज बालकों में धार्मिक संस्कार नहीं होने की शिकायत की जाती है, शिकायत तो यह होनी चाहिए कि माता-पिताओं में, बड़े-बुजुर्गों में धार्मिक संस्कार नहीं हैं। बालक अतिमुक्तक समझते थे कि मुझे माताजी को भिक्षा देने के लिए कहना पड़ेगा कि मैं इन्हें साथ लाया हूँ, पर जब माता द्वारा वंदन-विधि देखी, तो विचक्षण प्रज्ञा वाले बालक को समझते देर नहीं लगी कि अवश्य ही ये महापुरुष मेरे पिताजी से भी अधिक पूज्य हैं। माता ने पिताजी को कभी इस प्रकार प्रणाम नहीं किया। पिताजी को भोजन कराने में माताजी की इतनी प्रसन्नता नहीं देखी गई। अतः गौतम स्वामी के प्रति बालक अतिमुक्तक की श्रद्धा बढ़ती ही रही।

भगवान् की सेवा में जाने की इच्छा

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी - "कहिणं भंते! तुब्भे परिवसह?" तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी - एवं खलु देवाणुप्पिया! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाविउकामे, इहेव पोलासपुरस्स णयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तत्थ णं अम्हे परिवसामो।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - परिवसह - रहते हो, **धम्मायरिए** - धर्माचार्य, **धम्मोवएसए** - धर्मोपदेशक, **अहापडिग्गह उग्गहं** - यथापरिग्रह अवग्रह - कल्पानुसार मुनि को जिस प्रकार ग्रहण करना चाहिये, उसी प्रकार अवग्रह।

भावार्थ - इसके बाद अतिमुक्तक कुमार ने भगवान् गौतम स्वामी से इस प्रकार पूछा - 'हे भगवन्! आप कहाँ रहते हैं?'

गौतम स्वामी ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक धर्म की आदि के करने वाले यावत् मोक्ष के कामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन उद्यान में कल्पनानुसार अवग्रह ले कर तप-संयम से आत्मा को भावित करते हुए विराजते हैं। मैं वहीं उन्हीं के पास रहता हूँ।'

विवेचन - अत्यंत निकट के उपकारी गुरु, जिनके वैराग्य वर्द्धक वचन वैराग्य जगाते हैं, संयम देने वाले, बड़ी दीक्षा देने वाले, समिति गुप्ति सिखाने वाले, सारणा वारणा करने वाले आदि सभी जीवन निर्माण के कारक गुरु को धर्माचार्य धर्मोपदेशक कहा गया है।

यद्यपि गौतमस्वामी उस समय अकेले थे तथापि पहले भी बहुवचन में उत्तर दिया था कि हम श्रमण निर्ग्रंथ हैं यानी मैं और मेरे जैसे साधु हैं। यहां भी बहुवचन में उत्तर है कि हम उनके पास रहते हैं यानी मैं और मेरे जैसे शिष्य उनकी छत्र छाया में रहते हैं - यह भगवान् गौतमस्वामी की विनयवृत्ति है।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी - "गच्छामि णं भंते! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए?" "अहासुहं देवाणुप्पिया!"

भावार्थ - यह सुन कर अतिमुक्तक कुमार ने कहा - 'हे भगवन्! मैं भी आपके साथ, भगवान् को वन्दन करने के लिए चलूँ?' गौतम स्वामी ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो।'

विवेचन - 'ये इतने ऊंचे हैं तो इनके गुरु कितने ऊंचे होंगे, मुझे उनके भी दर्शन करने चाहिए' - इस भावना को लेकर अतिमुक्तक कुमार ने भगवान् गौतमस्वामी से कहा - 'अगर आपको एतराज न हो तो मैं आपके साथ चल कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की चरण वंदना करना चाहता हूं।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् की पर्युपासना

(७९)

तए णं से अइमुत्ते कुमारे गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ जाव पज्जुवासइ।

भावार्थ - तब अतिमुक्तक कुमार, गौतम स्वामी के साथ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप गये और तीन बार विधिपूर्वक वंदन-नमस्कार कर के उपासना करने लगे।

तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - पडिदंसेइ - दिखाते हैं।

भावार्थ - गौतम स्वामी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप आये और आहार दिखाया। आहार-पानी कर लेने के बाद संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

दीक्षा की भावना

तए णं से समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स धम्मकहा। तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्मं हट्ठ तुट्ठ "जं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि।" "अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह"।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अतिमुक्तक कुमार को धर्म-कथा कही। धर्म-कथा सुन कर अतिमुक्तक कुमार अत्यन्त हृष्ट-तुष्ट हो कर बोले - 'हे भगवन्! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा ले कर आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूँ।' भगवान् ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्म-कार्य में प्रमाद मत करो।'

विवेचन - गौतम स्वामी ने आहार तो ले लिया पर भोजन करने नहीं बैठे, तो बालक को जिज्ञासा हुई - ये भोजन यहीं क्यों नहीं कर रहे हैं? अन्यत्र कहाँ जा रहे हैं? पूछा तो ज्ञात हुआ कि इनके गुरु महावीर स्वामी हैं। 'शिष्य ऐसे हैं तो गुरु कैसे होंगे? क्यों न उनके दर्शन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किए जाये।' इस भावना से बालक की इच्छा हुई। पर बिना पूछे जाना ठीक नहीं। बालक ने विनय पूर्वक साथ चलने की इच्छा व्यक्त की तो गौतम स्वामी ने निषेध नहीं किया।

जिस समय क्रीड़ा स्थल से गौतम स्वामी के पास आये थे तब तो वंदन-विधि का ज्ञान नहीं होने से गौतम स्वामी को वंदना नहीं की थी, पर अब माताजी द्वारा गौतम स्वामी को की गई वंदना देखकर बुद्धिमान् बालक ने उसी विधि से महावीर स्वामी को वंदन-नमस्कार किया तथा सेवा करने लगा।

पात्र के योग्य भिक्षा-दाता का गुण माना गया है, तो धर्मोपदेशक की विशेषता श्रोता के योग्य उपदेश देने से होती है। इन्द्रभूति गौतम आदि दिग्गज पंडितों से जो उच्चस्तरीय चर्चाएं हुईं, वे ऊँचे तत्त्व की बातें बालक अतिमुक्तक की पहुँच से बाहर थी, अतः भगवान् ने सरल शब्दों में धर्म-तत्त्व का ऐसा अनुपम व्याख्यान किया कि बालक दीक्षित होने के लिए लालायित हो उठा। भगवान् सरीखे वर्षालु बादल हों और अतिमुक्तक जैसी उर्वर भूमि, फिर योग्य समय पर डाले गये धर्म-बीजों की निष्पत्ति कैसे नहीं होती? भगवान् का अमृतमय उपदेश सुनकर बालक हर्षित हो गया।

दीक्षा की आज्ञा हेतु माता-पिता से चर्चा

(८०)

तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव पव्वइत्तए। अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी - "बाले सि ताव तुमं पुत्ता! असंबुद्धेसि तुमं पुत्ता! किण्णं तुमं जाणासि धम्मं?"

कठिन शब्दार्थ - **बालेसि** - बच्चे हो, **असंबुद्धेसि** - असंबुद्ध - तत्त्वज्ञान से रहित हो, **किण्णं** - कैसे, **जाणासि** - जानोगे, **धम्मं** - धर्म को।

भावार्थ - अतिमुक्तक कुमार अपने माता-पिता के पास आ कर इस प्रकार कहने लगे - 'हे माता-पिता! आपकी आज्ञा होने पर मैं श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी से दीक्षा लेना चाहता हूँ।' माता-पिता ने कहा - 'हे पुत्र! तुम अभी बच्चे हो। तुम्हें तत्त्वों का ज्ञान नहीं है। हे पुत्र! तुम धर्म को कैसे जान सकते हो?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - भगवान् के समीप से रवाना हो कर अतिमुक्तक अपने भवन में आए तो रास्ते में ही विचार किया - 'माता-पिता मुझे अबोध समझ कर आज्ञा नहीं देंगे। अतः भगवान् से मैंने जो ज्ञान पाया उसकी पहेली बना कर अपने ज्ञानवान् होने का सबूत दूंगा, तब ही मुझे आज्ञा प्राप्त होगी।'

मेघकुमार, जमालिकुमार आदि तो बड़े थे अतः उनकी दीक्षा की बात सुनकर उनकी माता को मूर्च्छा आ गई किंतु जब अतिमुक्तक के माता-पिता ने उसकी दीक्षा की बात सुनी तो उन्हें हंसी मिश्रित विस्मय हुआ। वे बालक से कहने लगे - 'हे वत्स! तुम बालक हो, असंबुद्ध हो तुम कोई तत्त्वज्ञ थोड़े ही हो। धर्म तो बहुत ही गहन चीज है तुम भला उसे क्या जानो? तुम्हारी अवस्था ही इतनी छोटी है कि धर्म के मर्म को जानना अभी संभव ही नहीं है अतः तुम दीक्षा की बात मत करो।'

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी - "एवं खलु अहं अम्मयाओ! जं चेव जाणामि तं चेव ण जाणामि, जं चेव ण जाणामि तं चेव जाणामि।"

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी - "कहं णं तुमं पुत्ता! जं चेव जाणासि तं चेव ण जाणासि, जं चेव ण जाणासि तं चेव जाणासि?"

भावार्थ - यह सुन कर अतिमुक्तक कुमार ने कहा - 'हे माता-पिता! मैं जिसे जानता हूँ, उसे नहीं जानता और जिसे नहीं जानता, उसे जानता हूँ।'

अतिमुक्तक कुमार की यह बात सुन कर उसके माता-पिता ने कहा - 'हे पुत्र! तुमने यह क्यों कहा कि - 'जिसे मैं जानता हूँ, उसे नहीं जानता और जिसे नहीं जानता हूँ, उसे जानता हूँ। इसका क्या अभिप्राय है?'

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी - "जाणामि अहं अम्मयाओ! जहा जाएणं अवस्सं मरियव्वं, ण जाणामि अहं अम्मयाओ! काहे वा कहिं वा कहं वा केच्चिरेण वा? ण जाणामि अहं अम्मयाओ! केहिं कम्माययणेहिं जीवा णेरइयतिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ! जहा सएहिं कम्माययणेहिं जीवा णेरइय जाव उववज्जंति, एवं खलु अहं अम्मयाओ!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जं चेव जाणामि तं चेव ण जाणामि, जं चेव ण जाणामि तं चेव जाणामि। तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए।

कठिन शब्दार्थ - जाएणं - जात - जन्मा हुआ है, **अवस्सं** - अवश्य, **मरियव्वं** - मरेगा, **काहे** - कब, **कहिं** - कहां, **कहं** - कैसे, **केच्चिरेण** - कितने समय में, **कम्माययणेहिं**- कर्मों के आयतन से, **णेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेसु** - नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव में, **उववज्जंति** - उत्पन्न होते हैं, **सएहिं** - अपने।

भावार्थ - माता-पिता के उपरोक्त वचन सुन कर अतिमुक्तक कुमार बोले - 'हे माता-पिता ! मैं यह जानता हूँ कि जिसने जन्म लिया है, वह अवश्य मरेगा, किन्तु यह नहीं जानता कि वह किस काल में, किस स्थान पर, किस प्रकार और कितने समय के बाद मरेगा? इसी प्रकार हे माता-पिता! मैं यह नहीं जानता कि किन कर्मों से जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव-योनि में उत्पन्न होते हैं, परन्तु यह अवश्य जानता हूँ कि जीव अपने ही कर्मों से उत्पन्न होते हैं। हे माता-पिता! मैंने इसीलिए कहा कि जिसे मैं नहीं जानता, उसे जानता हूँ और जिसे जानता हूँ, उसे नहीं जानता। इसलिए हे माता-पिता! आपकी आज्ञा होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से दीक्षा लेना चाहता हूँ।'

विवेचन - जब माता पिता ने कहा कि - तुम्हारी गूढार्थ वाली रहस्यमयी बात हमारे कुछ समझ नहीं आयी है। तब अतिमुक्तक कुमार ने माता-पिता से कहा - 'हे माता-पिता! मैं जानता हूं कि जो जन्मा है वह कर्मों के वश होकर अवश्य मरेगा, यह तो जानने की बात हुई किंतु मैं यह नहीं जानता हूं कि प्रभात, संध्या आदि किस वेला में कब, गांव में, शहर में, जंगल में किस स्थान पर, बैठे-बैठे, सोते-सोते, चलते हुए, शस्त्र प्रयोग से, विष प्रयोग से यों ही किस निमित्त से कितने वर्ष बाद या महीने बाद या दिनों के बाद मृत्यु का वरण करेगा, यह मैं नहीं जानता हूं।

हे माता-पिता! मैं नहीं जानता हूं कि किन कर्मों के करने से, आत्मा में उन कर्मों के आयतन से, स्थान पा लेने से जीव नरक में, तिर्यंच में, मनुष्य में, देव में जाते हैं क्योंकि मुझे सभी गतियों में जाने के सभी हेतु कारणों का पूरा ज्ञान नहीं है परन्तु हे जननी-जनक! भगवान् की धर्मदेशना ने मुझे यह बताया ही है जिसके फलस्वरूप मैं जानता हूं कि जीव जैसे भले बुरे कर्म करता है, अपने किए हुए उन कर्मों के अनुसार ही नरक में जाता है या तिर्यंच में जाता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या मनुष्य शरीर धारण करता है या देवगति में उत्पन्न होता है। व्यक्ति का आचरण ही अपने भव, भावी का निर्णायक है क्योंकि कोई भी ईश्वर या अन्य कोई शक्ति उसे स्वर्ग या नरक में नहीं भेजती है। संख्यात, असंख्यात, अनंत भवों का भाता व्यक्ति स्वयं ही जुटाता है। इस प्रकार मैं नहीं जानता हूं, जीव कहां, किस कर्म के कारण जाता है पर मैं जानता हूं कि स्वकृत कर्मानुसार ही जीव अगले भव का आयुष्य बांध कर वहां जाता है।'

इस प्रकार समाधान कर कहा - 'हे पूज्य माता-पिता! मैं तत्त्व ज्ञान से बिल्कुल कोरा (अनभिज्ञ) नहीं हूं आप मुझे दीक्षित होने की आज्ञा देवें ताकि मैं दीक्षा ग्रहण कर सकूं, आपकी आज्ञा नहीं होने पर प्रभुजी मुझे दीक्षित नहीं करेंगे, अतः आप मुझे आज्ञा दीजिए।'

अतिमुक्तक की दीक्षा और सिद्धिगमन

(८१)

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे णो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं जाव तं इच्छामो ते जाया! एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए। तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। अभिसेओ जहा महाबलस्स णिक्खमणं जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूइं वासाइं सामण्णपरियाओ, गुणरयणं जाव विपुले सिद्धे।

॥ पण्णरसमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - णो संचाएंति - समर्थ नहीं होते हैं, **बहूहिं आघवणाहिं** - बहुत से युक्ति-प्रयुक्तियों से, **रायसिरिं** - राज्यश्री को, **अम्मापिउवयणमणुवत्तमाणे** - माता-पिता के वचन का अनुवर्तन करते हुए, **तुसिणीए** - मौन।

भावार्थ - माता-पिता अतिमुक्तक कुमार को अनेक प्रकार की युक्ति-प्रयुक्तियों से भी संयम लेने के दृढ़भाव से नहीं हटा सके, तब उन्होंने इस प्रकार कहा - 'हे पुत्र! हम एक दिन के लिए भी तुम्हारी राज्यश्री देखना चाहते हैं।' यह सुन कर अतिमुक्तक कुमार मौन रहे, तब माता-पिता ने उनका राज्याभिषेक - महाबल के समान - किया यावत् अतिमुक्तक कुमार ने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। फिर सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन किया तथा गुणरत्न संवत्सर आदि तपस्या की। अन्त में संथारा कर के विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

विवेचन - श्री भगवती सूत्र शतक ५ उ० ४ में अतिमुक्तक कुमार श्रमण का कतिपय वर्णन इस प्रकार है -

'भगवान् महावीर स्वामी के अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण प्रकृति के भद्र यावत् विनीत थे। एक बार वर्षा होने के बाद रजोहरण व पात्र लेकर शौच निवृत्ति हेतु गए।

वहां मार्ग में एक नाला बह रहा था, उन्होंने उस नाले के पानी को पाल बांधकर रोक लिया तथा अपना पात्र पानी में छोड़ कर **'मेरी नाव तिरे, मेरी नाव तिरे'** इस प्रकार वचन कहते हुए वहाँ खेलने लगे। स्थविर मुनियों ने बाल मुनि की क्रीड़ा देखकर भगवान् से आकर पूछा - 'अतिमुक्तक कितने भव करके मुक्त होंगे?'

भगवान् ने स्थविरों के मनोभाव जान कर फरमाया - 'अतिमुक्तक प्रकृति का भद्र यावत् विनीत है, यह चरम शरीरी है। इसी भव में सिद्ध बुद्ध और मुक्त होगा। आप इसकी हीलना, निंदा, गर्हा एवं अवमानना नहीं करें। संयम समाचारी का बोध नहीं होने के कारण ही तुम अग्लान भाव से अतिमुक्तक कुमार श्रमण को स्वीकार करो, उसकी सहायता करो तथा आहार पानी के द्वारा विनय पूर्वक वैयावृत्य करो।' स्थविर मुनियों ने भगवान् को वंदना नमस्कार किया एवं निर्देशानुसार कुमार श्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर वैयावृत्य करने लगे।

अतिमुक्तक मुनि ने पहले आवश्यक सूत्र के प्रथम आवश्यक रूप सामायिक आदि छह आवश्यक सीखे फिर आचारांग से विपाक पर्यन्त ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। भिक्षु की बारह प्रतिमाएं और सोलह महीनों में पूरे होने वाले गुणरत्न संवत्सर तप का आराधन किया। बहुत वर्षों तक संयम पर्याय पाली यावत् विपुल पर्वत पर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

॥ छठे वर्ग का पन्द्रहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोलसमं अज्झयणं – सोलहवां अध्ययन

अलक्ष

(८२)

उक्खेवओ सोलमस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसिए णयरीए, काममहावणे चेइए तत्थ णं वाणारसिए अलक्खे णामं राया होत्था।

कठिन शब्दार्थ - उक्खेवओ - उत्क्षेपक - प्रारंभ, **काममहावणे चेइए** - काम महावन नामक उद्यान।

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्ररूपित छठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन का भाव मैंने आपके श्रीमुख से सुना। अब कृपा कर के सोलहवें अध्ययन के भाव कहें।' श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! उस काल उस समय में वाणारसी नाम की नगरी थी। वहाँ काममहावन नामक उद्यान था। अलक्ष नाम का राजा राज़ करता था।'

अलक्ष राजा द्वारा भगवान् की पर्युपासना

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। तए णं अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ, धम्म-कहा।

कठिन शब्दार्थ - पज्जुवासइ - पर्युपासना करते हैं, **धम्म-कहा** - धर्मकथा।

भावार्थ - उस काल उस समय में श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी वाणारसी नगरी के बाहर काममहावन उद्यान में पधारे। परिषद् वंदन करने गई। महाराज अलक्ष भी कोणिक राजा के समान भगवान् को वन्दन करने को गये। वन्दन-नमस्कार कर भगवान् की सेवा करने लगे। भगवान् ने धर्म-कथा कही।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा और मोक्ष गमन

तए णं से अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा णिक्खंते, णवरं जेट्ठं पुत्तं रज्जे अहिसिंचइ, एक्कारस अंगाइं, बहुवासा-परियाओ जाव विपुले सिद्धे। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव छट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ छट्ठो वग्गो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - जहा उदायणे - उदायन के समान, **णिक्खंते** - दीक्षा ली, **जेट्ठं पुत्तं** - ज्येष्ठ पुत्र को, **रज्जे** - राज्य पर, **अहिसिंचइ** - स्थापित किया।

भावार्थ - धर्म उपदेश सुन कर राजा अलक्ष के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। इसके बाद अलक्ष राजा ने भगवान् के पास, उदायन राजा के समान दीक्षा अंगीकार की। उदायन की प्रव्रज्या और इनकी प्रव्रज्या में यह अन्तर है कि उदायन राजा ने तो अपना राज्य अपने भानेज को दिया था और इन्होंने अपना राज्य अपने ज्येष्ठ-पुत्र को दे कर दीक्षा अंगीकार की। उन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा बहुत वर्षों तक चारित्र-पर्याय का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

श्री सुधर्मा स्वामी, अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं - 'हे आयुष्मन् जम्बू! श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगड सूत्र के छठे वर्ग के ये भाव कहे हैं। जैसा मैंने सुना, वैसा तुम्हें कहा है।

विवेचन - "जहा कोणिए जाव धम्मकहा" - औपपातिक सूत्र में वर्णित कोणिक राजा के समान राजा अलक्ष ने भी प्रभु की सेवा में पहुँच कर पर्युपासना की। प्रभु ने धर्म कथा फरमाई।

"जहा उदायणे तहा णिक्खंते" - जिस प्रकार महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए। उदायन राजा का वर्णन भगवती सूत्र के शतक १३ उद्देशक ६ में आया है। उसके अनुसार उदायन सिन्धु - सौवीर आदि सोलह देशों का स्वामी था।

॥ छठे वर्ग का सोलहवां अध्ययन समाप्त॥

॥ इति छठा वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमो वग्गो - सातवां वर्ग

नंदा आदि रानियाँ

(८३)

जइ णं भंते! सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा -

नंदा तह नंदवई, नंदोत्तर-नंदसेणिया चेव।
मरुया सुमरुया महामरुया, मरुद्देवा य अट्ठमा॥१॥
भद्दा य सुभद्दा य, सुजाया सुमणाइया।
भूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणिय-भज्जाण णामाइं॥२॥

कठिन शब्दार्थ - तेरस अज्झयणा - तेरह अध्ययन, **सेणिय-भज्जाण** - श्रेणिक की रानियाँ, **णामाइं** - नाम वाली।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतगडसूत्र के छठे वर्ग के जो भाव कहे, वे मैंने आपके श्रीमुख से सुने। अब कृपा कर सातवें वर्ग के भाव कहिए?

सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें वर्ग में तेरह अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं - १. नन्दा २. नन्दवती ३. नन्दोत्तरा ४. नन्दश्रेणिका ५. मरुता ६. सुमरुता ७. महामरुता ८. मरुद्देवा ९. भद्रा १०. सुभद्रा ११. सुजाता १२. सुमनातिका और १३. भूतदत्ता।

ये तेरह नाम श्रेणिक राजा की रानियों के हैं। सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन इन्हीं के नाम के हैं।

दीक्षा एवं सिद्धि

जइ णं भंते! तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने पूछा - हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें वर्ग में तेरह अध्ययन कहे हैं, उनमें से प्रथम अध्ययन में क्या भाव कहे हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो णंदा णामे देवी होत्था, वण्णओ, सामी समोसढे। परिसा णिग्गया। तए णं सा णंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जाव हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता, जाणं दुरूहइ, जहा पउमावई जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ जाव सिद्धा।

भावार्थ - सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जम्बू! उस काल उस समय राजगृह नाम का नगर था। उसके बाहर गुणशीलक उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजा राज करता था। उसकी रानी का नाम नन्दा था। किसी समय वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वंदन के लिए निकली। भगवान् का आगमन सुन कर महारानी नन्दा अत्यन्त हृष्ट-तुष्ट एवं प्रसन्न हुई। उसने सेवक पुरुषों को बुलाया और धर्म रथ सजा कर जाने की आज्ञा दी। धर्म-रथ पर आरूढ़ हो कर नंदा रानी भी पद्मावती रानी के समान भगवान् को वंदन करने गई। भगवान् ने धर्म-कथा कही, जिसे सुन कर उसे वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। महाराजा श्रेणिक की आज्ञा ले कर उसने भगवान् से दीक्षा अंगीकार की। ग्यारह अंगों का अध्ययन कर बीस वर्ष तक संयम का पालन किया और सिद्ध हो गई।

एवं तेरस वि णंदागमेण णेयव्वाओ णिक्खेवओ॥

॥ सत्तमो वग्गो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - णंदागमेण - नंदा के अनुसार, **णेयव्वाओ** - जानने चाहिये, **णिक्खेवओ** - निक्षेपक - उपसंहार।

भावार्थ - इसी प्रकार नन्दवती आदि बारह अध्ययनों का भाव जानना चाहिए।

हे जम्बू! श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें वर्ग के भाव इस प्रकार कहे हैं।

विवेचन - श्रेणिक महाराज की तेरह ही भार्याओं ने दीक्षा ली। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। खूब तपस्याएं की। बीस वर्ष संयम पर्याय का पालन कर तेरह ही रानियाँ मोक्ष गई।

॥ सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन समाप्त॥
॥ इति सातवां वर्ग समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो वग्गो - आठवां वर्ग

प्रस्तावना

(८४)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। अट्ठमस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - श्री जम्बू स्वामी; श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं - 'हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदशा नामक आठवें अंग के सातवें वर्ग में जो भाव कहें, वे मैंने आप से सुने। अब आठवें वर्ग में भगवान् ने क्या भाव कहे हैं? सो कृपा कर फरमाइये।'

दस अध्ययनों के नाम

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा -

काली सुकाली महाकाली, कण्हा सुकण्हा महाकण्हा।
वीरकण्हा य बोद्धव्वा, रामकण्हा तहेव य।
पिउसेणकण्हा णवमी, दसमी महासेणकण्हा य॥

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं - 'हे आयुष्मन् जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अंतकृतदशा सूत्र के आठवें वर्ग में दस अध्ययनों का कथन किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. काली २. सुकाली ३. महाकाली ४. कृष्णा ५. सुकृष्णा ६. महाकृष्णा ७. वीरकृष्णा ८. रामकृष्णा ९. पितृसेनकृष्णा और १०. महासेनकृष्णा।

काली नामक प्रथम अध्ययन

(८५)

जइ णं भंते! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने फिर पूछा - 'हे भगवन्! आठवें वर्ग के दस अध्ययनों में से पहले अध्ययन में भगवान् ने क्या भाव कहे हैं?'

काली द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ णं चंपाए णयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया काली णामं देवी होत्था, वण्णओ। जहा णंदा जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमेहिं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - **भज्जा** - भार्या, **चुल्लमाउया** - लघुमाता।

भावार्थ - सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! उस काल उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। कोणिक राजा राज करता था। श्रेणिक राजा की रानी एवं कोणिक राजा की लघुमाता 'काली' देवी थी। काली देवी ने नन्दा रानी के समान श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप दीक्षा ले कर सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। वह उपवास, बेला, तेला आदि बहुत-सी तपस्याएँ करती हुई विचरने लगी।

विवेचन - सातवें वर्ग में वर्णित तेरह रानियां श्रेणिक महाराज की मौजूदगी में दीक्षित हुई थी। कोणिक महाराज द्वारा श्रेणिक महाराज को कारागृह में रखा गया था। माता चेलना द्वारा समझाए जाने पर वे गए तो थे पिता के बंधन काटने पर श्रेणिक ने समझा कि यह मुझे मारने आया है अतः वे अपनी अंगुली में रहे तालपुट जहर का सेवन कर गए।

पिता की मृत्यु का कोणिक को इतना पश्चात्ताप हुआ कि राजगृही में उनका मन नहीं लगा। वे मगध की राजधानी राजगृही को छोड़ कर चले गये और अंग देश की राजधानी चंपा में जा कर वहीं से राज्य का संचालन करने लगे। इस बीच हार हाथी को लेकर वेहल्लकुमार ननिहाल चले गए। वे कोणिक के सगे छोटे भाई थे। इस निमित्त से दस भाइयों के सहयोग से कोणिक महाराज ने अपने नाना चेड़ा राजा के विरुद्ध घमासान युद्ध किया। चेड़ा महाराज द्वारा प्रतिदिन काल, सुकाल, महाकाल, कृष्ण, सुकृष्ण, महाकृष्ण, वीरकृष्ण, रामकृष्ण, पितृसेनकृष्ण और महासेनकृष्ण एक के बाद एक क्रमशः दस कुमार मारे गए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से काली आदि रानियां अपने पुत्रों के विषय में पूछती है कि - 'हे भगवन्! हमारे पुत्र जो युद्ध में गये उनको हम जीवित देख पाएंगी या नहीं?'

भगवान् महावीर स्वामी ने 'पुत्र वध जान कर संयम लेगी' इसलिए उनकी मृत्यु का संवाद दिया। इस आठवें वर्ग की वह कालावधि है जब श्रेणिक महाराज नहीं थे। महाशिलाकंटक एवं रथमूसल संग्राम ने लाखों सुभटों को लील लिया था। दसों रानियों ने आत्म-संग्राम में विजय पाने के लिए जो भीम भैरव तपोनुष्ठान किए, वे इस वर्ग में वर्णित हैं।

चेलना रानी कोणिक की माता थी। काली रानी का विवाह बाद में होने से वे कोणिक की छोटी माता कही गई है। वे भी राजगृही से चम्पा नगरी में आकर रहने लगी थी। काल नामक उनके पुत्र युद्ध में गए हुए थे। काल की मृत्यु का संवाद सुनने पर कोणिक महाराज से आज्ञा प्राप्त कर नंदा के समान अत्यंत वैराग्य भाव के साथ काली रानी दीक्षित हुई। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत से उपवास बेले तेले आदि करके संयम तप से आत्मा पर रहे हुए कर्मदलिकों को धुन रही थी।

रत्नावली तप की आराधना

(८६)

तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी - "इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।" "अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।" तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - काली अज्जा - काली आर्या, **अज्जचंदणा** - आर्य चंदनबाला, **रयणावलिं** - रत्नावली, **तवोकम्मं** - तप कर्म।

भावार्थ - एक दिन वह काली आर्या, आर्य चन्दनबाला आर्या के पास आई और हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक बोली - 'हे पूज्या! आपकी आज्ञा हो, तो मैं रत्नावली तप करना चाहती हूँ।' तब चन्दनबाला आर्या ने उत्तर दिया - 'हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करो, किन्तु धर्मसाधना में प्रमाद मत करो।' आर्या चन्दनबाला की आज्ञा ले कर काली आर्या रत्नावली तप करने लगी।

प्रथम परिपाटी

तं जहा - चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता।

कठिन शब्दार्थ - **चउत्थं** - चतुर्थ भक्त - उपवास, **सव्वकामगुणियं** - सर्वकाम गुणित, **पारेइ** - पारणा किया, **पारित्ता** - पारणा करके, **छट्ठं** - षष्ठ भक्त - बेला, **अट्ठमं** - अष्टमभक्त-तेला, **अट्ठ छट्ठाइं** - आठ बेले, **दसमं** - चोला, **दुवालसमं** - पचोला, **चोद्दसमं**- छह, **सोलसमं** - सात, **अट्ठारसमं** - आठ, **वीसइमं** - नौ, **बावीसइमं** - दस, **चउवीसइमं**- ग्यारह, **छव्वीसइमं** - बारह, **अट्ठावीसइमं** - तेरह, **तीसइमं** - चौदह, **बत्तीसइमं** - पन्द्रह, **चोत्तीसइमं** - सोलह, **चोत्तीसं** - चौतीस।

भावार्थ - काली आर्या ने रत्नावली तप इस प्रकार किया - पहले उपवास किया और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पारणा किया। पारणा में विगयों का सेवन वर्जित नहीं था। पारणा कर के बेला किया, फिर पारणा कर के तेला किया, फिर आठ बेले किए। फिर उपवास किया। फिर बेला किया। फिर तेला किया। इस प्रकार अन्तर-रहित चोला किया पांच किये, छह किये, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह और सोलह किये। चौत्तीस बेले किए।

चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

भावार्थ - पारणा कर के सोलह दिन की तपस्या की। पारणा कर के फिर पन्द्रह दिन की तपस्या की। इस प्रकार पारणा करती हुई क्रमशः चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छह, पांच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। पारणा कर के फिर आठ बेले किए। पारणा कर के तेला किया। पारणा कर के फिर बेला किया। फिर पारणा कर के उपवास किया और फिर पारणा किया।

एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी, एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पढमा** - प्रथम, **परिवाडी** - परिपाटी, **एगेणं** - एक, **संवच्छरेणं** - संवत्सर (वर्ष), **तिहिं मासेहिं** - तीन माह, **बावीसाए** - बाईस, **अहोरत्तेहिं** - दिन, **अहासुत्तं**- सूत्रानुसार, **आराहिया** - आराधक।

भावार्थ - इस प्रकार काली आर्या ने रत्नावली तप की एक परिपाटी (लड़ी) की आराधना की। रत्नावली की यह एक परिपाटी एक वर्ष तीन महीना और बाईस दिन में पूर्ण होती है। इस एक परिपाटी में तीन सौ चौरासी दिन तपस्या के और अठासी दिन पारणा के होते हैं। इस प्रकार कुल चार सौ बहत्तर दिन होते हैं।

दूसरी परिपाटी

तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता एवं जहा पढमाए परिवाडिए तहा बीयाए वि णवरं सव्वत्थपारणए विगइवज्जं पारेइ जाव आराहिया भवइ।

कठिन शब्दार्थ - **तयाणंतरं** - तदनन्तर, **दोच्चाए** - दूसरी, **विगइवज्जं** - विगयवर्जित, **सव्वत्थपारणए** - सभी पारणों में।

भावार्थ - इसके बाद काली आर्या ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी प्रारम्भ की। उन्होंने पहले उपवास किया। उपवास का पारणा किया। पारणे में किसी भी प्रकार के विगय का सेवन नहीं किया अर्थात् दूध, दही, घी, तेल और मीठा - इन पांच विगयों का लेना बंद कर दिया। इस प्रकार उन्होंने उपवास का पारणा कर के बेला किया। पारणा किया। इस दूसरी परिपाटी के सभी पारणों में पांचों विगय का त्याग कर दिया। इसी प्रकार तेला किया। पारणा कर के आठ बेले किए। पारणा कर के उपवास किया। फिर बेला किया। तेला किया, फिर चार, पांच यावत् सोलह उपवास तक किये। फिर पन्द्रह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छह, पांच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। जिस प्रकार पहली परिपाटी की, उसी प्रकार दूसरी परिपाटी भी की, परन्तु इसमें सभी पारणें विगय-वर्जित किये।

तीसरी-चौथी परिपाटी

तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता अलेवाडं पारेइ, सेसं तहेव। एवं चउत्था परिवाडी, णवरं सव्वत्थपारणए आयंबिलं पारेइ। सेसं तं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - तच्चाए - तीसरी, **चउत्था** - चौथी, **अलेवाडं** - लेप रहित, **आयंबिलं**- आयम्बिल।

भावार्थ - इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी की। तीसरी परिपाटी में पारणे के दिन विगय का लेप मात्र भी छोड़ दिया। इसी प्रकार चौथी परिपाटी भी की, परन्तु इसके पारणे में आयम्बिल किया।

पढमम्मि सव्वकामपारणयं, बीइयए विगइवज्जं।
तइयम्मि अलेवाडं, आयंबिलओ चउत्थम्मि॥

भावार्थ - प्रथम परिपाटी में पारणे में सर्वकामगुण युक्त, दूसरी में विगय त्याग, तीसरी में लेप का भी वर्जन किया और चौथी आयंबिल से की गई।

विवेचन - रत्नावली तप की चार परिपाटियाँ -

१. **सर्वकामगुणित** - प्रणीत रस भोजन, सरस भोजन सब इन्द्रियों एवं शरीर को प्रह्लादकारी (आनंदकारी) होने से आगमकार उसे **'सव्वकामगुणियं'** कहते हैं। दूध, दही, घी, तेल, मिष्ठान्न आदि सब इन्द्रियों एवं शरीर को प्रह्लादानीय एवं सरस भोजन होने से साधु विधि से इन आहारों को ग्रहण करना सर्वकामगुणित है।

२. **विगयवर्जित** - दूध, दही, घी, मिष्ठान्नादि रूप धार विगय का वर्जन करते हुए लेपयुक्त शाक, रोटी, पुड़ी आदि ग्रहण करना विगयवर्जित है।

३. **अलेपाक** - चुपड़ी हुई रोटी एवं छौंक दिये हुए शाक आदि का वर्जन करते हुए, निर्विकृतिक (नीवी) प्रायोग्य, लूखी रोटी, बिना छौंक का शाक, लूणिया नींबू, बिना तेल की मिर्च, केरी प्रमुख के अथाणे (अचार), मक्खन निकाली हुई छाछ आदि ग्रहण करना अलेपाक है।

४. **आयंबिल** - विगय, घी, दूध, दही, तेल, गुड़ आदि सरस पदार्थ रहित लूखे व मिर्च मसाले तथा शाकादि से रहित यथासंभव अलूणी रोटी, भात, सेके हुए चने (भूंगड़े) आदि को पानी में डालकर एक ही बार आहार करना आयंबिल परिगृहीत है।

पहली परिपाटी में इन्द्रियों रूपी कामगुणों को पुष्ट करने वाले, तृप्ति देने वाले सभी प्रकार के कल्पनीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम मेवे, मिष्ठान्न ग्रहण किए जाते हैं। इसीलिये ये पारणे सर्वकामगुणित कहे जाते हैं। सिंह केसरा मोदक को सर्वकामगुणित आहार का उदाहरण समझना चाहिए।

विगय के दो भेद किए गये हैं - १. धार विगय और २. लेप विगय। दूसरी परिपाटी में धार विगय का त्याग होता है और लेप विगय खुले रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेवे विगयों में नहीं है। वे खादिम के पेटे में आते हैं। परिपाटियों के हिसाब से वे पहली व दूजी परिपाटी में लिए जाते हैं। तीसरी परिपाटी में नीवी है उसमें खादिम का वर्जन होता है। छाछ भी खादिम में गिनी तो जाती है पर नीवी में मक्खन निकली छाछ ग्रहण की जाती है। नीवी में घी, तेल, दूध, दही व मीठा पूरे पांच विगय तथा खादिम और स्वादिम छोड़े जाते हैं।

चौथी परिपाटी में आयंबिल से पारणे हैं। जहां नमक, मिर्च, हल्दी, खटाई आदि सभी का वर्जन है। लूखे, अलूणे पदार्थ ही आयंबिल में खाए जाते हैं।

धार विगय और लेप विगय के स्पष्टीकरण हेतु धार विगय और लेप विगय का ज्ञान बहुत उपयोगी है ताकि इस बात का खुलासा हो जाय कि कौनसी चीज धार विगय में है और कौनसी लेप विगय में है। अतः निम्न प्रश्नोत्तर ध्यान में लेने योग्य हैं -

प्रश्न - लेप विगय और धार विगय किसे कहते हैं? पांचों विगय में लेपविगय व धार विगय में क्या भिन्नताएं समझनी चाहिए?

उत्तर - **लेप विगय** - जिसमें घी, तेल, दूध, दही, मीठे का लेप अर्थात् अल्पमात्रा हो- उसे 'विगयवज्जं' (सलेवाडं) अर्थात् 'लेप विगय' कहते हैं।

धार विगय - जिसमें अधिक मात्रा में घृतादि विकृतियाँ मिली हुई है वे वस्तुएं 'धार विगय' कहलाती है।

लेप विगय वाली कुछ वस्तुएँ - छौंक-बघार वाले साग, कुछ मीठी दाल, कढ़ी, हल्का मीठा मेथी का साग, केरी, अमरूद का साग, साधारण चुपड़ी हुई रोटी, बाजरा, मक्का, ज्वार की रोटी (सोगरा), तले हुए पराठे, पुड़ी, खाखरे, पापड़, खीचिया, साधारण नमकीन, बड़े, कत्थे आदि वाली सौंफ, चूर्ण, चूर्ण की गोलियां, हल्का मीठा आंवला, बिना शक्कर का आम्ररस, पनीर व गुलाब जामुन का साग इत्यादि वस्तुएं लेप विगय वाली होती हैं।

धार विगय वाली कुछ वस्तुएँ - शुद्ध पांचों विगय, अधिक घृतादि युक्त रोटी, सोगरा, पराठा, बाटी, बाफला, सभी प्रकार की मिठाइयाँ, फिका मावा, फिकी फीनी, घेवर, खाजे, जलेबी, साकली, गुलगुले, शकरपारे (दहीथरा), छुन्दा, कैरीपाक, छूना (दूधिया खीच-फीका व मीठा) सभी मुरब्बे, शर्बत, शिकंजी, शर्बत, टेंग पाउडर, खीर, मीठा चावल, मीठी थूली, लापसी, गन्ने का रस, खजूर की चक्की, लड्डू इत्यादि वस्तुएं तथा - मिश्री, शक्कर, ओले, चिपड़ा, ग्लूकोज, इलेक्ट्रॉल आदि, शक्कर के व गुड़ के सभी प्रकार, मीठे धार विगय में समझे जाते हैं। मक्खन नहीं निकाला हो - ऐसा दही का झोलिया भी दही की धार विगय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिना जाता है। (कारण ऐसे झोलियों में चाहे दही का अल्प अंश भी दिखता हो, अथवा वसा (क्रीम) मलाई निकाले हुए दूध को जमाकर भी दही बनाया जाता हो - उसका झोलिया हो तो भी उसमें अमुक मात्रा में वसा तो रहती ही है)।

धारविगय का अर्थ एवं स्वरूप - जो सरस आहार हो, ब्रह्मचर्य की नववाड़ों (विशेष रूप से सातवीं वाड़) में साधु को जिस आहार का प्रतिदिन सेवन का निषेध किया गया है। उस आहार को 'धार-विगय' शब्द में रूढ़ समझना चाहिए। ऐसा समझने पर दही, मिष्ठान्न, ठसा, (थीणा) घी, गुड़, शक्कर आदि की धार नहीं बनने पर भी प्रणीत आहार होने से ये भी धार विगय में गिने जाते हैं। जैसे घी, गुड़, शक्कर के व्यापार को भी 'रसवाणिज्य' बताया है। वैसे ही ये रस होने से इन्हें 'धारविगय' संज्ञा दी जाना संभव है। दाल, शाक आदि में जो गुड़, शक्कर डाला जाता है, वह 'धारविगय' नहीं होता है। वह तो अल्पांश में होने से 'लेपविगय' में गिना जाता है।

प्रश्न - 'निव्विगई' में कौन-कौन सी वस्तुएं खाने के काम आ सकती है?

उत्तर - 'निव्विगई' में पांचों विगय एवं **खाइमं, साइमं** का वर्जन किया जाता है। बिना तेल के नींबू (लूणिया, चौफाड़िया आदि) मिर्च फुटाने (चने-भुगड़े) की चटनी, बिलौने की छाछ, गर्म छाछ, राब (पलेब) घाट, थूली, दलिया, पटोलिया, बिना घी का रंधेज, तेल आदि के छौंक से रहित - इडली डोसा, खमण, दाले आदि, बिलौने की छाछ की कढ़ी, पापड़, खीचिया, जीरावण (सेका हुआ जीरा नमक) कैर (उबाली, बिना उबाली, सीधा) पचकुटा (बिना छौंक का) इत्यादि वस्तुएं [सूंठ, काली मिर्च, पीसी हुई हल्दी, सूखे आँवले-बिना नमकीन के सादे, त्रिफला, जौ, हरड़े आदि वस्तुएं औषध के रूप में ही ग्रहण की जा सकती है, अन्यथा नहीं] उपर्युक्त वस्तुओं में से कोई भी वस्तु सहज में मिल जाने पर नीवी में काम में ली जा सकती है। गृहस्थों को नीवी में लिलोती का प्रायः वर्जन ही रखना चाहिए। साधुओं के दाल आदि में मिश्रण होने से वर्जन संभव नहीं है। साधु साध्वियों के लिए हरे धनियाँ की चटनी भी काम आ सकती है। छाछ (मही) सामान्य रूप से 'खाइमं' में होते हुए भी विगयादि एवं मेवे के अंश रूप में भी नहीं होने से 'निव्विगइ' में काम ले सकते हैं। नमक युक्त चावल की मांड - नीवी में एवं नमक रहित चावल की मांड आयंबिल में ले सकते हैं।

प्रश्न - **खाइमं** और **साइमं** में किन्न-किन्न वस्तुओं को समझना चाहिए?

उत्तर - **खाइमं** में सभी प्रकार के फल, मेवे सभी प्रकार के तिलहन, शर्बत, फलों के रस,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूध, दही, मुरब्बे, शिकंजी, सूखे मीठे आंवले, गुड़ (गुड़ के सभी प्रकार - कक्कावादि) शक्कर (शक्कर के सभी प्रकार) गूंद, गूंद के फूले, मधु, मक्खन, घी, छाछ, बिना अन्न की मिठाइयाँ, केले व आलू के चिप्स, गोली, टॉफी, चॉकलेट, मिश्री, मखाणा, तिल पपड़ी, तिल के लड्डू, आम के पापड़, सिघाड़े की सेव, साबूदाना (जिसमें भी मिले हो वे सब प्रकार के साबूदानें) ग्लूकोज, टेंगपाऊडर, इलेक्ट्राल, गन्ने का रस, नारियल का पानी, ताड़ के फल का पानी, (ताड़ के फल में तीन फल निकलते हैं) इमली, इमली का रस, मतीरे के बीज की चक्की, छूंदा, कैरीपाक, ठंडाई (खसखस की), खरबूजे आदि के बीज इत्यादि वस्तुएं 'खाइमं' में गिनी जाती है। (लघु प्रवचन सारोद्धार की गाथा ४७-४८ में हरे पत्तों वाले साग को भी 'खाइमं' में गिनाया है।)

साइमं में लौंग, सुपारी, इलायची, पान चूरी, पान तांबूल, सौंफ, सौंफ की कूली, धनिया, धनिया की दाल, धनिया की कूली, बल्वण, नमक आदि खटाई, चूर्ण, अनारदाना आदि हाजमोला, स्वाद इत्यादि पाचक मुखवास की वस्तुएं सुआ, पीपर, सूंठ, नमकीन आंवला, नींबू आदि में पकाई हुई वस्तुएं 'साइमं' में समझी जाती है।

तए णं सा काली अज्जा रयणावलीतवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

भावार्थ - इस प्रकार काली आर्या ने रत्नावली तप की चारों परिपाटी पांच वर्ष दो मास और अट्ठाईस दिन में पूर्ण कर के चन्दनबाला आर्या के पास उपस्थित हुई और वंदन-नमस्कार किया। फिर बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि तपस्याओं से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

विवेचन - रत्नावली तप कर्म का स्वरूप सूत्र एवं अर्थ से ऊपर दिया गया हैं। तपस्या के दिन एवं पारणे के दिनों की संयुक्त संख्या १ वर्ष ३ महीने २२ दिन दी गई है। इसमें तपस्या के दिनों का परिमाण इस प्रकार हैं -

१+२+३+(८×२=)१६+१+२+३+४+५+६+७+८+९+१०+११+१२+१३+१४+१५+१६+(३४×२=) ६८+१६+१५+१४+१३+१२+११+१०+९+८+७+६+५+४+३+२+१+(८×२=)१६+३+२+१=३८४ दिन। पारणे के दिनों का परिणाम इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१+१+१+८+१६+३४+१६+८+३=८८ दिन।

इस प्रकार ३८४+८८=४७२ दिनों में रत्नावली तप की एक परिपाटी होती है।

रत्नावली तप

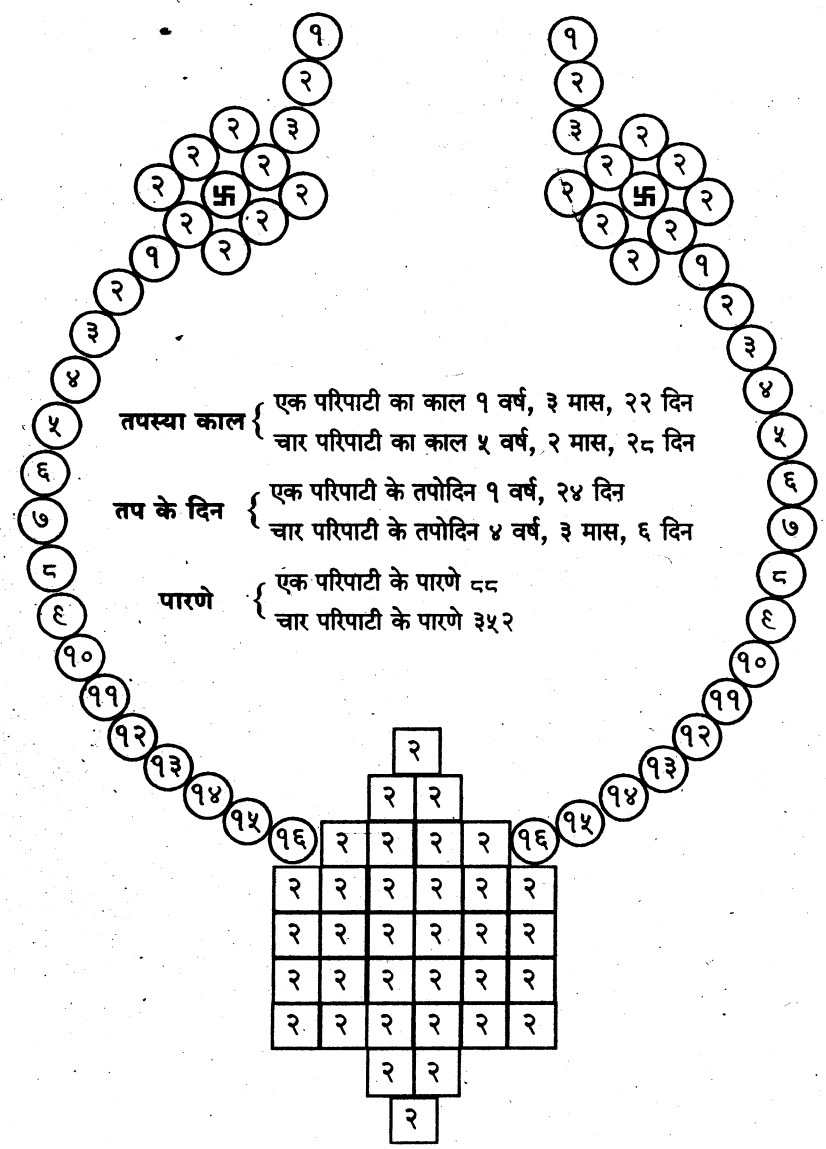

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नावली तप की स्थापना

क्रं.	तप	क्रं.	तप	क्रं.	तप	क्रं.	तप
१	उपवास	२३	बारह	४५	बेला	६७	ग्यारह
२	बेला	२४	तेरह	४६	बेला	६८	दस
३	तेला	२५	चौदह	४७	बेला	६९	नौ
४	बेला	२६	पन्द्रह	४८	बेला	७०	आठ
५	बेला	२७	सोलह	४९	बेला	७१	सात
६	बेला	२८	बेला	५०	बेला	७२	छह
७	बेला	२९	बेला	५१	बेला	७३	पांच
८	बेला	३०	बेला	५२	बेला	७४	चोला
९	बेला	३१	बेला	५३	बेला	७५	तेला
१०	बेला	३२	बेला	५४	बेला	७६	बेला
११	बेला	३३	बेला	५५	बेला	७७	उपवास
१२	उपवास	३४	बेला	५६	बेला	७८	बेला
१३	बेला	३५	बेला	५७	बेला	७९	बेला
१४	तेला	३६	बेला	५८	बेला	८०	बेला
१५	चोला	३७	बेला	५९	बेला	८१	बेला
१६	पचोला	३८	बेला	६०	बेला	८२	बेला
१७	छह	३९	बेला	६१	बेला	८३	बेला
१८	सात	४०	बेला	६२	सोलह	८४	बेला
१९	आठ	४१	बेला	६३	पन्द्रह	८५	बेला
२०	नौ	४२	बेला	६४	चौदह	८६	तेला
२१	दस	४३	बेला	६५	तेरह	८७	बेला
२२	ग्यारह	४४	बेला	६६	बारह	८८	उपवास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तप तेज से शरीर की शोभा

(८७)

तए णं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं जाव धमणिसंतया जाया या वि होत्था। से जहा णामए इंगाल सगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासि पलिच्छण्णा तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणी उवसोभेमाणी चिट्ठइ।

कठिन शब्दार्थ - **ओरालेणं** - उदार (प्रधान), **धमणिसंतया जाया** - धमनियां (नाडियां) प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी, **इंगाल सगडी** - कोयले से भरी गाड़ी, **सुहुयहुयासणे** - होम की हुई अग्नि के समान, **भासरासि पलिच्छण्णा** - राख के ढेर से ढकी हुई अग्नि, **तवेणं** - तप से, **तेएणं** - तेज से, **तवतेयसिरीए** - तप तेज की शोभा से, **अईव अईव** - बहुत बहुत, **उवसोभेमाणी** - शोभित हो रही थी।

भावार्थ - इस प्रकार महान् तपस्या से काली आर्यिका का शरीर प्रायः मांस और रक्त से रहित हो गया। उनके शरीर की धमनियाँ (नाड़ियाँ) प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी। वह सूख कर अस्थिपञ्जर (हड्डियों का ढाँचा) मात्र शेष रह गई। उठते, बैठते, चलते, फिरते, उनके शरीर की हड्डियों से 'कड़कड़' शब्द होता था। जिस प्रकार सूखे काष्ठों से या सूखे पत्तों से अथवा कोयलों से भरी हुई चलती गाड़ी से ध्वनि होती है, उसी प्रकार उसके शरीर की हड्डियों से भी ध्वनि होने लग गई। यद्यपि श्री काली आर्या का शरीर मांस और रक्त के सूख जाने के कारण रूक्ष हो गया था, तथापि भस्म से आच्छादित अग्नि के समान तप-तेज की शोभा से अत्यन्त शोभित हो रहा था।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में काली आर्या की दीर्घ तपस्या के बाद शारीरिक स्थिति का वर्णन किया गया है।

'इंगालसगडी वा जाव सुहुय हुयासणे' से अनुत्तरोपपातिक सूत्र में वर्णित धन्ना अनगार के शरीर के अंगोपांगों की भलामण दी गई है। तप के कारण काली आर्या का शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया था किंतु तप तेज की शोभा से वह बहुत शोभित हो रही थी।

कमलकोमल राजरानियाँ जिन्होंने सूर्यधूप की अनुभूति नहीं की, भूख-प्यास एवं सर्दी गर्मी का परिचय नाम जानने तक ही सीमित था। दूध से कुल्ले करने वाली काली आर्या सरीखी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुकुमारशरीरी आत्माएं संयम स्वीकार करके अपना अस्तित्त्व ही बदल देती प्रतीत होती है। घोर तप से कर्मों को तप्त करती हुई भी वे तप्त नहीं होती। मुक्ति प्राप्ति का अटल उत्तुंग अभिग्रह धारण कर वे कर्म-कटक में वीरवरबाला की भांति जूंझती है। संयम समरांगण की श्रेष्ठ सुभट सिद्ध होती है। जब लक्ष्य महान् हो, साधक दृढ़ संकल्प एवं कृतनिश्चय से युक्त हो तो सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

काली आर्या का धर्मचिंतन

(८८)

तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले अयमज्झत्थिए जहा खंदयस्स चिंता जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा धिई संवेगे वा ताव मे सेयं कल्लं जाव जलंते अज्ज-चंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्ज-चंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाए समाणीए संलेहणा झूसणाझूसियाए भत्तपाणपडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अज्ज चंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - "इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा जाव विहरित्तए।" "अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।"

तओ काली अज्जा अज्ज-चंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा झूसणा झूसिया जाव विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - **पुव्वरत्तावरत्तकाले** - पिछली रात्रि के समय, **जहा खंदयस्स चिंता**- स्कंदक के समान विचार आया, **उट्ठाणे** - उत्थान - उठना चेष्टा करना, **कम्मे** - भ्रमण आदि की क्रिया रूप कर्म, **बले** - शरीर सामर्थ्य, **वीरिए** - वीर्य - जीव की शक्ति आंतरिक सामर्थ्य, **पुरिसक्कार** - पुरुषकार - पौरुष आत्मोत्कर्ष, **परक्कमे** - पराक्रम - कार्य निष्पत्ति में सक्षम प्रयत्न, **सद्धा** - श्रद्धा, **धिई** - धृति अर्थात् धीरज, शारीरिक कष्टों को सहने योग्य मानसिक उर्जा, **सेयं** - श्रेयस्कारी, **संलेहणा** - संलेखना, **झूसणा** - सेवन करना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भत्तपाणपडियाइक्खियाए- आहार पानी का त्याग करके, **कालं** - काल - मृत्यु की, **अणवकंखमाणीए** - चाहना नहीं करती हुई।

भावार्थ - एक दिन पिछली रात्रि के समय काली आर्या के हृदय में स्कन्दक के समान इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ - "तपस्या के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। इसलिए जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग आदि विद्यमान है, तब तक मुझे उचित है कि कल सूर्योदय होते ही आर्य चन्दनबाला आर्या को पूछ कर उनकी आज्ञा से संलेखना - झूषणा को सेवित करती हुई भक्तपान का प्रत्याख्यान कर के, मृत्यु को न चाहती हुई विचरण करूँ" - ऐसा विचार कर दूसरे दिन सूर्योदय होते ही वह आर्य चन्दनबाला आर्या के पास आई और वन्दन-नमस्कार कर हाथ जोड़ कर बोली - 'हे आर्ये! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर संलेखना-झूषणा करना चाहती हूँ।' आर्य चन्दनबाला आर्या ने कहा - 'हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो। धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो।' आर्य चन्दनबाला से आज्ञा प्राप्त कर काली आर्या ने संलेखना की।

पंडित मरण और मोक्ष गमन

सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे जाव चरिमेहिं उस्सासणीसासेहिं सिद्धा।

कठिन शब्दार्थ - अट्ठ संवच्छराइं - आठ वर्ष, **चरिमेहिं उस्सासणीसासेहिं** - अंतिम श्वासोच्छ्वासों में।

भावार्थ - काली आर्या ने आर्य चन्दनबाला आर्या से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्र का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना से आत्मा को सेवित कर, साठ भक्तों को अनशन से छेदन कर जिस अर्थ के लिए संयम ग्रहण किया था, उस अर्थ को अपने अन्तिम उच्छ्वासों में प्राप्त कर के वह सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त हो गई।

॥ आठवें वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीयं अज्झयणं - द्वितीय अध्ययन

सुकाली आर्या

(८९)

उक्खेवओ बीयस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी। पुण्णभद्दे चेइए, कोणिए राया। तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली णामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खंता जाव बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ॥

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! आठवें वर्ग के दूसरे अध्ययन का क्या भाव है?'

सुधर्मा स्वामी ने कहा - "हे जम्बू! उस काल उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नाम का चैत्य था। कोणिक राजा राज करते थे। श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता 'सुकाली' रानी थी। जिस प्रकार काली रानी प्रव्रजित हुई थी, उसी प्रकार सुकाली रानी भी प्रव्रजित हुई और बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि तपस्या करती हुई विचरने लगी।"

कनकावली तप की आराधना व सिद्धि

(९०)

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, णवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहा रयणावलीए छट्ठाइं। एक्काए परिवाडिए संवच्छरो पंच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मासा बारस य अहोरत्ता। चउण्हं पंच वरिसा णव मासा अट्ठारस दिवसा, सेसं तहेव। णव वासा परियाओ जाव सिद्धा।

कठिन शब्दार्थ - कणगावली - कनकावली, **णवरं** - विशेषता है, **तिसु ठाणेसु** - तीन स्थानों पर, **अट्ठमाइं** - तेले।

भावार्थ - एक समय सुकाली आर्या, चन्दनबाला आर्या के समीप गई और वंदन-नमस्कार कर हाथ जोड़ कर बोली - 'हे महाभागे! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर कनकावली तप करना चाहती हूँ।' उत्तर में उन्होंने कहा - 'जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।' इसके बाद सुकाली आर्या ने काली आर्या द्वारा आराधित रत्नावली तप के समान 'कनकावली' तप किया। रत्नावली तप से कनकावली तप में यह विशेषता है कि रत्नावली तप में जहां तीन स्थानों पर आठ-आठ और चौंतीस बेले किए जाते हैं, वहाँ कनकावली तप में उतने ही तेले किए जाते हैं। इस कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष, पांच महीने और बारह दिन लगते हैं। इसमें अठासी दिन पारणे के और एक वर्ष दो महीने और चौदह दिन तपस्या के होते हैं। चारों परिपाटी को पूरा करने में पांच वर्ष नौ महीने और अठारह दिन लगते हैं।

शेष सारा वर्णन काली आर्या के समान हैं। नौ वर्ष चारित्र का पालन कर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

विवेचन - जैसे रत्नावली तप ८८ पारणों के साथ चार परिपाटी वाला है वैसे ही कनकावली तप भी है पर विशेषता यह है कि रत्नावली तप में जहां आठ, चौतीस और आठ बेले होते हैं वहां तीनों स्थानों पर कनकावली तप में तेले होते हैं। कनकावली तप में ५० दिन ज्यादा लगने के कारण इसकी एक परिपाटी में एक वर्ष, पांच मास बारह दिन लगे और चार परिपाटियों में ५ वर्ष ९ माह १८ दिन लगे। शेष सारा वर्णन सरल है। ९ वर्ष संयम पाल कर सुकाली आर्या मोक्ष में गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कनकावली तप

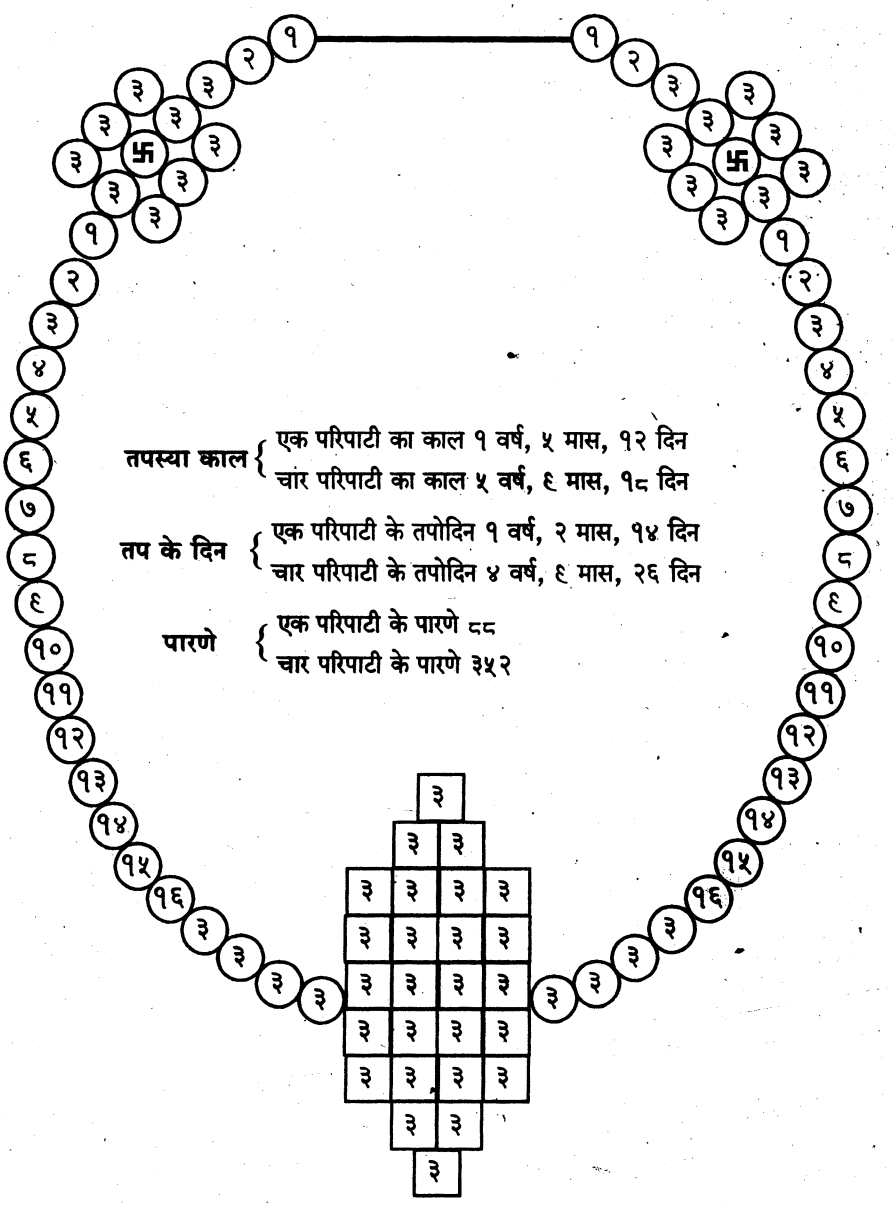

॥ आठवें वर्ग का दूसरा अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तइयं अज्झयणं - तृतीय अध्ययन

महाकाली आर्या

(९१)

एवं महाकाली वि, णवरं खुड्डाग-सीह-णिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तं जहा - चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता।

कठिन शब्दार्थ - खुड्डाग-सीह-णिक्कीलियं - लघुसिंह निष्क्रीडित।

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! आठवें वर्ग के तीसरे अध्ययन का क्या भाव है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुधर्मा स्वामी ने कहा - 'हे जम्बू! तीसरे अध्ययन में महाकाली रानी का वर्णन है। वह श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटा माता थी। उन्होंने भी सुकाली रानी के समान दीक्षा धारण की और 'लघुसिंह-निष्क्रीड़ित' नामक तप किया। वह इस प्रकार है - सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा किया। इसकी भी पहली परिपाटी के सभी पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं था, फिर बेला किया। पारणा कर के उपवास किया। फिर पारणा कर के तेला किया। इस प्रकार बेला, चोला, तेला, पचोला, चोला, छह, पांच, सात, छह, आठ, सात, नौ और आठ किये।

वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

भावार्थ - फिर नौ, सात, आठ, छह, सात, पांच, छह, चार, पांच, तीन, चार, दो, तीन, दो और उपवास किया। इस प्रकार लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की एक परिपाटी की।

तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव सिद्धा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - एक परिपाटी में छह महीने और सात दिन लगे। जिससे पारणे के तेतीस दिन और तपस्या के पांच मास और चार दिन हुए। इस प्रकार महाकाली आर्या ने चार परिपाटी की, जिसमें दो वर्ष और अट्ठाईस दिन लगे।

इस प्रकार महाकाली आर्या ने लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की सूत्रोक्त विधि से आराधना की। तत्पश्चात् महाकाली आर्या ने अनेक प्रकार की फुटकर तपस्याएं की। अन्त में संथारा कर के सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त हुई।

विवेचन - महाकाली आर्या ने लघुसिंह निष्क्रीडित तप की आराधना की। छोटा सिंह का बच्चा कुछ कदम आगे जाता है फिर पीछे हटता है। इस प्रकार आगे-पीछे, बढ़ते घटते के समान यह तप इस प्रकार होता है -

क्रं.	तप	क्रं.	तप	क्रं.	तप	क्रं.	तप
१	उपवास	६	चौला	१७	अठाई	२५	चार
२	बेला	१०	छह	१८	नव	२६	पांच
३	उपवास	११	पांच	१६	सात	२७	तेला
४	तेला	१२	सात	२०	अठाई	२८	चोला
५	बेला	१३	छह	२१	छह	२६	बेला
६	चौला	१४	अठाई	२२	सात	३०	तेला
७	तेला	१५	सात	२३	पांच	३१	उपवास
८	पचोला	१६	नव	२४	छह	३२	बेला
						३३	उपवास

रत्नावली, कनकावली तप की तरह इसकी भी चार परिपाटियां होती हैं। एक परिपाटी में छह माह व सात दिन लगते हैं। चारों परिपाटियों में २ वर्ष २८ दिन लगे। दस वर्ष दीक्षा पाल कर महाकाली रानी सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप

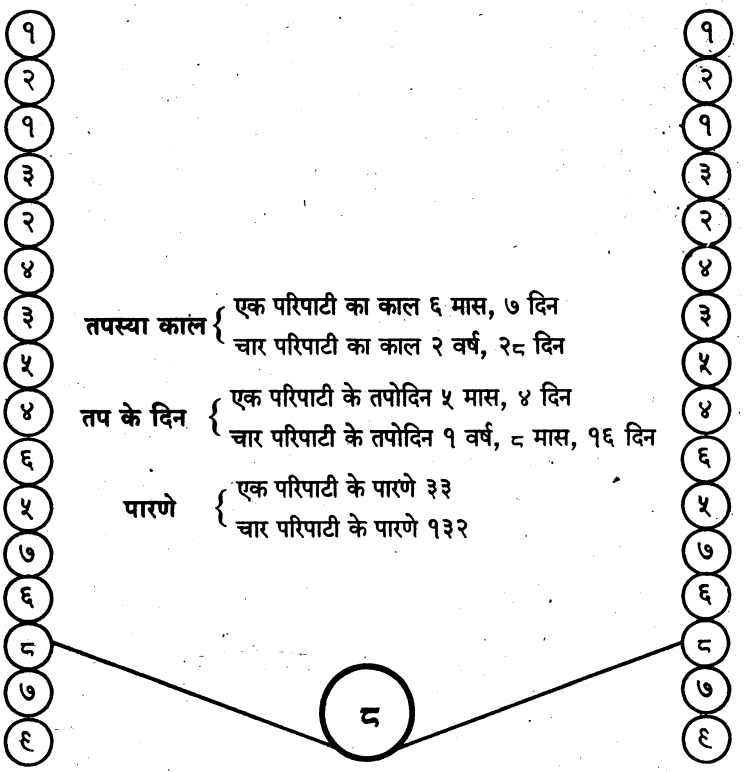

तपस्या काल { एक परिपाटी का काल ६ मास, ७ दिन
चार परिपाटी का काल २ वर्ष, २८ दिन

तप के दिन { एक परिपाटी के तपोदिन ५ मास, ४ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन १ वर्ष, ८ मास, १६ दिन

पारणे { एक परिपाटी के पारणे ३३
चार परिपाटी के पारणे १३२

॥ आठवें वर्ग का तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थं अज्झयणं - चौथा अध्ययन

कृष्णा आर्या

(६२)

एवं कण्हा वि, णवरं महासीह-णिक्कीलियं तवोकम्मं जहेव खुड्डागं, णवरं चोत्तीसइमं जाव णेयव्वं, तहेव ऊसारेयव्वं, एक्काए परिवाडीए एगं वरिसं छम्मासा अट्ठारस य दिवसा। चउण्हं छ वरिसा दो मासा बारस य अहोरत्ता, सेसं जहा कालीए जाव सिद्धा।

कठिन शब्दार्थ - महासीह-णिक्कीलियं - महासिंह-निष्क्रीडित, **ऊसारेयव्वं** - उतरा जाता है।

भावार्थ - इस प्रकार कृष्णादेवी का भी चरित्र जानना चाहिए। यह भी श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। दीक्षा ले कर आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त करके 'महासिंह-निष्क्रीड़ित' तपस्या की। जिस प्रकार लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की विधि है, उसी प्रकार महासिंह-निष्क्रीड़ित तप की भी है। विशेषता यह है कि लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप में एक उपवास से ले कर नौ उपवास तक ऊपर चढ़ कर उसी क्रम से पीछे उतरा जाता है। किन्तु महासिंह-निष्क्रीड़ित तप में एक उपवास से ले कर सोलह उपवास तक ऊपर चढ़ कर फिर उसी क्रम से नीचे उतरा जाता है। उसकी विधि इस प्रकार है - सर्वप्रथम उपवास किया, पारणा कर के बेला किया। पारणा कर के उपवास किया। इस प्रकार तेला, बेला, चोला, तेला, पचोला, चोला, छह, पांच, सात, छह, आठ, सात नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह, दस, बारह, ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पन्द्रह, चौदह, सोलह, पन्द्रह, सोलह, चौदह, पन्द्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह, बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छह, सात, पांच, छह, चोला, पचोला, तेला, चोला, बेला, तेला, उपवास, बेला और उपवास। इस प्रकार एक परिपाटी की। जिसमें एक वर्ष, छह महीने और अठारह दिन लगे। इसमें इकसठ पारणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए। एक वर्ष चार महीने और सतरह दिन तपस्या हुई। चार परिपाटियों में छह वर्ष, दो महीने और बारह दिन लगे।

इस प्रकार कृष्णा आर्या ने महासिंह-निष्क्रीड़ित तप की विधिपूर्वक आराधना की। अन्त में संथारा कर के काली आर्या के समान ये भी मोक्ष प्राप्त हुई।

विवेचन - महासिंह निष्क्रीड़ित तप का स्वरूप इस प्रकार है - सिंह का बच्चा थोड़ा चलता है अतः उससे उपमित कर तप विशेष को लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप कहा गया है। बड़ा शेर ज्यादा चलता है अतः उसके समान तप को महासिंह-निष्क्रीड़ित तप कहा जाता है। जब सिंह मस्ती में होता है तो कुछ कदम आगे भरता है, कुछ डग पीछे भरता है, इस प्रकार इन दोनों तपों में दो कदम आगे भरते हुए एक कदम पीछे हटने का स्वरूप दर्शाया गया हैं।

चित्र पीछे देखें।

॥ आठवें वर्ग का चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

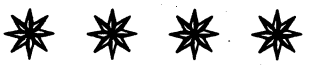

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

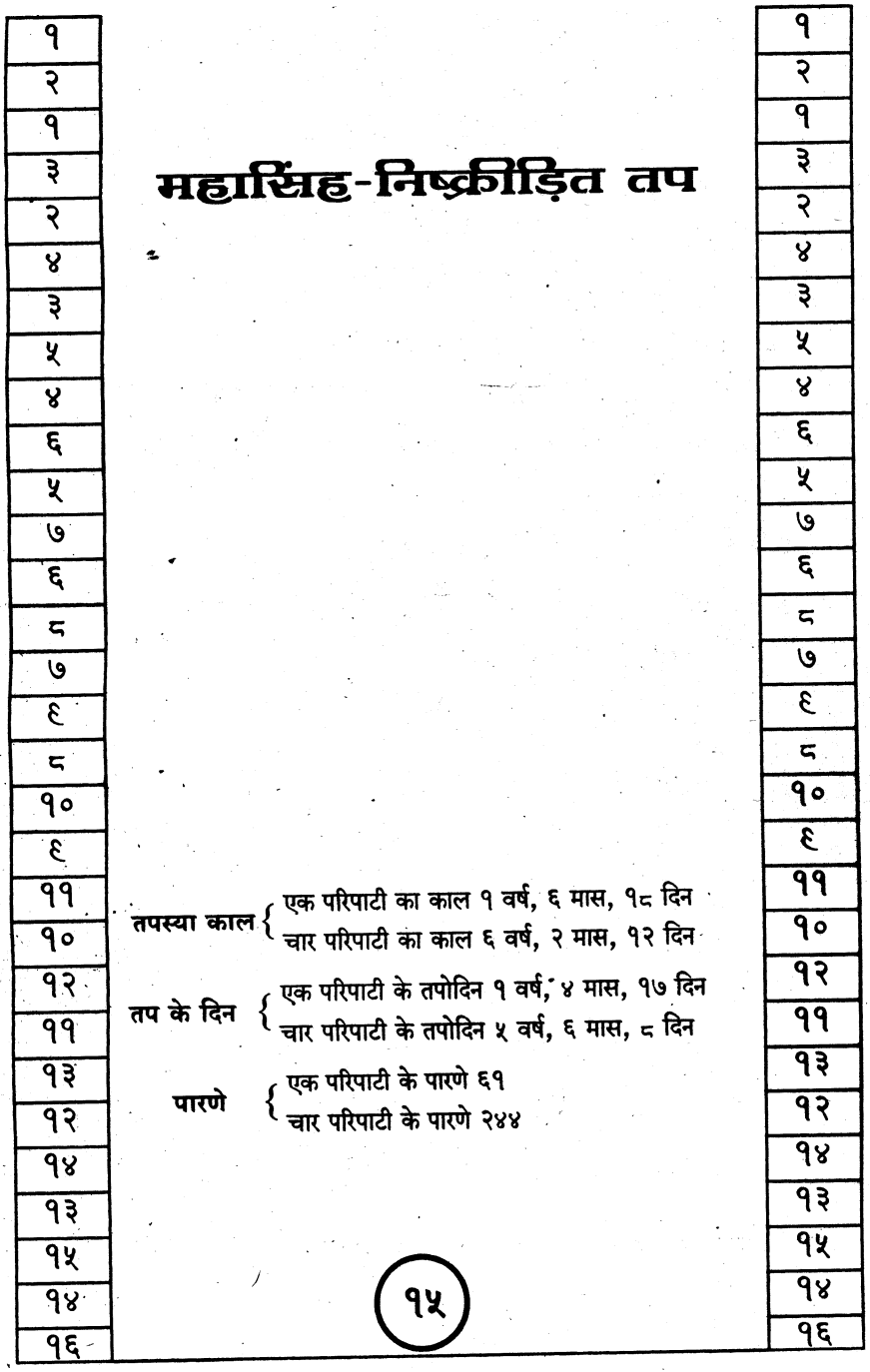

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचमं अज्झयणं - पांचवां अध्ययन

सुकृष्णा आर्या

(९३)

एवं सुकण्हा वि, णवरं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स। दोच्चे सत्तए दो-दो भोयणस्स दो-दो पाणगस्स। तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स तिण्णि पाणगस्स। चउत्थे चउ, पंचमे पंच, छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ, सत्त पाणगस्स।

कठिन शब्दार्थ - **सत्तसत्तमियं** - सप्तसप्तमिका, **भिक्खुपडिमं** - भिक्षु-प्रतिमा, **सत्तए**- सप्ताह, **एक्केक्कं** - एक-एक, **दत्तिं** - दत्ति (दात) को, **भोयणस्स** - भोजन की, **पाणगस्स**- पानी की, **सत्तमे सत्तए** - सातवें सप्ताह में।

भावार्थ - इसी प्रकार सुकृष्णा आर्या का भी चरित्र जानना चाहिए। यह भी श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होंने भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर दीक्षा अंगीकार की और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर 'सप्तसप्तमिका' भिक्षु-प्रतिमा तप करने लगी। इसकी विधि यों है - प्रथम सप्ताह में गृहस्थ के घर से प्रतिदिन एक दत्ति अन्न और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह में प्रतिदिन दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। तीसरे सप्ताह में प्रतिदिन तीन-तीन दत्ति, चौथे सप्ताह में चार-चार, पाँचवें सप्ताह में पाँच-पाँच, छठे सप्ताह में छह-छह दत्ति और सातवें सप्ताह में प्रतिदिन सात-सात दत्ति अन्न और पानी की ग्रहण की जाती है।

विवेचन - देते समय एक बार में जो दिया जाये वह दत्ति है। पहली बार में चाहे एक रोटी उठाई या चार रोटियां एक साथ उठाई, वह एक दत्ति है। तरल पदार्थों की धार न टूटे तब तक एक दत्ति है।

एवं खलु सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी- ''इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।'' ''अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेह''।

कठिन शब्दार्थ - एगूणपण्णाए - उनपचास, **राइंदिएहिं** - रात दिन में, **एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं** - एक सौ छियानवें भिक्षा की दत्तियां, **अहासुत्तं** - सूत्रोक्त विधि के अनुसार, **अट्ठट्ठमियं** - अष्ट अष्टमिका।

भावार्थ - उनपचास रात-दिन में एक सौ छियानवें भिक्षा की दत्ति होती है। सुकृष्णा आर्या ने इसी प्रकार सूत्रोक्त विधि के अनुसार 'सप्तसप्तमिका' भिक्षुप्रतिमा की यथावत् आराधना की। आहार-पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह में सात दत्तियाँ हुई, दूसरे सप्ताह में चौदह, तीसरे में इक्कीस, चौथे में अट्ठाईस, पाँचवें में पैंतीस, छठे में बयालीस और सातवें में उनपचास। इस प्रकार सभी मिलाकर एक सौ छियानवें दत्तियाँ हुईं।

सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा

१	१	१	१	१	१	१	७
२	२	२	२	२	२	२	१४
३	३	३	३	३	३	३	२१
४	४	४	४	४	४	४	२८
५	५	५	५	५	५	५	३५
६	६	६	६	६	६	६	४२
७	७	७	७	७	७	७	४९

४९ दिवस * १९६ दत्तियाँ

इसके बाद सुकृष्णा आर्या, आर्य चन्दनबाला आर्या के समीप आई और वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोली - 'हे पूज्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त कर मैं अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा तप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करना चाहती हूँ।' आर्य चन्दनबाला आर्या ने कहा - "हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा करो, धर्म-कार्य में प्रमाद मत करो।"

तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स दत्तिं जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ अट्ठ पाणगस्स, एवं खलु अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता।

भावार्थ - इसके बाद सुकृष्णा आर्या "अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा" स्वीकार कर विचरने लगी। उन्होंने प्रथम अष्टक में एक दत्ति आहार की और एक दत्ति पानी की ली और दूसरे अष्टक में दो दत्ति आहार की और दो दत्ति पानी की ली। इसी प्रकार क्रम से आठवें अष्टक में आठ दत्ति आहार और आठ दत्तिं पानी की ग्रहण की। इस प्रकार अष्टअष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा तपस्या चौसठ दिन-रात में पूर्ण हुई। जिसमें आहार-पानी की दो सौ अठासी दत्तियाँ हुई। सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि से इस अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा की आराधना की।

अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	८
२	२	२	२	२	२	२	२	१६
३	३	३	३	३	३	३	३	२४
४	४	४	४	४	४	४	४	३२
५	५	५	५	५	५	५	५	४०
६	६	६	६	६	६	६	६	४८
७	७	७	७	७	७	७	७	५६
८	८	८	८	८	८	८	८	६४

६४ दिवस * २८८ दत्तियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवणवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे णवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स, जाव णवमे णवए णव णव दत्तिं भोयणस्स पडिगाहेइ णव-णव पाणगस्स। एवं खलु णवणवमियं भिक्खुपडिमं एकासीइं राइंदिएहिं चउहिं पंचोत्तरेहिं, भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता।

कठिन शब्दार्थ - णवणवमियं - नवनवमिका, **णव णव** - नौ-नौ।

भावार्थ - इसके बाद आर्य चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर उसने "नवनवमिका भिक्षु-प्रतिमा" अंगीकार की। प्रथम नवक में एक दत्ति आहार और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इस क्रम से नौवें नवक में नौ दत्ति आहार और नौ दत्ति पानी की ग्रहण की। यह नवनवमिका भिक्षु-प्रतिमा इक्यासी दिन-रात में पूरी हुई। इसमें आहार-पानी की चार सौ पांच दत्तियाँ हुई। इस नवनवमिका भिक्षु-प्रतिमा का सूत्रोक्त विधि अनुसार आराधन किया।

नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

८१ दिवस * ४०५ दत्तियाँ

दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स जाव दसमे दसए दस-दस भोयणस्स,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दस-दस पाणगस्स। एवं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहेइ।

कठिन शब्दार्थ - दसदसमियं - दशदशमिका।

भावार्थ - इसके बाद सुकृष्णा आर्या ने दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार की। इसके प्रथम दशक में एक दत्ति भोजन और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इसी प्रकार क्रमशः दसवें दशक में दस दत्ति भोजन और दस दत्ति पानी की ग्रहण की। यह दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा एक सौ दिन-रात में पूर्ण होती है। इसमें आहार-पानी की सम्मिलित रूप से पाँच सौ पचास दत्तियाँ होती हैं। इस प्रकार इन भिक्षु-प्रतिमाओं का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया।

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

१०० दिवस * ५५० दत्तियाँ

विवेचन - इस प्रकार १०० दिन में यह प्रतिमा पूरी होती है। इसमें ५५० दत्तियां आहार की व ५५० दत्तियां पानी की होती हैं। दत्तियाँ निकालने की विधि इस प्रकार है - जो प्रतिमा है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसको उतने से गुणा करके उतने जोड़िये, आधे कीजिये उतने से वापस गुणा कीजिये तो उतनी दत्तियों की संख्या आ जाएगी। यथा -

७ × ७ = ४९ + ७ = ५६ का आधा २८ × ७ = १९६ दत्ति।

८ × ८ = ६४ + ८ = ७२ का आधा ३६ × ८ = २८८ दत्ति।

९ × ९ = ८१ + ९ = ९० का आधा ४५ × ९ = ४०५ दत्ति।

१० × १० = १०० + १० = ११० का आधा ५५ × १० = ५५० दत्ति।

आराहित्ता बहूहिं चउत्थ जाव मासद्धमासविविहतवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ। तएणं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा।

कठिन शब्दार्थ - **मासद्धमासविंविहतवोकम्मेहिं** - अर्द्धमासखमण और मासखमण आदि विविध तपस्याओं से।

भावार्थ - फिर सुकृष्णा आर्या उपवासादि से ले कर अर्द्धमासखमण और मासखमण आदि विविध प्रकार की तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। इस उदार एवं घोर तपस्या के कारण सुकृष्णा आर्या अत्यधिक दुर्बल हो गई। अन्त में संथारा कर के सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्धिगति को प्राप्त हुई।

विवेचन - श्री उववाई सूत्र में इन प्रतिमाओं का भी उल्लेख है। इन प्रतिमाओं के परिवहन में केवल दत्तियों का परिमाण ही है, आसन आदि तो साध्वियों के लिए निषिद्ध ही हैं। दिखने में यह तप साधारण लगता है, पर इससे सुकृष्णा आर्या का शरीर काली आर्या की भांति कृश हो गया था। महान् अवमोदरिका रूप यह तप भी विशिष्ट है।

॥ आठवें वर्ग का पांचवां अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठं अज्झयणं - छठा अध्ययन

महाकृष्णा आर्या

(९४)

एवं महाकण्हा वि णवरं खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तं जहा - चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - खुड्डागं सव्वओभद्दं - लघु-सर्वतोभद्र।

भावार्थ - इसी प्रकार राजा श्रेणिक की भार्या और राजा कोणिक की छोटी माता महाकृष्णा रानी ने भी भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। महाकृष्णा आर्या, आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा ले कर 'लघु-सर्वतोभद्र' तप करने लगी। उसकी विधि इस प्रकार है - सर्वप्रथम उन्होंने उपवास किया और पारणा किया (इसकी भी प्रथम परिपाटी के सभी पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं है) पारणा कर के बेला किया। पारणा कर के तेला किया। इसी प्रकार चोला, पचोला किया, फिर तेला, चोला, पचोला, उपवास, बेला किया। फिर पचोला, उपवास, बेला, तेला, चोला। फिर बेला, तेला, चोला, पचोला, उपवास किया। फिर चोला, पचोला, उपवास, बेला, तेला किया। इस प्रकार महाकृष्णा आर्या ने 'लघु सर्वतोभद्र' तप की पहली परिपाटी पूरी की।

एवं खलु खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता, दोच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ, पारणा तहेव। चउण्हं कालो संवच्छरो मासो दस य दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

भावार्थ - इस एक परिपाटी में पूरे सौ दिन लगे, जिसमें पच्चीस दिन पारणे के और पचहत्तर दिन तपस्या के हुए। इसके बाद इस तप की दूसरी परिपाटी की। इसमें पारणे में विगय का त्याग कर दिया। तीसरी परिपाटी में पारणे के दिन विगय के लेपमात्र का भी त्याग कर दिया। इसके बाद चौथी परिपाटी की। इसमें पारणे के दिन आयम्बिल किया। इस प्रकार उन्होंने लघुसर्वतोभद्र तप की चारों परिपाटी की। इसमें एक वर्ष, एक मास और दस दिन लगे। इस प्रकार इस तप की सूत्रोक्त विधि के अनुसार आराधना की। अन्त में संथारा कर के सभी कर्मों का क्षय कर सिद्धिगति को प्राप्त हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - गणना करने पर जिसके अंक सम अर्थात् बराबर हों, विषम न हों, जिधर से गणना की जाए उधर से ही समान हों, उसे सर्वतोभद्र कहते हैं। लघुसर्वतोभद्र में एक से लेकर पांच अंक दिये गये हैं चारों ओर से जिधर से भी गिन लें सभी ओर से संख्या १५ ही होती है। लघु सर्वतोभद्र तप प्रतिमा में पच्चीस दिन पारणे के और ७५ दिन उपवास के होते हैं। चारों परिपाटियों में १ वर्ष, १ मास और दस दिन का समय लगा।

लघु सर्वतोभद्र तप प्रतिमा

पहली लता	१	२	३	४	५
दूसरी लता	३	४	५	१	२
तीसरी लता	५	१	२	३	४
चौथी लता	२	३	४	५	१
पांचवीं लता	४	५	१	२	३

तप दिन ७५
पारणे २५

॥ आठवें वर्ग का छठा अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमं अज्झयणं - सातवां अध्ययन

वीरकृष्णा आर्या

(६५)

एवं वीरकण्हा वि, णवरं महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तं जहा - चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पढमा लया।

कठिन शब्दार्थ - महालयं सव्वओभद्दं - महासर्वतोभद्र, **पढमा** - प्रथम, **लया** - लता।

भावार्थ - इसी प्रकार वीरकृष्णा रानी का चरित्र भी जानना चाहिए। यह श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होंने भी दीक्षा अंगीकार की और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा ले कर 'महासर्वतोभद्र' तप करने लगी। इसकी विधि इस प्रकार है - सब से पहले उपवास किया, फिर पारणा किया। फिर बेला किया। इसी क्रम से तेला, चोला, पचोला, छह और सात किये। यह प्रथम लता हुई।

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बीया लया।

भावार्थ - फिर चोला, पचोला, छह, सात, उपवास, बेला और तेला किया। यह दूसरी लता हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तइया लया।

भावार्थ - फिर सात किये। फिर उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला और छह किये। यह तीसरी लता हुई।

अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, चउत्थी लया।

भावार्थ - फिर तेला, चोला, पचोला, छह, सात, उपवास और बेला किया। यह चौथी लता हुई।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। पंचमी लया।

भावार्थ - फिर छह, सात, उपवास, बेला, तेला, चोला और पचोला किया। यह पाँचवीं लता हुई।

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठी लया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - फिर बेला, तेला, चोला, पचोला, छह, सात और उपवास किया। यह छठी लता हुई।

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सत्तमी लया।

भावार्थ - फिर पचोला, छह, सात, उपवास, बेला, तेला और चोला किया। यह सातवीं लता हुई।

इस प्रकार सात लता की एक परिपाटी हुई।

एक्काए कालो अट्ठमासा पंच य दिवसा। चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीस य दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

भावार्थ - इसमें आठ मास और पाँच दिन लगे। जिनमें उनपचास दिन पारणे के और छह मास सोलह दिन तपस्या के हुए। इसकी प्रथम परिपाटी में पारणों में विगय वर्जित नहीं किया। दूसरी परिपाटी में पारणे में विगय का त्याग किया। तीसरी परिपाटी में लेप मात्र का भी त्याग कर दिया और चौथी परिपाटी में पारणे में आयम्बिल किया। चारों परिपाटी को पूर्ण करने में दो वर्ष, आठ मास और बीस दिन लगे। उसने इस तप का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया यावत् सिद्धि-गति प्राप्त की।

महासर्वतोभद्र तप

पहली लता	१	२	३	४	५	६	७
दूसरी लता	४	५	६	७	१	२	३
तीसरी लता	७	१	२	३	४	५	६
चौथी लता	३	४	५	६	७	१	२
पांचवीं लता	६	७	१	२	३	४	५
छठी लता	२	३	४	५	६	७	१
सातवीं लता	५	६	७	१	२	३	४

तप दिन - १९६
पारणे - ४९

॥ आठवें वर्ग का सातवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं अज्झयण - आठवां अध्ययन

रामकृष्णा आर्या

(९६)

एवं रामकण्हा वि, णवरं भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तं जहा - दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। पढमा लया।

कठिन शब्दार्थ - भद्दोत्तरपडिमं - भद्रोत्तर प्रतिमा।

भावार्थ - रामकृष्णा देवी का चरित्र भी इसी प्रकार है। यह भी श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक की छोटी माता थी। दीक्षा ली और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर 'भद्रोत्तर-प्रतिमा' तप किया। उसकी विधि इस प्रकार है - सर्व प्रथम पचोला किया। पारणा किया। फिर क्रमशः छह, सात, आठ और नौ किये। प्रथम परिपाटी के सभी पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं था। यह प्रथम लता हुई ॥१॥

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बीया लया।

भावार्थ - फिर सात, आठ, नौ, पाँच और छह किये। यह दूसरी लता हुई॥२॥

वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तइया लया।

भावार्थ - फिर नौ, पाँच, छह, सात और आठ किये। यह तीसरी लता हुई॥३॥

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थी लया॥

भावार्थ - फिर छह, सात, आठ, नौ और पाँच किये। यह चौथी लता हुई॥४॥

अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। पंचमी लया।

भावार्थ - फिर आठ, नौ, पाँच, छह और सात किये। यह पाँचवीं लता हुई॥५॥

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा। सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा।

भावार्थ - एक परिपाटी में छह मास और बीस दिन लगे। चारों परिपाटी में दो वर्ष, दो मास और बीस दिन लगे।

रामकृष्णा आर्या भी काली आर्या के समान सभी कर्मों का क्षय कर के सिद्ध-पद को प्राप्त हुई।

विवेचन - भद्रोतर प्रतिमा का अर्थ है - भद्रा - कल्याण की प्रदाता उत्तर-प्रधान। यह प्रतिमा परम कल्याणप्रद होने से भद्रोत्तर प्रतिमा कही जाती है। यह पांच उपवास से प्रारम्भ होकर नौ उपवास तक की जाती है। इसकी एक परिपाटी में छह माह बीस दिन लगे जिसमें तप दिन १७५ और पारणे के दिन २५। चारों परिपाटियों में दो वर्ष, दो माह और बीस दिन का समय लगा।

भद्रोतर प्रतिमा

पहली लता	५	६	७	८	९
दूसरी लता	७	८	९	५	६
तीसरी लता	९	५	६	७	८
चौथी लता	६	७	८	९	५
पांचवीं लता	८	९	५	६	७

तप दिन - १७५
पारणे - २५

॥ आठवें वर्ग का आठवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवमं अज्झयणं - नौवां अध्ययन

पितृसेनकृष्णा आर्या

(९७)

एवं पिउसेणकण्हा वि, णवरं मुत्तावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - मुत्तावली - मुक्तावली।

भावार्थ - इसी प्रकार पितृसेनकृष्णा का वर्णन जानना चाहिये। वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होंने दीक्षा अंगीकार की और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा ले कर मुक्तावली तप किया।

तं जहा - चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता एवं ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा। सेसं तहेव। जाव सिद्धा।

भावार्थ - इसकी विधि इस प्रकार है - सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा किया। इसकी भी पहली परिपाटी के सभी पारणों में विगयों का सेवन वर्जित नहीं है। फिर बेला किया। पारणा किया। फिर उपवास किया। पारणा किया। फिर तेला किया। इस प्रकार बीच में एक-एक उपवास करती हुई पितृसेनकृष्णा आर्या पन्द्रह उपवास तक बढ़ी। फिर उपवास। बीच में सोलह। सोलह के बाद उपवास और फिर उपवास किया। फिर इसी प्रकार पश्चानुपूर्वी से मध्य में एक-एक उपवास करती हुई जिस प्रकार चढ़ी थी, उसी प्रकार पन्द्रह उपवास से एक उपवास तक क्रम से उतरी। इस प्रकार मुक्तावली तप की एक परिपाटी समाप्त हुई। काली आर्या के समान इसकी चारों परिपाटियाँ पूर्ण की। एक परिपाटी में ग्यारह महीने और पन्द्रह दिन लगे और चारों परिपाटियों में तीन वर्ष और दस महीने लगे। अन्त में संलेखना-संथारा किया और समस्त कर्मों का क्षय कर के सिद्ध-पद को प्राप्त हुई।

विवेचन - मुक्तावली शब्द का अर्थ है - मोतियों का हार। जिस प्रकार मोतियों का हार बनाते समय उन मोतियों की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप में उपवासों की स्थापना की जाए, उस तप को मुक्तावली तप कहते हैं। इस तप की स्थापना इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	तप	क्रं.	तप	क्रं.	तप	क्रं.	तप
१	उपवास	१६	नौ	३१	उपवास	४६	उपवास
२	बेला	१७	उपवास	३२	उपवास	४७	अठाई
३	उपवास	१८	दस	३३	पन्द्रह	४८	उपवास
४	तेला	१९	उपवास	३४	उपवास	४९	सात
५	उपवास	२०	ग्यारह	३५	चौदह	५०	उपवास
६	चोला	२१	उपवास	३६	उपवास	५१	छह
७	उपवास	२२	बारह	३७	तेरह	५२	उपवास
८	पचोला	२३	उपवास	३८	उपवास	५३	पांच
९	उपवास	२४	तेरह	३९	बारह	५४	उपवास
१०	छह	२५	उपवास	४०	उपवास	५५	चौला
११	उपवास	२६	चौदह	४१	ग्यारह	५६	उपवास
१२	सात	२७	उपवास	४२	उपवास	५७	तेला
१३	उपवास	२८	पन्द्रह	४३	दस	५८	उपवास
१४	अठाई	२९	उपवास	४४	उपवास	५९	बेला
१५	उपवास	३०	सोलह	४५	नौ	६०	उपवास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुक्तावली तप

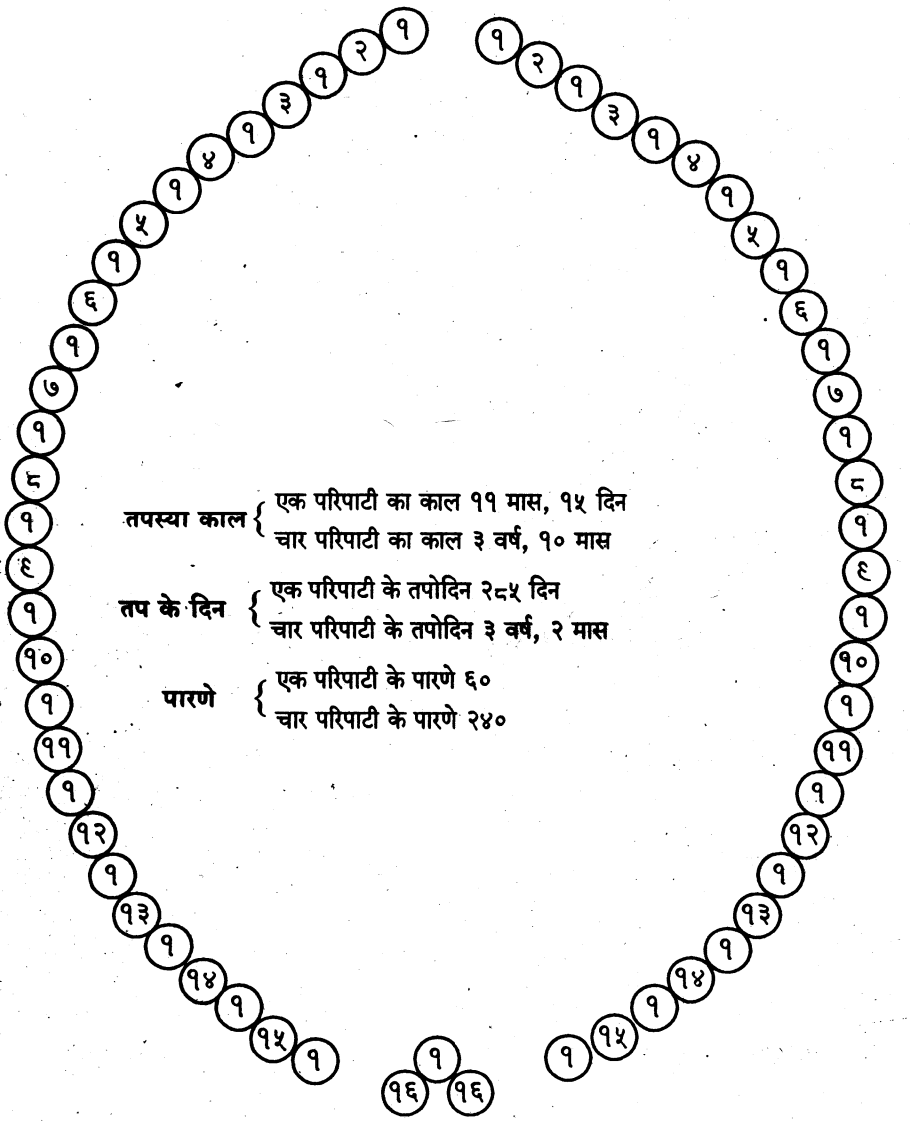

॥ आठवें वर्ग का नौवां अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दसमं अज्झयणं - दसवाँ अध्ययन

महासेनकृष्णा आर्या

(९८)

एवं महासेण कण्हा वि णवरं आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - आयंबिलवड्ढमाणं - आयम्बिल वर्द्धमान।

भावार्थ - इसी प्रकार महासेनकृष्णा का वर्णन भी जानना चाहिये। वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। दीक्षा ली और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा ले कर उसने 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तप किया।

तं जहा - आयंबिलं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता बे आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता पंच आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता छ आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंति चउत्थंतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ।

कठिन शब्दार्थ - आयंबिलं - आयम्बिल, **वड्ढंति** - बढ़ते हैं, **एकोत्तरियाए वुड्ढीए** - एक एक बढ़ाते हुए, **चउत्थंतरियाइं** - मध्य में एक एक उपवास, **आयंबिलसयं** - सौ आयंबिल।

भावार्थ - इसकी विधि इस प्रकार है - सर्व प्रथम आयम्बिल किया। दूसरे दिन उपवास किया, फिर दो आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। फिर तीन आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। फिर चार आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। फिर पाँच आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। फिर छह आयम्बिल किये। फिर उपवास किया। इस प्रकार मध्य में एक-एक उपवास करती हुई एक सौ आयम्बिल तक किये। फिर उपवास किया। इस प्रकार 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तप पूरा किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तएणं सा महासेणकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसेहिं वासेहिं तिहि य मासेहि वीसेहिं य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ जाव आराहित्ता, जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ; वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थेहिं जाव भावेमाणी विहरइ। तएणं सा महासेणकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी उवसोभेमाणी चिट्ठइ।

भावार्थ - इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन में 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तप का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया। इसमें आयम्बिल के पाँच हजार पचास दिन होते हैं और उपवास के एक सौ दिन होते हैं। इस प्रकार सभी मिला कर पाँच हजार एक सौ पंचास दिन होते हैं। इस तप में चढ़ना ही है, उतरना नहीं है।

इसके बाद वह महासेनकृष्णा आर्या, आर्य चन्दनबाला आर्या के पास आई और वन्दन-नमस्कार किया। इसके बाद उपवास आदि बहुत-सी तपश्चर्या करती और आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। उन कठिन तपस्याओं के कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गई, तथापि आन्तरिक तप-तेज के कारण वह अत्यन्त शोभित होने लगी।

विवेचन - आयंबिल वर्द्धमान वह तप है जिसमें आयंबिल क्रमशः बढ़ाया जाता है। इस तप की आराधना में १४ वर्ष ३ माह २० दिन लगते है। इसकी स्थापना इस प्रकार है -

आयम्बिल-वर्धमान तप

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तएणं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंता, जहा खंदयस्स जाव अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ जाव संलेहणा, कालं अणवकंखमाणी विहरइ। तएणं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव तमट्ठं आराहेइ चरिम उस्सासणीसासेहिं सिद्धा।

भावार्थ - एक दिन पिछली रात्रि के समय महासेनकृष्णा आर्या ने स्कन्दक के समान चिन्तन किया - "मेरा शरीर तपस्या से कृश हो गया है, तथापि अभी तक मुझ में उत्थान, बल, वीर्य आदि है। इसलिए कल सूर्योदय होते ही आर्य चन्दनबाला आर्या के पास जा कर, उनसे आज्ञा ले कर संथारा करूँ।" तदनुसार दूसरे दिन सूर्योदय होते ही आर्य चन्दनबाला आर्या के पास जा कर वन्दन-नमस्कार कर के संथारे के लिए आज्ञा मांगी। आज्ञा ले कर संथारा ग्रहण किया और मरण को न चाहती हुई धर्मध्यान-शुक्लध्यान में तल्लीन रहने लगी।

महासेनकृष्णा आर्या ने चन्दनबाला आर्या से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। सत्तरह वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया तथा एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित करती हुई, साठ भक्तों को अनशन से छेदित कर, अन्तिम श्वासोच्छ्वास में अपने सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर के मोक्ष प्राप्त हुई।

उपसंहार

(९९)

अट्ठ य वासा आई, एकोत्तरीयाए जाव सत्तरस।
एसो खलु परियाओ, सेणियभज्जाण णायव्वो॥

भावार्थ - इन दस आर्याओं में से प्रथम काली आर्या ने आठ वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया। दूसरी सुकाली आर्या ने नौ वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया। इस प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर एक-एक रानी के चारित्र-पर्याय में एक वर्ष की वृद्धि होती गई। अन्तिम दसवीं रानी महासेनकृष्णा आर्या ने सतरह वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया। ये सभी राजा श्रेणिक की रानियाँ थीं और कोणिक राजा की छोटी माताएँ थीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।

भावार्थ - हे जम्बू! अपने शासन की अपेक्षा से धर्म की आदि करने वाले श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी जो मोक्ष प्राप्त हैं, उन्होंने आठवें अंग अंतगडदशा सूत्र का यह भाव प्ररूपित किया है। भगवान् से जैसा मैंने सुना, उसी प्रकार तुम्हें कहा है।

॥ आठवें वर्ग का दशवाँ अध्ययन समाप्त॥

(१००)

अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो अट्ठ वग्गा अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति तत्थ पढमबितिवग्गे दस-दस (अट्ठ?) उद्देसगा, तइयवग्गे तेरस उद्देसगा, चउत्थपंचमवग्गे दस-दस उद्देसगा, छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा, सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा णायाधम्मकहाणं॥

कठिन शब्दार्थ - सुयक्खंधो - श्रुतस्कंध, **वग्गा** - वर्ग, **दिवसेसु** - दिनों में, **उद्दिसिज्जंति** - वाचन होता है, **पढमबितियवग्गे** - प्रथम और दूसरे वर्ग के, **उद्देसगा** - उद्देशक, **चउत्थपंचमवग्गे** - चौथे और पांचवें वर्ग के।

भावार्थ - इस अन्तगडदशा सूत्र में एक श्रुतस्कन्ध है और आठ वर्ग हैं। इसको आठ दिनों में बांचा जाता है। इसके प्रथम और द्वितीय वर्ग में दस-दस (दूसरे में आठ) उद्देशक (अध्ययन) है। तीसरे वर्ग में तेरह, चतुर्थ और पाँचवें वर्ग में दस-दस अध्ययन हैं। छठे वर्ग में सोलह, सातवें वर्ग में तेरह और आठवें वर्ग में दस अध्ययन हैं।

विवेचन - उपलब्ध अन्तकृतदशा के दूसरे वर्ग में आठ उद्देशक ही हैं, लिपि प्रमाद से दूसरे वर्ग में दस उद्देशक बता दिये गये हों अथवा दस उद्देशकात्मक द्वितीय वर्ग वाला अन्य वाचनीय अन्तकृत रहा हो, यह निर्णय ज्ञानीगम्य है।

॥ अन्तकृतदशा सूत्र समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट (१)

१. **चंपा** - वर्तमान में भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम में आये हुए चम्पानाला नामक स्थान को पं. श्री कल्याणविजयजी ने तत्कालीन चंपा नगरी निरूपित किया है*। (पृ० ३)

२. **महया हिमवंत वण्णओ** - जिस प्रकार हिमवंत पर्वत क्षेत्र-मर्यादा करता है, वैसे ही मर्यादा के कर्त्ता एवं पालन करने-करवाने वाले योग्य राजा के लिए हिमवंत पर्वत की उपमा दी जाती है। (पृ० ४)

३. **बारवई णयरी** - सौराष्ट्र देश की राजधानी, जिसे द्वारबती, द्वारावती, द्वारामति, द्वारिका आदि नामों से जाना जाता है*। (पृ० ८)

४. **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं** - आवश्यक सूत्र का प्रथम आवश्यक सामायिक आदि छहों आवश्यकों को जानकर ग्यारह अंगों का ज्ञान किया - इस अर्थ में यह पद आया। (पृ०१५)

५. **काकंदी णयरी** - गोरखपुर से दक्षिण पूर्व में तीस मील पर तथा नूनखार स्टेशन से दो मील दूर जिस स्थान को किष्किंधा खुखुंदोजी नामक तीर्थ कहा जाता है, वह प्राचीन काकंदी कही जाती है*। (पृ० १५४)

६. **सागेए णयरे** - साकेत नगर - फैजाबाद से पूर्वोत्तर छह मील पर सरयू नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित अयोध्या के समीप ही प्राचीन साकेत नगर बताया जाता है*। (पृ० १५४)

७. **वाणियगामे** - वाणिज्यग्राम - आज कल बसाड़पट्टी के पास वाला बजिया ग्राम ही प्राचीन वाणिज्यग्राम हो सकता है*। (पृ० १५६)

८. **सावत्थी णयरी** - श्रावस्ती नगर - गौंड़ा जिले में अकौना से पूर्व पांच मील दूर, बलरामपुर से पश्चिम में बारह मील, रापती नदी के दक्षिण तट पर सहेठमहेठ नाम से प्रख्यात स्थान को प्राचीन श्रावस्ती माना गया है*। (पृ० १५७)

९. **पोलासपुर** - अतिमुक्तक अनगार की जन्मभूमि उत्तर भारत की समृद्ध नगरी बताई गई है, पर वर्तमान परिपेक्ष्य में उसका पता नहीं है*। (पृ० १५९)

१०. **वाणारसिए** - वाणारसी नगरी - काशी देश की तत्कालीन राजधानी, आज का प्रसिद्ध बनारस नगर*। (पृ० १७१)

---

* देखिए पं. श्री कल्याणविजयजी द्वारा लिखित 'श्रमण भगवान् महावीर' ग्रन्थ का 'विहार स्थल नाम कोष।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११. चेइए-पुण्णभद्दे चेइए - पृ० ४ यहां चैत्य का प्रकरण संगत अर्थ यक्षायतन किया गया है। पृ० ११६ पर **'गुणसिलए चेइए'** पद का अर्थ गुणशीलक उद्यान किया गया है। **'चेइए'** शब्द का प्रयोग श्री उत्तराध्ययन सूत्र के नववें अध्ययन में वृक्ष व उद्यान दोनों अर्थों में अलग-अलग भी हुआ है। श्री उपासकदशा सूत्र में चैत्य का अर्थ साधु अर्थ में भी किया गया है। 'शब्द के अनेक अर्थ होते हैं' - इस नियम को जानने वालों के लिए यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। 'जयध्वज' पृ० ५७३ से यह जानने को मिलता है कि चैत्य शब्द के ५७ व चेइय शब्द के ५५ कुल ११२ अर्थों का संयोजन २८ गाथाओं में किया गया है। अतः चैत्य शब्द का प्रकरण संगत अर्थ किया जाना उचित है।

परिशिष्ट (२)

श्री अन्तकृत में अन्य आगम-स्थलों का संकेत -

१. पृ० ३ **'वण्णओ'** सभी वर्णक पद श्री उववाई सूत्र का संकेत करते हैं।

२. पृ० ५ **'सुहम्मे थेरे जाव पंचहिं..'** यह पद श्री ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र के प्रथम अध्ययन का संकेत करता है। पूज्य गुरुदेव श्री के अनुसार उपरोक्त स्थल में वर्णित सभी विशेषणों को गणधर भगवान् के गुण माना जाता है।

३. पृ० ५ **'परिसा णिग्गया जाव पडिगया'** - यह संकेत श्री उववाई सूत्र के लिए है, जहाँ परिषदा के आगमन-निर्गमन का सविस्तार वर्णन है।

४. पृ० ६ **'अज्ज जंबू जाव पज्जुवासमाणे'** - यह संकेत भी ज्ञाता अ० १ अथवा गौतमस्वामी की सादृश्यताहेतुक हो तो भगवती सूत्र के प्रारम्भ का समझना चाहिये।

५. पृ० १४ **'जहा मेहे'** - ज्ञाता अ० १।

६. पृ० ३८ **'जहा गोयमसामी'** भगवती, उपासकदसा आदि।

७. पृ० ४६ **'जहा देवाणंदा'** भगवती शतक ६ उद्देशक ३३।

८. पृ० ६२ **'रिउव्वेय जाव सुपरिणिट्ठिए'** भगवती शतक २ उद्देशक १।

९. पृ० ६७-६८ **'जहा महब्बलस्स'** - भगवती शतक ११ उद्देशक ११।

१०. पृ० ७४ **'उज्जला जाव दुरहियासा'** रायपसेणी प्रदेशी वर्णन।

आगमकारों ने **'जाव'** शब्द से स्थान-स्थान पर विस्तृत पाठों का जो संकोच किया है, वे अन्य आगमों में उपलब्ध होते हैं। अतः अंतकृत सूत्र के व्याख्याता को अन्यान्य आगमों का भी अध्ययन करना अत्यावश्यक ध्यान में आता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट (३)

मुक्त-आत्माओं का विवरण

१. अवस्था द्वार (मुक्त आत्माएं)

आयु के अनुसार		लिंगानुसार	
युवक	७५	पुरुष	५७
वृद्ध	१४	स्त्री	३३
बालक	०१		
योग	९०	योग	९०

वैवाहिक स्थित्यनुसार

विवाहित साधु	५५
कुमार साधु	०२
सधवा साध्वियाँ	२१
दीक्षित पति वाली	०२
विधवा साध्वियाँ	१०
योग	९०

२. नगर द्वार

	साधु	साध्वियाँ	
द्वारिका	३५	१०	
राजगृह	०६	२३	
भद्दिलपुर	०६		
काकंकी	०२		
वाणिज्य ग्राम	०२		
श्रावस्ती	०२		
पोलासपुर	०१		
वाराणसी	०१		
साकेत नगर	०२		
योग	५७ +	३३ =	९०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. कुल द्वार

	साधु	साध्वियाँ	
यादव कुल	३५	१०	
श्रेणिक की रानियाँ		२३	
नाग सुलसा के पुत्र	०६		
राजा अलक्ष	०१		
विजय श्रीदेवी के पुत्र	०१		
माली पुत्र	०१		
गृहपति	१३		
योग	५७ +	३३ =	९०

४. शिष्य द्वार

	साधु	साध्वियाँ	
भगवान् नेमिनाथ	४१		
यक्षिणी		१०	
भगवान् महावीर स्वामी	१६		
चंदना		२३	
योग	५७ +	३३ =	९०

५. अध्ययन द्वार

	साधु	साध्वियाँ	
समिति-गुप्ति	०२		
११ अंग	३३	३३	
१४ पूर्व	१२		
१२ अंग	१०		
योग	५७ +	३३ =	९०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. संथारा द्वार

संथारा सहित साधु (एक मास)	५५
संथारा सहित साधु (१५ दिन)	०१ अर्जुनमाली
साध्वियाँ	३३
संथारा रहित साधु	०१ गजसुकुमाल
योग	**९०**

७. संयम पर्याय द्वार

वर्ष/दिन	**मोक्षगामी जीव संख्या**
एक दिन	०१ (गजसुकुमाल)
छह मास	०१ (अर्जुनमाली)
पांच वर्ष	०२
बारह वर्ष	१३
सोलह वर्ष	२३
बीस वर्षः साधु साध्वी	१२ २३
सताईस वर्ष	०१
८ से १७ वर्ष	१०
बहुत वर्ष	०४
योग	**९०**

८. प्रकीर्णक तप द्वार

तप	**मोक्षगामी जीव**
बारह भिक्षु प्रतिमा साधु	३२
गुणरत्न तप साधु	२३
साधु साध्वियाँ	०२ २३
रत्नावली साध्वियाँ	०१
कनकावली साध्वियाँ	०१
प्रकीर्णक तप साध्वियाँ	०८
योग	**९०**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. सिद्ध क्षेत्र द्वार	
स्थान	**मोक्षगामी जीव संख्या**
श्मशान साधु	०१ (गजसुकुमाल)
साधु	०१ (अर्जुनमाली)
उपाश्रय में साध्वियाँ	३३
शत्रुंजय साधु	४०
विपुलगिरि साधु	१५
योग	९०

१०. अंतगडदसा सूत्र के नगर आदि का वर्णन किस सूत्र में किस स्थान पर है?

वर्ग	**किसका वर्णन**	**वर्णन कौनसे सूत्र में**
पहला	नगरी, उद्यान, राजा आदि	औपपातिक सूत्र
	आर्य सुधर्मा, जम्बू आदि	ज्ञाता सूत्र
	रैवतक, नंदनवन, सुरप्रिय	वण्हिदसा
	महाबल	भगवती सूत्र शतक ११, उद्देशक ११
	अरिष्टनेमि समवसरण	ज्ञाता धर्म कथा अध्ययन ५
	मेघकुमार	ज्ञाता धर्म कथा अध्ययन १
	खंदक संन्यासी	भगवती शतक २ उद्देशक १
तीसरा	गाथापति	उपासकदशांग अध्ययन १
	दृढ़ प्रतिज्ञ	राजप्रश्नीय ३ प्रांत में
	गौतम स्वामी	भगवती शतक २ उद्देशक ५
	देवानंदा	भगवती शतक ९ उद्देशक ३३
	अभयकुमार	ज्ञाता धर्म कथा अध्ययन १
	ब्राह्मण	भगवती शतक २ उद्देशक १
छठा	गंगदत्त	भगवती शतक १६ उद्देशक ५
	श्रमणोपासक	भगवती शतक २ उद्देशक ५
	राज्य-अभिषेक	भगवती शतक ११ उद्देशक ९
	अतिमुक्तक (एवंताकुमार)	भगवती शतक ५ उद्देशक ४
	कोणिक	औपपातिक सूत्र
	उदायन	भगवती शतक १३ उद्देशक ६
आठवाँ	तपश्चर्या जन्य शरीर	अनुत्तरोपपातिक वर्ग ३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ